वसुधैव कुटुम्बकम्

(महाकाव्य)

चन्द्रशेखर उपाध्याय शास्त्री
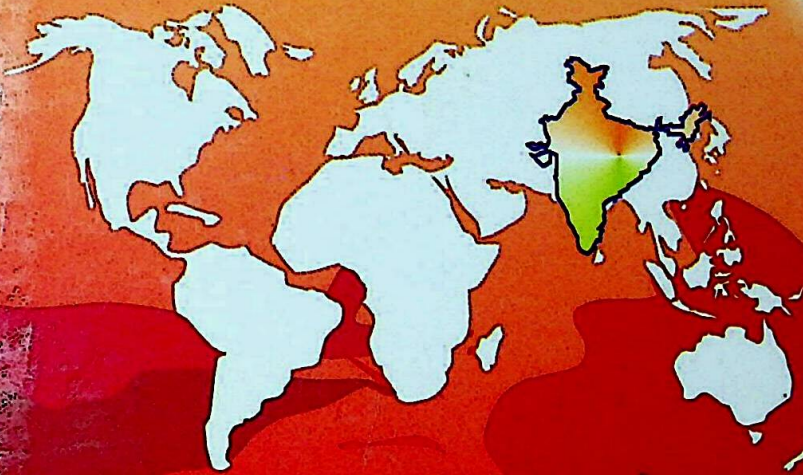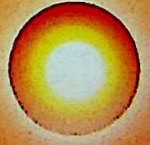
वसुधैव कुटुम्बकम्

(महाकाव्य)

(धर्मम् शरणम् गच्छामि)

चन्द्रशेखर उपाध्याय शास्त्री
उर्फ - चन्दरदास

प्रकाशक - 'चन्द्र प्रकाशन', ज्ञानदीप विद्यापीठ, म.न. 647
विद्यानगर, लालचौकी, खण्डवा, म. प्र.
☎ : 48795

- वसुधैव कुटुम्बकम्

- वर्ष - 2002

- संस्करण - प्रथम

- मूल्य - मूल्य एक सौ पचास रुपये।

- मुख पृष्ठ - वसुधैव कुटुम्बकम्

- वितरक - चन्द्र प्रकाशन, खण्डवा

- चित्र - जिला सहकारी संघ के सौजन्य से ।

- मुद्रक - जिला सहकारी संघ मुद्रणालय,
रामेश्वर रोड़, खण्डवा. ✆ 23374

आत्म निवेदन

प्रिय पाठकों ! 'वसुधैव कुटुम्बकम' महाकाव्य मात्र कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि ईश्वर की प्रेरणा का साकार रूप है । मैं ध्यान योग में बैठा हुआ था । अचानक विचारों की श्रृंखला चल पड़ी । यद्यपि ध्यान निर्विचारिता की एक शून्य अवस्था है । लेकिन इस अवस्था में अभ्यासरत साधक निरन्तर नहीं रह सकता । बीच-बीच में मन की चंचलता अपना कमाल दिखाती रहती है । ऐसी ही अवस्था में मन में विचार आया कि जगत पिता एक है, पृथ्वी एक है, वायु एक है, आकाश एक है, अग्नि एक है, जल एक है तो इस पृथ्वी पर रहने वाले लोग कैसे अलग-अलग हो सकते हैं । पाँच भूतों से बना यह शरीर कैसे अलग-अलग हो सकता है । इसमें वास करने वाला अमर-सत्व; जो परम पिता का सनातन अंश है; कैसे अलग - अलग हो सकता है । मानव ही क्यों चौराही लाख योनियों में भ्रमण करने वाले समस्त जीव कैसे अलग-अलग हो सकते हैं ; अर्थात नहीं हो सकते, कभी नहीं हो सकते । शायद इसी तथ्य की सत्यता का अनुभव करके हमारे मनीषी ऋषि मुनियों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का शंखनाद किया होगा ।

लेकिन समय के साथ धीरे-धीरे वह शंखनाद लुप्त प्राय होता गया । लोग 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को भूल गये और वसुधैव कुटुम्बकम् के स्थान पर द्वेष की भावना ने अपना साम्राज्य फैला लिया । परिणाम स्वरूप आज सारी पृथ्वी वैमनषता के अंगार में झुलस रही है । ऐसी परिस्थिति में क्यों न हम उस शंखनाद को फिर से विश्व के सामने बजायें । यद्यपि पूर्व में वेद, पुराण, उपनिषद और महाकाव्यों के माध्यम से इस सत्यता को, प्रामाणिकता के आधार पर विश्व के सामने रखा गया है । लेकिन आज दुबारा समय आ गया है कि मैं एक बार फिर से उसे नये सिरे से विश्व से सामने रखूँ ।

आज संसार में चारों तरफ मानव मानवता का दुश्मन हो रहा है । लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं । मानवता का हराश हो रहा है । लोग कहीं सम्प्रदाय के नाम पर तो कहीं भाषा के नाम पर, कहीं कर्म के नाम पर तो कहीं धर्म के नाम पर, कहीं क्षेत्र के नाम पर तो कहीं देश के नाम पर एक दूसरे से अलग हो रहे है, लड़ रहे हैं ।

इस अलगाववादी प्रवृत्ति के कारण सीमा पर खून की नदियाँ बह रही हैं । भाई-भाई का दुश्मन हो रहा है । माता-पिता और औलाद में प्रेम की धारा जैसे सूख सी गई है । सास-बहू में कलह अपनी चरम सीमा तक पहुँच गई है । दहेज के नाम पर बहू-बेटियों को जलाया जा रहा है । नफ़रत की आग यहाँ तक फैल गई है कि धर्मस्थलों के नाम पर कत्लेआम हो रहा है । कहीं जातिवाद का तांडव हो रहा है, तो कहीं ऊँच-नीच की खाँई गहरी हो रही है । अलगाववाद इतना पनप चुका है कि घर-परिवार से लेकर देश-विदेश तक सभी इसमें झुलस रहे हैं । धनी और धनी होता जा रहा है तो गरीब और गरीब होता जा रहा है । किसी के पास अपार धन है; तो किसी के पास दफन के लिए दो गज जमीन भी नहीं है । कोई खा-खा कर मर रहा है कोई बिना खाये मर रहा है । किसी को किसी के प्रति करुणा नहीं है, दया नहीं है, प्रेम नहीं है । चारो तरफ बस नफरत ही नफरत, अलगाव ही अलगाव ।.... अहंकार में चूर अंधे । न मानव की पहचान है न मानवता की, न अपने की पहचान है न पराये की, न शरीर की पहचान है न आत्मा की, न संसार की पहचान है न परमात्मा की । बस चारो तरफ केवल अज्ञान ही अज्ञान, अंधकार ही अंधकार ।

ऐसे समय में वसुधैव कुटुम्बकम् का दीपक जलाना एक बार फिर से मैंने आवश्यक समझा । शायद इसकी रोशनी से मानव के इस अंधकारमय जीवन में प्रकाश आ जाय । शायद वह रास्ता फिर से दीख जाय, जिसे हम बहुत वर्ष पहले से ही भूल चुके हैं ।

आज विभिन्न सम्प्रदायों के लोग धर्म की अलग-अलग व्याख्या करके अपने सम्प्रदाय को ऊँचा और अन्य सम्प्रदाय को नीचा दिखाने की कोशिस करते हैं । उन्हें नहीं मालूम कि धर्म मानव मात्र का एक ही है । जो संसार में नहीं; अपने स्वभाव में है, अपने अन्दर है । अपने स्वभाव को जानने के लिए, अपने सत को पहचानने के लिए हमें अपने अन्दर झाँकना होगा । जहाँ हमारा आत्मा कमलदल की तरह लिखा हुआ है, जहाँ परमात्मा सत-चित और आनन्द रूप में विराजमान है । जहाँ 'समत्वं योग उच्यते' का उपदेश देने वाला अपनी मधुर मुसकान के साथ क्रीड़ा कर रहा है । जहाँ न कोई छोटा है न बड़ा है, जहाँ न कोई हिन्दू है न मुसलमान है, न सिख है न ईसाई है । जहाँ

केवल मानव है और मानवता है । जहाँ चौरासीलाख योनियों के प्रति समान प्रेम है । जहाँ कोई मतभेद नहीं, जहाँ कोई विरोध नहीं । बस, प्रेम ही प्रेम, प्रेम ही प्रेम, प्रेम ही प्रेम ।

हे मानव ! वहाँ ईश्वर और अल्लाह में कोई भेद नहीं है । वहाँ केवल एक प्रकाश है, जिससे सारा विश्व प्रकाशित है - चाहे वह हिन्दू हो चाहे मुसलमान, चाहे सिख हो चाहे इसाई, चाहे वह ऊँच हो चाहे नीच, चाहे वह गाँव हो चाहे शहर, चाहे वह वाटिका हो चाहे जंगल, चाहे थल हो चाहे जल, चाहे आकाश हो चाहे पाताल, चाहे पूरब हो चाहे पश्चिम, चाहे उत्तर हो चाहे दक्षिण- चारो तरफ एक प्रकाश ही प्रकाश, प्रकाश ही प्रकाश ।

हे मानव ! चारो ओर एक उसी ईश्वर की करूणा निर्भर झरने की तरह निरन्तर झर रही है । वहाँ भाषा का कोई भेद नहीं है । वहाँ सभी भाषा एक मात्र प्रेम की भाषा में तिरोहित हो गई हैं । वहाँ न हिन्दी है न उर्दू, न अरबी है न अँग्रेजी वहाँ अथाह गहराई लिए हुए एक प्रेम ही है - अचल प्रतिष्ठीत समुद्र की तरह ।

हे मानव ! तुम्हें ऐसे निर्मल, निश्चल और पवित्र, निर्विकार आत्मा के तह तक जाना होगा । वहाँ जाने के लिए दिशा की खोज करनी होगी । उस दिशा की खोज के लिए एक ज्ञानी संत की तलाश करनी होगी । वह ज्ञानी संत एक सद्‌गुरु ही हो सकता है । बिना सद्‌गुरु की करुणा के वह सत्य - पथ जान कर भी तुम अज्ञानी बने रहोगे । अतः तुम्हें सद्‌गुरु की शरण में जाना होगा । बिना गुरु ज्ञान के उस पथ पर चलना अत्यन्त कठिन है; बल्कि असम्भव है । अतः सद्‌गुरु से ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु - आश्रम जाना होगा । मन में गुरु के प्रति अटूट श्रृद्धा और विश्वास रखना होगा । तभी सदगुरु ज्ञान दे सकता है, और तभी सदगुरु द्वारा बताये ज्ञान मार्ग पर सरलता से चला जा सकता है ।

हे मानव ! सदगुरु ही जीव-जगत, आत्मा-परमात्मा, कर्म-अकर्म आदि के रहस्य को तुम्हें बतायेगा । द्वन्द एवं राग से दूर रहने की तुम्हें प्रेरणा देगा । निष्काम कर्म के पथ पर चलने की सीख देगा । काम और क्रोध के दुष्परिणाम से तुम्हें बचायेगा । मन

के अन्दर बैठे हुए कामना, ममता, अहंकार और तृष्णा को दूर करेगा । तभी तुम्हारा मन लोभ और मोह से ऊपर उठ कर समत्व के सुगन्ध से भर सकेगा ।

जब तक मानव के मन में मानवता के प्रति भेद-भाव दूर नहीं होगा तब तक धर्म का वास्तविक अर्थ समझ में नहीं आयेगा । जब मानव मन के सम्पूर्ण भेद दूर हो जायेंगे, समत्व का साम्राज्य हो जायेगा तभी कर्म निष्काम कर्मयोग में फलित और पुष्पित हो सकेगा । बिना गुरु शरण के यह सब सम्भव नहीं । हर प्राणी में विराजमान ईश्वर एक है । चाहे उसे हिन्दू ईश्वर का नाम दें, या मुसलमान अल्लाह की संज्ञा दें । तरीका अलग अलग हो सकता है, रास्ता अलग-अलग हो सकता है पर मंजिल सबकी एक ही है - उसी परम सत्व को प्राप्त करना, उसी परम शान्ति में प्रतिष्ठित होना ।

हजारों-हजारों वर्ष पूर्व जो भेद-भाव की दीवार खड़ी हुई थी वह आज और पक्की हो गई है। आखिरस यह भेद-भाव कब तक । इस सम्प्रदायवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद और वर्गवाद का कब अन्त होगा। इसी पीड़ा ने हमारे हृदय को मथनी की तरह मथ डाला। जिससे मर्माहत हो कर मैं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' महाकाव्य लिखने को बाध्य हो गया। पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर आज तक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' हमारे देश की पहचान रही है। इस पहचान को आगे भी बनाये रखना है, यही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। जिस प्रकार एक माता-पिता अपने परिवार के प्रति सतत् सजग रहते हैं, वैसे ही सदगुरु संत, कवि, और योगी भी संसार के प्रति सतत् सजग रहते हैं। इसी उत्तरदायित्व का भार वहन करते हुए मैंने इस पुस्तक की रचना की है। जाने-अनजाने कहीं भी इस पुस्तक में कोई त्रुटि हो गई हो तो उसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मैं सभी संत महात्माओं, साथियों एवं स्वयं ईश्वर का आभारी हूँ जिनकी लिखित, अलिखित प्रेरणा से इस पुस्तक की रचना हो सकी है। मैं सभी सहयोगी साथियों का भी हृदय से आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में अपना हार्दिक सहयोग दिया है।

विनित

चन्द्रशेखर उपाध्याय शास्त्री

निवेदन

"वसुधैव कुटुम्बकम्" एक महान सारगर्भित और नित्य जीवन्त शब्द है । इस विषय पर कुछ लिखता, सारे विश्व के लिए एक वरदान माना जा सकता है । संत कवि श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय "शास्त्री" ने इस सारभौम्य शब्द को अपने काव्य का विषय बनाकर मानव समाज के लिए एक अमुल्य धरोहर प्रस्तुत की है । विश्व में जीवन के गुह्यतम विषयों पर सरलता पूर्वक लिखने वाले संत कवियों का प्रायः अभाव ही रहा है । सही मार्गदर्शन के अभाव में मानवीय पथ पर चलना मानव के लिए बहुत कठीन है । पाश्चात्य सभ्यता ने हमारे तन-मन को अपने रंग से इतना रंग दिया है कि हम अपने आदर्श जीवन मूल्यों को भूल सा गये है । आज का वैज्ञानिक युग, जो बीते हुए कल के संत वैज्ञानिकों के उत्कृष्ट मान्यताओं पर ही आधारित है, उन संत वैज्ञानिकों द्वारा अनुभव किये गए जीवन मूल्यों को मानने से इन्कार कर रहा है । जिससे समाज में विघटन है, द्वेष है, घृणा है और मानवीय मूल्यों का पतन है । ऐसी स्थिति में इस पुस्तक की अनिवार्यता और बड़ जाती है । कवि द्वारा प्रकृति, गुरु आश्रम, ईश्वर एक, सम्प्रदाय, संसार, भाषा, धर्म, कर्म, प्रेम और मुक्ति जैसे जीवन्त विषयों पर चर्चा करते हुए विश्व के सम्पूर्ण मानवता को एक ही बताया है । भेद-भाव की दीवार हमारी आपकी गढ़ी हुयी एक बहुत बड़ी क्रूरता का प्रमाण है । चाहे वह हिन्दू धर्म का हो, चाहे इस्लाम, चाहे वह सिक्ख धर्म का हो चाहे ईसाई, सभी धर्मों का मूल मंत्र सत्य और अहिंसा, प्रेम और दया है । प्रकृति के अंश हवा, पानी, पृथ्वी, अग्नि और आकाश जब एक है तो फिर इनसे निर्मित मानव कैसे अलग-अलग हो सकता है । उसकी धार्मिकता कैसे अलग-अलग हो सकती है । जन्म, पुर्नजन्म और मुक्ति का मूल मंत्र कर्म ही है । कर्म की व्याख्या जिस सहजता और सरलता से कवि ने अपने महाकाव्य में की है वह सम्पूर्ण मानवता के लिए एक आदर्श है । मैं कवि के इस अर्निवचनीय प्रयास की भूरि-भूरि प्रशंसा करती हूँ, मानव का परम परुषार्थ मुक्ति है । जिसे कवि ने बड़े ही मार्मित ढ़ंग से समझाने की कोशिस की है । यदि मानव बाहर से ओड़े हुए सभी आडंबरों को उतार फेके तो जो शेष

स्वाभाविकता बचेगी वही मुक्ति का सुन्दर मार्ग है । जिस पर चलकर मानव अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है ।

इस पुस्तक की भाषा सीधी और सरल है । भाव उत्कृष्ट और उदार है । गंभीर से गंभीर विषयों को बड़े ही सरल और साधारण ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जो कवि की शैली की मुख्य विशेषता है ।

पाठकों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे इस महाकाव्य को मनोयोग पूर्वक पढ़े, कवि की भावनाओं को समझे और यथासाध्य आचरण में लाने का प्रयास करें ।

इसी शुभकामनाओं सहित ....

निवेदिता
कु. सीता उपाध्याय
(एम. ए. अँग्रेजी)

॥ श्री धुनीवाले दादाजी ॥
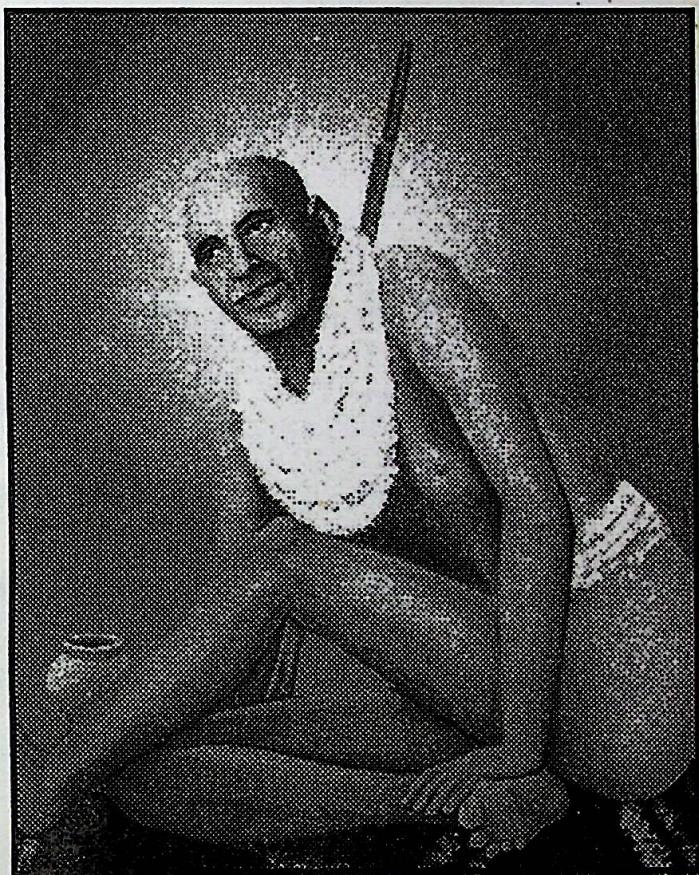
:: समर्पित ::

गुरूदेव तुम्हारे चरणों में कर जोड़ प्रार्थना करता हूँ,
मैं शिष्य तुम्हारा हूँ पग पर सब कर्म और फल धरता हूँ,
तेरे बिन मेरा कौन यहाँ; हे नाथ अकेला रहता हूँ,
लो थाम हमें मैं अपने को तुम पर न्यौछावर करता हूँ ।

❖ चन्दरदास
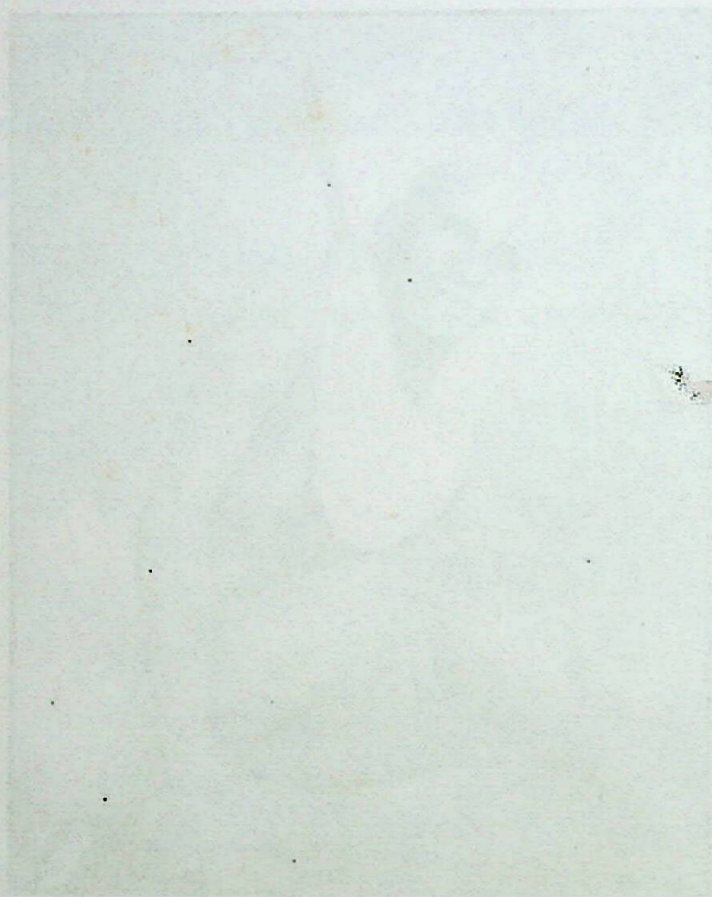
अनुक्रमांक

			पृष्ठ क्रमांक
(1)	प्रथम सर्ग	प्रकृति	15-52
(2)	द्वितीय सर्ग	गुरु आश्रम	53-112
(3)	तृतीय सर्ग	सम्प्रदाय	113-159
(4)	चतुर्थ सर्ग	भाषा	160-192
(5)	पंचम सर्ग	कर्म	193-223
(6)	षष्ट सर्ग	ईश्वर एक	224-271
(7)	सप्तम सर्ग	संसार	272-298
(8)	अष्टम सर्ग	धर्म	299-333
(9)	नवम सर्ग	प्रेम	234-367
(10)	दशम सर्ग	मुक्ति	368-414

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

।। प्रथम सर्ग ।।

प्रकृति

मैं परम पिता परमेश्वर को शत-शत प्रणाम करता हूँ,
इस चर अरु अचर सकल जग को हिय में धारण करता हूँ,
सब कुछ है अंश उसी का लख जीवन अर्पण करता हूँ,
उसका उसको अर्पित कर मैं संसृति वर्णन करता हूँ ।

प्रथम सर्ग

प्रकृति

ज्ञानी हो, ध्यानी हो, योगी हो, जोगी हो, लोभी हो, भोगी हो, तूँ ही तो तारे,
मानव हो, दानव हो, पक्षी हो, भक्षी हो, अवनी हो अम्बर तू सबको सवारे,
मैं हूँ अज्ञानी, अनामी, अकामी, खड़ा याचना कर रहा तेरे द्वारे,
सूकर के, कूकर के, मानव के, दानव के, कोई भी रूप में आओ मुरारे,

प्रातः हो संध्या हो दिन में हो, रात्री हो, दुख में हो; सुख में हो, पालक हमारे,
पूरव हो पश्चिम हो उत्तर हो दक्षिण हो; जल में हो थल में हम तेरे सहारे,
कोई भी रूप में आओ प्रभो तू; भले लगते हो जगत के दुलारे,
दहली के बाहर हो, दहली के भीतर हो, दहली, कहीं पर तूँ दर्शन दो प्यारे ।

तेरेहि रूप हैं ईश्वर, अल्लाह, ईशा व नानक तोर उजाले,
तू ही कभी कृष्ण, राम, मुहम्मद, संत फकीर बने मतवाले,
आये कभी बुद्ध अवतार ले जग, सत्य अहिंसा का रूप सभाले;
चन्द्र कहे एक बार तू आजा, बता तूँ ही है जग के रखवाले ।

दीखे गुलेशा, कबीर तु ही, तुलसी, जायसी रूप ले मतवाले,
गाये कभी संत मीरा बने और तू ही कभी रबिया बन बाले,
एक तु ही ब्रह्मांण में व्याप्त है, दूजा न कोई रहा जग पाले,
चन्द्र कहे एक बार तू आ जा, बता जग में सब तेरे हि लाले ।

गुरु गणेश, माँ सरस्वती, पिता ब्रह्म त्रिपुरारि,
शत-शत तुम्हें प्रणाम है, वर दे वीणाधारि ।

मैं अज्ञानी मूढ़ मति, करता तुम्हें प्रणाम,
देवों के भी देव तुम, थाम हमें लो राम ।

तुम अभेद, निर्द्वन्द हो, सम, समरस जगदीश,
अंधकार को दूर कर, भर प्रकाश रजनीश ।

कलम तुम्हीं, कागज तुम्हीं, तुम ही भाव-विचार,
कथा, कथानक हो तुम्हीं, तुम ही श्रृजन कुम्हार ।

स्वर-व्यंजन का ज्ञान नहिं, शब्द अर्थ अज्ञान,
अलंकार रस छन्द का, नहीं मुझे पहचान ।

कर धर पथ पर ले चलो; मैं अंधा लाचार,
भव सागर से पार कर; नैया है मजधार ।

शुभारंभ करता प्रभु, दो हमको आशीष,
वंदन पूरण कर सकूँ, हे ज्ञानेश, मुनीष ।

हे सूर्य तुम्हें शत-शत प्रणाम,
तुम आदि सनातन, शाश्वत हो,
तुम ही हो नित्य, अजय अव्यय,
तुम ही आनंद प्रभा सत हो ।

तुम ही हो जीवन के दाता,
तुम अखिल विश्व के पालक हो,
तेरे बिन जग में ज्योति नहीं,
तुम प्रभा पुंज के चालक हो ।

तुम से ही सुबह प्रकाश मिले
तुमसे ही जीवन, साँस मिले,
तुमसे ही जग के जीवों को
जीवन जीने की आश मिले ।

तुम आदि सत्य उस ईश्वर के
पहले योगी - सत - श्रोता हो,
तुम ही युग - युग से मानव के
जीवन के शक्ति प्रणेता हो ।

तेरा आना उजियाला है
जाना विश्रान्ति प्रदान करे,
आते ही खिल जाती संसृति
जाते ही जग विश्राम करे ।

दोहा - जड़ - चेतन के प्राण हे; दिनकर तुम्हे प्रणाम,
प्राणों के भी प्राण तुम, विश्व तुम्हारा धाम ॥ 1 ॥

मैं तुमसे हूँ, तुम मुझसे हो,
सब तुमसे हैं, तुम सबके हो,
तेरे बिन कुछ अस्तित्व नहीं,
तुम प्रभा जगत में भरते हो ।

तुम जीवन के आधार पुंज
तुम पर ही जग अवलंबित है,
तेरे पर ही उस ईश्वर की
रचना का भार समर्पित है ।

तेरा ही अंश धरा धारण
करके जननी कहलाती है,
तुमसे अवनी जीवन्त हुई
तुमसे ही माँग सजाती है ।

तुम तेज पुंज हो कर्ण धार
तुमसे निश-दिन ज्वाला मिलती,
तुमसे ही क्षिति, तुमसे ही जल
तुमसे ही नभ शोभा बढ़ती ।

तुमसे ही प्रगट हुई पृथ्वी
तुमसे ही झंझावात हुई,
तुमसे ही लाखों वर्षों तक
इस अवनी पर बरसात हुई ।

दोहा - तुम बिन इस संसार में; शाश्वत और न कोय,
जो आये सब चल बसे; हँसते कोई रोय ॥ 2 ॥

जल मग्न हुई जब यह धरती
तब शीतल शान्त समर्पित थी,
कर जोड़ कर रही थी पूजा
अवलोक हृदय में हर्षित थी ।

हे नाथ ! शान्ति तुम ही देना
मैं डूब रही जल प्लावन में,
मेरे तो केवल तुम ही हो
शरणागत हूँ मन, भावन में ।

तब तुम ही बरसाये ज्वाला
तेरा वह तेज अलौकिक था,
जिससे जल सूख गया जग का
मैं प्रगट हुई तन भौतिक था ।

क्षिति, जल अरु पावक मैं पाई
बह रहा पवन मन्थर - मन्थर,
मैं देख रही ऊपर नभ में
था गूँज रहा पावन मन्तर ।

ये पंचभूत गुदगुदा रहे
हे माँ आँचल में तू ले ले,
हम यहाँ खेलना चाह रहे
अद्भुत लीला तू हिय भर ले ।

दोहा - पाँचों शिशुओं को लिए, आँचल में नित मात,
खेल रही थी जगत में, श्रृजन करत दिन रात ॥ 3 ॥

माँ की ममता माँ ही जाने
जग आज तलक ना जान सका,
छलते आये तब से अब तक
पर ममता - हृदय सुखा न सका ।

माँ गदगद हो, भर ली आँचल
पाँचों मिल कर खिलखिला उठे,
अब रोक नहीं सकता कोई
चाहे अब सारा जग रूठे ।

माँ से आँचल, क्षिति से निर्मल,
जल से शीतलता ले आई,
पावक से लेकर तेज, प्रभा
भर प्राण - वायु तन उपजाई ।

था कहीं शीत तो कहीं उष्ण
चारो दिश इसका राज्य रहा,
यह प्रकृति निरंतर खेल रही
था कहीं ठोस कहिं नीर रहा ।

जल-थल से युक्त रही धरती
पर जीव-जन्तु का नाम नहीं,
वह पड़ी अकेली सिसक रही
वरदान कहीं अरु श्राप कहीं ।

दोहा - **क्षिति जल पावक गगन सँग; खेलत खेल समीर,**
जीव नहीं संसार में; रहे न सुख अरु पीर ।। 4 ।।

क्षिति, जल, पावक औ गगन मिला
सँग मिल समीर रस बरसाये,
भर मधुर प्रेम लावण्यमयी
इस धरती के कण-कण छाये ।

तब नाच उठी थी प्रकृति धरा
लख कर लीला अविनासी के,
जो परम सत्य शाश्वत, पुराण
जो हिय रहता संयासी के ।

हे नाथ तुम्हारे बिना नहीं
मेरा कोई अपनत्व यहाँ,
तेरे सम्बल से ही मेरे
जीवन का है अस्तित्व यहाँ ।

हे प्राणनाथ तुम बिन कैसे
हम श्रृजन यहाँ कर सकते हैं,
कैसे सूखी इस धरती को
हरियाली से भर सकते हैं ।

तू अपना अंश हमें दे दे
हम पार्थिव तन, मन दे देंगे
तू दे प्रकाश हम लोभ मोह
अरु काम क्रोध से भर देंगे ।

दोहा - महाभूत में छिपी है; अनगिन शक्ति अपार,
पर आत्मा की लालसा; प्रकृति सस्नेह निहार ॥ 5 ॥

हम अहंकार, मद, मान खान
सात्विक, राजस, तामस देंगे,
दस इन्द्रिय से प्राणी तन में
हम गुण-अवगुण सब भर देंगे ।

सत अंश तुम्हारा पावन हो
दे सके शान्ति उद्वेलित मन,
जो भी तुमको पहचान सके
उसका हो जीवन नन्दनवन ।

सारी धरती के कण-कण में
वह अंश तुम्हारा ही होगा,
जिसमें तेरे जैसा अद्भुत
सम-रसता का सौरभ होगा ।

जिसकेबल पर ही यह वसुधा,
समता उपवन बन पायेगी,
जिसके बल पर ही कण-कण में
निर्मल, उज्ज्वलता छायेगी ।

जिसका सम्बल लेकर मानव
मानव को गले लगायेगा,
जिसके बल पर फिर देश काल
का भेद नहीं रह जायेगा ।

दोहा - अजर अमर शाश्वत वही; आत्मा जिसका नाम,
सम समरस सर्वज्ञ जो; प्राणी का निज धाम ॥ 6 ॥

जिससे ही ज्योति जलेगी नित
हर मानव के मन के भीतर,
हर जीव जन्तुअरु वृक्ष, लता
में दीखेगा तू हे ईश्वर ।

जिसके बल पर कह पायेंगे
यह सारी संसृति अपनी है,
दुख-सुख में मैं कह पाऊँगी
यह सब ईश्वर की करनी है ।

वह अंश तुम्हारा अविनाशी
कोई भी नाश न कर पाये,
निर्मल, निश्छल, उज्ज्वल, सुन्दर
जिसको नित ही समता भाये ।

जैसे सागर की हर लहरें
तट को भी लहराती रहती,
जैसे सूरज की हर किरणें
जग को आलोकित नित करती ।

वैसे ही तेरे अंशी से
हो सदा प्रफुल्लित यह धरती,
हर मानव मन के अन्तस्तल
निज ज्योति जलाये, निज जलती ।

दोहा - सत्य, नित्य, वह आत्मा, निर्मल, शुद्ध, पवित्र
निराकार, निर्गुण सदा; रहे मनोहर मित्र ।। 7 ।।

बिन जाने कोई आत्मा को
ईश्वर को जान नहीं सकता,
समता के सुन्दर राहों पर
मानव न कभी भी चल सकता ।

वह हर शरीर में शान्तिमयी,
हर जीवन का सम्बल होगा,
जो नित्य, उदास, अकाम, अभय
अरु ईष्या द्वेष रहित होगा ।

जिसको कोई ना मार सके
कोई न जिसे मरवा सकता,
ना मिटा सके कोई जिसको
ना कोई भेद करा सकता ।

वह शाश्वत निर्मल पावन है
जो सत, नित आत्मा कहलाये,
तन बूढ़ा हो जाये तो भी
वह बूढ़ा कभी न हो पाये ।

नश्वर तन नष्ट भले हो पर
वह आत्मा नष्ट न हो पाये,
धारण कर जग में नव जीवन
वह बारम्बार जनम जाये ।

दोहा- सकल जीव में एक ही; आत्म ईश का होय,
नित प्रकाश करता रहे, अंधकार को खोय ॥ 8 ॥

तन अलग-अलग हो कोटि-कोटि
पर आत्मा एक रहे शाश्वत,
हर मानव में, जड़-चेतन में
वह एक ज्योति ही सब में रत ।

पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
वह आत्मा होगा निर्भोगी,
स्थावर, जंगम हर जीवों में
निष्कामी होगा वह जोगी ।

वह आत्म अंश तेरा होगा
तुम जगत पिता कहलाओगे,
अरु आत्म योग से धरती पर
तुम एक कुटुम्ब सजाओगे ।

तेरे आत्मा से मानव में
नित प्रेम लहर लहरायेगा
जिसकी धारा सारे जग को
आप्लावित कर सुख पायेगा ।

सारा जग आनन्दित होगा
मानव, मानकता, पशु, पक्षी,
तरु, कुसुम, लताएँ, वन, उपवन,
होगा न कहीं मानव भक्षी ।

दोहा- अन्तर में वह आत्मा; रहे सदा आनन्द,
काम, क्रोध अरु मोह से; नित्य रहे स्वच्छंद ॥ 9 ॥

होगा तेरा साम्राज्य यहाँ
मैं तो चेरी कहलाऊँगी,
तेरे इस अद्भुत लीला में
मैं चार-चाँद बन जाऊँगी ।

आसक्त जगह प्रति जो होगा
उसको ही मैं ईश्वर पाऊँगी,
अपनी माया के जालों में
मैं निश-दिन उसे फसाऊँगी ।

जो दास बनेगा इन्द्रिय का
उसकी मैं ही मालिक हूँगी,
जो नश्वरता को भोगेगा
उसका जीवन मैं हर लूँगी ।

जो मन के पथ पर जायेगा
भटका राही कहलायेगा,
जो जग को अपना समझेगा
वह अंधा ही रह जायेगा ।

लग जायेंगे तन पर उसके
भय, लोभ, मोह, नित दीपक सा,
भायेंगे उसको काम क्रोध
अभिमानी कामी जीवन सा ।

दोहा - मन के मत से जो चला; वह अंधा नादान,
आत्मा की आवाज का ; उसे नही पहचान ॥ 10 ॥

वह दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध
का ही पुतला बन जायेगा,
संसृति के बन्धन में फँस कर
वह मुर्दा सा रह जायेगा ।

सत सा संसार लगेगा तब
दीखेगा जग कामी जीवन,
भोगेगा भौतिकता का रस
होगा जग का वह अति निर्धन ।

नहिं प्रवृत्ति-निवृत्ति पहचान उसे
नहिं मन निर्मल होंगे उनके,
वे अल्प - बुद्धि कहलायेंगे
लोलुप होंगे तिनके-तिनके ।

पूरी होने वाली न कभी
आश्रय लेंगे वे राहों का,
वे विचरेंगे हो दुराग्रही,
बन जायेंगे बोझा जग का ।

ना जानेंगे वे निज स्वरूप
नित चिन्ता का आश्रय लेंगे,
उनके तो संग्रह और भोग
ही जीवन के निश्चय होंगे ।

दोहा - आप न जाने आप को; जग जाने क्या होत,
जग में अंधियारा मिले; मिले आप में ज्योत ॥ 11 ॥

वे न्याय और अन्याय बीच
कुछ भेद नहीं कर पायेंगे,
आशा के पाशों में बंध कर
गिर पशु सा अधम कहायेंगे ।

अस धोखा व विश्वासघात
नरकी जीवन उनका होगा,
मद, मोह, लोभ अरू काम, क्रोध
ही उनका आभूषण होगा ।

छल, बल को ही मानवता का
अद्भुत सद गुण वे मानेंगे,
कोई जग में न बड़ा मुझसे
ऐसा वे अभिमानी होंगे ।

नित मोह जाल में फसे हुए
वे भ्रमित चित्त वाले होंगे,
ना सत्य-अहिंसा, त्याग, तेज
तप के ही रखवाले होंगे।

अपने को ही अति पूज्यनीय
अरु सत्य पुजारी मानेंगे,
जो भी उनका कहना होगा
उसको ही सत्य बखानेंगे ।

दोहा- जो जग बन्धन में फसा; लुटा वही संसार,
बचा वही जो तज दिया; प्रभु पर अपना भार ॥ 12 ॥

हठ, दंभ, कामना, अहंकार
कामी आश्रय उनका होगा,
अन्तरयामी उनका न कभी
इस संस्कृति में शाश्वत होगा ।

वे क्रूर, अपावन, सविलासी
द्वन्दी रागी द्वेषी होंगे
माया में फस कर युग-युग तक
वे जन्म-मरण भोगी होंगे ।

नरकों में गिर जायेंगे वे
ऐसा असुरी जीवन होगा,
ना मुक्ति कभी मिल पायेगी,
कर्मों का यह प्रतिफल होगा ।

ये काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह
नित पतन करेंगे जीवों का,
जो कोई इनसे बच जाये
वे पायेंगे ईश्वर मनका ।

श्रुति, स्मृति को जो छोड़ेंगे
वे नहीं परम गति पायेंगे,
हो जिसका अन्तःकरण शुद्ध
नित मुक्त वहीं हो जायेंगे ।

दोहा- शुद्ध चित्त चन्दर तभी, शुद्ध कर्म हो धर्म,
श्रुति सम जब हो आचरण ; जाने अन्तः मर्म ।। 13 ।।

गुरु से जिसको मिल जायेगा
गुरुज्ञान वही ज्ञानी होगा,
उस सदा प्राप्य परमात्मा का
वह ही सच्चा सानी होगा ।

उस आत्मा के अतिरिक्त यहाँ
ना और कहीं कुछ भी होगा,
इस संसृति के हर कण-कण में
शाश्वत परमात्मा ही होगा ।

इस आत्मा को परमात्मा का
जो सत्य अंश ही मानेगें,
समझो उसने जाना जग को
वह निज स्वरूप पहचानेंगे ।

जैसे आत्मा परमात्मा में
कुछ भेद कभी ना होता है,
जैसे तेरे अरु मेरे में
मत भेद न शोभित होता है ।

वैसे ही संसृति के प्राणी
खग, कीड़े, पशु अरु वृक्ष लता,
होंगे उस ईश्वर के स्वरूप
कुछ भेद नहीं होगी इकता ।

दोहा- भेद नहीं जग में कहीं; पंचभूत के वंश,
जड़-चेतन में चेतना केवल ईश्वर अंश ॥ 14 ॥

यह पाँच तत्व सब जोवों में
हर हिय में ही ईश्वर होगा,
नित वही विराजे चिदानन्द
हर मन में नन्दनवन होगा ।

हो नहीं आप स्थूल देह
हो नहीं सूक्ष्म नहिं कारण हो
हो आप प्रकाशित शुद्ध ज्ञान,
तुम उदासीन सत-धारण हो।

तुम सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्रों
को स्वयं प्रकाशित करते हो,
तुमसे ही यह संसार फलित
तुम आप-आप में रमते हो।

अन्तर मन को जो जगा सके
वह तेरे सत को जानेगा,
वह ही संसृति के जीवन को
नित निज स्वरूप सा मानेगा।

तुम सत्य अहिंसा के स्वरूप
तुम ही अविनाशी, शाश्वत हो,
यह दृष्यादृष्य जगत तेरा
तुम निज स्वरूप अनुशासित हो।

तुम तो हो मुक्त स्वरूप सत्य
तुम से ही जग सब अपना है ,
तुमसे ही जग में मिलने का
इक देखा हमने सपना है।

**दोहा - वह शाश्वत निज ज्योति से; करता हृदय प्रकाश,
आत्म रूप होना सदा; हर प्राणी की आस ॥ 15 ॥**

तुम से जग प्रेममयी माला
तुम धागा हो हम मानिक हैं,
तुमसे ही हम हैं नित्य फलित
तुम प्रभु हो हम नाबालिक है।

तुमसे ही है स्फूर्ति, शक्ति
तुमसे ही रसमय यह जीवन,
तुमसे ही आनन्दित मानव
तुमसे ही है जग सुन्दर-वन ।

जो संसृति को रसमय कहता
वह कभी न सत को पहचाने,
फस जाता भूल भुलैया में
जीवन सर्वस्व मिटा,माने।

तू बाँधों जग को लड़ियों में
प्रभु ऐसी लीला दिखलाओ,
जिससे अपने इस संसृति में
तुम निज स्वरूप में रम पाओ।

ऐसा तुम दीप जला दो प्रभु
जिससे अँधियारा मिट जाये,
अन्दर बाहर वह दिव्य ज्योति
नित नित्य निन्तर भर जाये।

दोहा - सत शिव सुन्दर ईश तुम; नमन तुम्हें शत बार,
अन्तर में तुम नित बसे, कैसा साक्षात्कार ॥ 16 ॥

हे ईश तुम्हारी दिव्य ज्योति
मानव अन्दर ऐसा जागे,
जिसके प्रकाश में मानव के
मन की सब अभिलाषा भागे।

उसको न पराये अपने में
कुछ भेद यहां रह जायेगा,
सबके अन्दर है एक ब्रह्म
यह सत्य देख वह पायेगा।

उसको न कहीं पूरब-पश्चिम
उत्तर, दक्षिण वाला दीखे,
उसको न कहीं ऊँचा-नीचा
हिन्दू-मुसलिम ज्वाला दीखे।

उसको न कहीं सिख, ईसाई
योगी, भोगी जैनी दीखें,
उसको न कभी नर-नारी में
कुछ भेद कहीं जग में दीखे।

दोहा- जहाँ तुम्हारी बंदगी; वहां रहे नहिं भेद,
छन्द मुक्त स्वच्छंद नित; दीखे जगत अभेद ॥ 17 ॥

उसके हिय में यह अखिल विश्व
अपनों सा ही भर जायेगा,
हर कण-कण में ईश्वर दीखे
हर हृदय-फूल मुसकायेगा।

यह कृपा तुम्हारी जब होगी
तब ही मानव मानव होगा,
तेरे बिन जग में दया नहीं
नहिं धर्म ध्यान होगा योगा।

हे ईश जला दे वह दीपक
सारा जग उजियाला छाये,
वह आत्म-दया कर दे जग पर
संसृति तुम सा ही हो जाये।

जग में प्राणी का हर सुख-दुख
अपना हर सुख-दुख हो जाये,
हर साँस समर्पित हो ऐसा
मानव में मानवता आये।

यश-अपयश हो या हानि-लाभ
कुछ भेद नहीं मन में दीखे,
हो राग द्वेष या सत असत्य
प्रभु कभी नहीं आत्मा दीखे।

दोहा- विचरे सब निर्द्वन्द हो; करो कृपा रघुवीर,
बिना दया के चेतना; जागे नहीं शरीर ॥ 18 ॥

तू समता का रस भर देना
जो मानवता का गहना है,
जिसमें सारी संसृति डूबे
जिसकी परिणति ही बहना है।

तू किसी कर्म-फल, देश , काल
या घटना और परिस्थिति में,
ऐसा जीवन दे देना प्रभु
भर जाये अनासक्ति मन में ।

हो कर्म तुम्हारे ही निमित्त
ऐसा सम-चिन्तन तू भरना,
तेरे चरणों की सेवा में
सारा जग चाहे ही रहना।

हो हर क्षण समता में स्थित
ऐसा मन बुद्धि सदा देना,
समता ही सत होता जग में
हर योगी, जोगी का गहना ।

समता ही है तेरा स्वरूप
अन्तर में नित वह ही भाये,
जिससे इस जीवन में सबको
वह मुक्ति परम-पद मिल जाये ।

दोहा- समता ही परमात्मा; और कहाये योग,
समता में स्थिति जहाँ; वहाँ रोग नहिं भोग ॥ 19 ॥

दो भेद कहाते समता के
इस साध्य और दूजा साधन,
है साध्य-रूप-समता ईश्वर
जो सत स्वरूप शाश्वत आनन।

साधन रत समता कहलाती
अन्तर आत्मा की निर्मलता,
जो भरा प्रेम, माधूर्य, सरस
है पावन, अविरल, कोमलता।

ऐसी समता तू भर देना
हे स्वतः सिद्ध सत परमात्मा,
हो सके अनुग्रह नित्य प्राप्त
हो जाये प्रफुलित जग-आत्मा।

है नित्य योग फल समता ही
उसका न वियोग कभी होता,
सत-योग सदा ही होता है
सतकर्मों में ही कौशलता।

कर्मों में समता ना होगी
तो अहम व ममता ही होगी,
ये पशुता के सारे लक्षण
दीखे नहिं मानवता योगी।

दोहा- समता के हैं भेद दो, साधन दूजा साध्य,
एक कहाये आत्मा, एक ईश सौभाग्य ॥ 20 ॥

जब तक समता ना आयेगी
तब तक मनु एक नहीं होगा,
अपने-अपने बट जायेंगे
तब महानाश जग का होगा।

समता ही आत्मा का गुण है
पर कृपा तुम्हारी जब होगी,
आत्मा अन्दर, समता बाहर
सम-रस मानवता कब होगी ।

समता कर्मों के बन्धन से
नित मुक्त पुरुष को करती है,
जग बन्धन से आजाद रहे
जीवन में नित रस भरती है।

वह ज्योति जलाती अन्तर मन
समझाती आत्मा ही ईश्वर,
सारा जग ईश्वर रूप यहाँ
हिय में झंकृत करती सत स्वर।

देना तू समता योग हमें
जग में उज्ज्वता छा जाये,
अरु काम क्रोध मद लोभ मोह
से बिचलित मन ना हो जाये ।

दोहा - समता से नित होत है; पावन भाव विचार,
मन इन्द्रिय अरु बुद्धि में; होत सत्य संचार ॥ 21 ॥

जैसे सागर में नदियों का
आकर जल मिलता रहता है,
पर मर्यादित सागर अपार
नित अचल प्रतिष्ठित रहता है।

वैसे ही जब समता आती
तो मल, विकार कितना आये,
पर योगी का मन अचल रहे
चंचलता तनिक न मन भाये।

संपूर्ण भोग इस संसृति का
बिचलित ना उसको कर पाये,
कंचन, कांता भी मन अन्दर
उद्वेलित भाव न भर पाये।

बस एक भाव मन रह जाये
मैं प्रभु का हूँ प्रभु ही मेरा ,
यह मानव तन सारा जीवन
है उसका ही सुन्दर डेरा।

प्रभु से विनती कर रही प्रकृति
तू कृपा हमारे पर करना,
समता का आभूषण पहना
इस संसृति को पावन करना।

छंद - समता बिन नाहिं स्वभाव रहे; नहिं भाव व शुद्ध विचार रहे,
रहे योग न जोग बिना समता; नहिं ईश्वर जीव अधार रहे,
समता बिन जीवन की सरिता; न अबाध्य बहे न किनार रहे,
कहे चन्द्र जहाँ समता ही नहीं; वहाँ झाँक कभी नहिं प्यार रहे, ॥ 22 ॥

तेरी उदारता से सारा
जग समता का सागर होगा,
सबका दुख अपना दुख होगा
सुख में ही अपना सुख होगा।

जड़- चेतन में कुछ भेद नहीं
सब में ईश्वरता छायेगी,
संसृति के हर कण-कण में तू
तेरी सुगंधि भर जायेगी।

तेरे विभूति को जो जाने
वह लीन भक्ति में हो जाये,
जो योग तत्व को पहचाने
वह परम शान्ति पद नित पाये।

कर बार-बार विनती प्रभु से
वह माँगी निर्मल चेतनता,
उस अंशी ने तब अंश दिया
जो कहलाई आत्मा - प्रभुता ।

वह सत्य-अहिंसा त्याग, दया
अरु शान्ति माँग ली ईश्वर से,
वह धैर्य, क्षमा मांगी प्रभुता
ली कोमलता विनती स्वर से ।

दोहा - सत्य, अहिंसा, त्याग अरु क्षमा, दया, श्रृंगार,
सत स्वभाव मानव हृदय, मानवता आधार ॥ 23 ॥

वह अंधकार, मन बुद्धि तत्व
अरु ली विवेक निज अन्तर से,
पर क्षिति, जल, पावक, गगन तत्व
ली इस संसृति के मंथन से ।

अरु विविध रूप स्थावर-जंगम
रँग जड़-चेतन निर्माण किया,
सब में उस अंशी का चेतन
भर कर माया संचार किया ।

तब वृक्ष, लता, पशु, कीट हुए
मानव में मानवता आई,
धर रूप लाख चौरासी वह
भूतल पर चेतनता छाई ।

सब रूपों में थी प्रकृति एक
सब में चंचलता छाई थी,
सब में उस ईश्वर की माया
सब में संगीत समाई थी ।

उस ईश्वर की अद्‌भुत लीला
से प्रगट हुई अद्‌भुत माया,
जिसमें सारी संसृति खोई
पर कोई-कोई तर पाया ।

दोहा- जानों माया ईश का; सुन्दर, सुचि वरदान,
बिन माया संसार यह; लागे मनु समशान ॥ 24 ॥

तब से अब तक जल रहा दीप
उस परमात्मा का सच मानों,
हर कण-कण वही समाया है
जग को उसका ही तुम जानों ।

जिसने भी आत्मा को ढूँढा
उसको जग दिखलाया सपना,
जिसने माया में उलझाया
वह तन-मन को माना अपना ।

जिसकी अन्तर-आत्मा जागी
उसको जग दीखा ईश्वरमय,
जिसकी माया ताने चादर
उसको जग लगता सुख-दुख मय ।

गुण तीन प्रकृति के संसृति में
सत, रज, तम रूप कहाते हैं,
जिसमें बँध अविनाशी देही
नित जन्म-मृत्यु को पाते हैं ।

ये ममता और कामना से
सारे जग को बाँधे रहते,
अरु अविनाशी, नित आत्मा को
मैं में ही भरमाते रहते ।

दोहा - माया के गुण तीन हैं; सत रज तम तू जान,
आत्मा जिसमें उलझकर; बँध जाये अभिमान ॥ 25 ॥

सत गुण सुख सान लिए फिरता
मानव को माया में रखता,
यह मिला हुआ सुख बना रहे
ऐसी इच्छा मन में भरता ।

जो ज्ञान मिला है, ईश कृपा
वह तो मेरा ही हो ज़ाये,
ऐसा हो मन में आकर्षण
जग बन्धन तब वह कहलाये ।

है मुक्त वही ज्ञानी होता
जो ज्ञान नहीं अपना माने,
है ज्ञानी वह इस भ्रम को जो
मन से निकाल जग पहचाने ।

सुख, ज्ञान ईश की भक्ती में
कारण होते हैं लक्ष्य नहीं,
घटते- बढ़ते हैं निश-दिन ही
समरस रहते वे कभी नहीं ।

जो रहे नित्य निज सावधान
सतगुण उसको ना बाँध सके,
जो उदासीन, समता वासी
वह बेड़ा सागर लाँध सके ।

दोहा - ज्ञानी अभिमानी हुआ धनी चाह में चूर
जानो इस संसार में; उससे बड़ा न सूर ।। 26 ।।

रज-गुण होता है रागमयी
प्रियता पैदा इससे होती,
प्रियता से ही तृष्णा जागे
आसक्ति बीज मन में बोती ।

तृष्णा मन को ललचाती है
आसक्ति जगाती रह मन में,
उपजाती है वह काम, क्रोध
अरु मोह, लोभ हर जीवन में ।

है कर्मों में आसक्ति जहाँ
होता रज-गुण मनु सच मानो,
ज्यों-ज्यों बढ़ता जाये त्यों-त्यों
बढ़ता मद काम प्रवृत्ति जानो ।

यह कर्म वृत्ति बढ़ने से ही
नर नये-नये नित कर्म करे,
निश दिन फँस इसी वृत्ति में वह
चिन्ता माया में तपा करे ।

बँध जाता है मानव इसमें
फिर जन्म-मरण फल पाता है,
जीवन की शाश्वत अभिलाषा
वह छोड़ निरर्थक जाता है ।

दोहा- तृष्णा अरु आसक्ति जहँ; होये कर्म प्रवाह,
रज गुण उपजे मन तले करे ईश से डाह ।। 27।।

इसलिए राग अरु द्वन्द छोड़
समता-जीवन जीना सीखो,
तुम तृष्णा अरु आसक्ति त्याग
निष्कामी रस पीना सीखो ।

देखों अपने नश्वर तन को
जो बालक, यौवन वृद्ध हुआ,
फिर लौट नहीं पायेगा वह
यदि कालजयी से युद्ध हुआ ।

वह काल नहीं आयेगा फिर
इस धरती से जो चला गया,
वह लौट नहीं पायेगा फिर
जो बचपन हमसे छला गया ।

राजा, महराजा बड़े-बड़े
सब चले गये इस धरती से,
हो गये खंडहर राजमहल
ऐश्वर्य मिटा वेदर्दी से ।

तू देख जरा तृष्णा शायद
हो सके तृप्त इस जीवन में,
आसक्ति त्याग शायद सच्ची,
भर जाय भक्ति तेरे मन में ।

दोहा - जिस मन तृष्णा तृप्त हो, अनाशक्ति हिय छाय,
जानो उस मन में मनुज; सत्य-भक्ति भर जाय ॥ 28 ॥

सुख भोग के लिए संग्रह अरु
नित कर्मों का आरम्भ नहीं,
पर सेवा में ही रत रहना
हो अनासक्त अरु राह नहीं ।

तू जहाँ देख अज्ञान महा
समझो तम गुण साम्राज्य वहाँ,
जो निन्दा व आलस्य लिए
फैला प्रमाद मन बुद्धि जहाँ ।

सत-असत और योगी-भोगी
का ज्ञान नहीं उसको होता,
सांसारिक सुख-सुविधा, संग्रह
में नित्य निरन्तर मन रमता ।

करना न काम करने लायक
दुनियाँ का ही अनहित करना,
ना करने लायक कर्मों को
करना ही तम गुण का गहना ।

जगने पर भी सोते रहना
है कहलाता आलस प्यारे,
बिन काम निकम्मा ही रहना
होता लक्षण तामस सारे ।

दोहा - तम गुण के लक्षण सही; आलस नींद प्रमाद,
अनभल नित करता रहे, उलझत नित्य विवाद ॥ 29 ॥

फिर कर लेंगे; करना न काम
हर काम टालना तामस है,
अज्ञान भरी बातें करना
ना जीवन में होता रस है ।

तम-गुणी भटकता जन्म-मरण
चौरासी लाखों की योनी,
तन पाता वृक्षों अरु पशुओं
कीटों का जीवन हो बौनी ।

जो त्रिगुणों को पहचान लिया
वह ही योगी कहलाता है,
तृष्णा, ममता निन्द्रा न कभी
मानव को काम सताता है ।

उसको न क्रोध अरु मोह, लोभ
मद आलस कभी सताते हैं,
हो अनासक्त पर सेवा में
नित परम शक्ति वे पाते हैं ।

है प्रकृति-गुणों का कृत्य यही
बिनती कर बोली थी माया,
इनके ही बस हो कर निश-दिन
गढ़ना है हमको जग-काया ।

दोहा- त्रिगुणी इस संसार में; बचा न कोई जान,
अज्ञानी जाने नहीं, जाने संत सुजान ।। 30 ।।

सतगुण से ज्ञान इन्द्रियों को
अरु अन्त-करण बनाना है,
रज गुण से कर्म इन्द्रियों को
अरु संसृति प्राण सजाना है ।

तम गुण से इस नश्वर तन का
हमको निर्माण कराना है,
अरु अन्तर में अविनाशी का
चिर परिचित अंश सजाना है ।

इस तरह श्रृष्टि का सृजन हुआ
ईश्वर की कण-कण में माया,
उसके ही श्रेष्ठ विचारों पर
जग निर्मित, उसकी ही साया ।

युग धीरे-धीरे बदल गया
फिर वर्ण प्रथा जग में छाई,
सत, रज, तम गुण पर अवलम्बित
इक नई व्यवस्था बन पाई ।

सारे भूतल पर पशु, पक्षी
अरु वृक्ष, लताएँ कीट-पतँग
नर-नारी, जड़-चेतन, स्थावर
जंगम फैले सब भरे उमग ।

दोहा - प्रकृति संग माया मिली; काया बनी सुडौल,
कण-कण में भर चेतना; करे ईश नित तौल ॥ 31 ॥

पर सब में उस परमात्मा का
इक अव्यय अंश समाया था
वह हुआ प्रज्ज्वलित मानव में
तब मानवता कहलाया था ।

कुछ भेद नहीं तेरे मेरे
सब उस ईश्वर के प्यारे थे,
वे ही सबके थे मात पिता
वे ही सबके रखवाले थे ।

जो जहाँ बसा इक नाम रखा
उससे अपने को जोड़ लिया,
बँध गया वहीं जलवायु मिला
वैसा ही रूप स्वभाव लिया ।

कोई हिन्दू, अरबी रूसी
चीनी, इंगलिश हो कहलाया,
कोई अफ्रीकी, अमेरिकन
कोई फ्रांसीसी स्वर पाया ।

जो कुछ भी भेद दीखता है
वह सब सत-रज-तम गुण का है,
हे मानव पर वह ईश्वर ही
सबके अन्तर में रहता है ।

दोहा - सभी भेद गुण कर्म में; आत्मा होत अभेद,
क्या हिन्दू क्या मुसलमाँ; होत तनिक नहिं छेद ।। 32 ।।

जिसने रब का जो नाम लिया
उसका ही गीत मधुर गाया,
जो निकल गई वाणी मुख से
भाषा उसको वह ही भाया ।

यह मेरा है, यह तेरा है
ऐसा कोई ना भाव रहा,
हर हिय में उस परमात्मा प्रति
शाश्वत नित प्रेम अगाध रहा ।

ऐसे ही यह संसृति खुश थी,
था भेद-भाव का नाम नहीं,
सारा जग ईश्वर रूप लिये
हर हृदय भरा था प्यार मही ।

ना भाषा में, ना बोली में,
ना धर्म, मर्म में भेद रहा,
ना क्षेत्रवाद, ना सम्प्रदाय,
था कहीं न वाद-विवाद रहा ।

मानव खुश था, संसृति खुश थी
अरु प्रकृति संतुलित थी जग में,
ईश्वर खुश था, माया खुश थी
पर सेवा ही था हर हिय में ।

दोहा- पर सेवा हो हृदय में; संसृति लागे एक,
कोई वाद न ऊपजे; ले मानवता टेक ॥ 33 ॥

मानवता देख प्रफुल्लित थी
पेड़ों-पौधों में भी रस था,
सब झूम रहे मंथर मंथर
तप, दान, यज्ञ में जग रत था ।

ईश्वर का अंश प्रफुल्लित था
जग सारा ही आनन्दित था,
सत-कर्म-भाव, सम-बुद्धि रही
मानवता से सिंचित मन था ।

जाने कब छाई वसुधा पर
दानवता की काली छाया,
कब भावों में बदलाव हुआ
कब आई जग पर यह माया ।

कब मानव में तकरार हुआ,
कब मानव मलिन विचार हुआ,
कब बुधि-विवेक में बन्द हुआ,
कब मनु मन खार समुद्र हुआ ।

कब मनु की चेतनता सोई,
कब वृक्षों ने प्रभुता खोई,
कब से मनु पशु की चाल चला
हिय में प्रेमी सरिता रोई ।

दोहा- कब मानवता खो गई; माया हुई मलीन,
स्व स्वभाव को छोड़कर; प्रकृति हुई अति दीन ।। 34 ।।

कब भाव बढ़ा, कब क्रोध बढ़ा
कब जाति-पाति का जोर बढ़ा,
कब मानव-मानव में नफरत
कब अधंकार का शोर बढ़ा ।

भाषा स्वरूप है भावों की
कब से कुरूप हो नाच रही,
कब अपने और पराये में
मत-भेदों को ले बाँट रही ।

कब देश बटा कब युद्ध हुआ
कब मानवता अवरुद्ध हुई,
कब ममता और कामना से
भावुकता जड़ में बद्ध हुई।

कह पाना बहुत कठिन यारों
पर हुआ सभी इस संसृति में,
तब से अब तक अनगिन काँटे
हैं चुभे मनुज अन्तस्थल में ।

हर तरफ खाईयाँ ही दीखी
हर ओर दरार उभर आया,
हर तरफ खून की धारायें
हर ओर मौत सर पर छाया ।

दोहा - मनुज मनुजता से गिरा; घिरा द्वन्द घनघोर,
सूखा प्रेम जहान से, भरा खून चहुँओर ।। 35 ।।

मतभेद भरा देखो मन में
है अंधियारा चहुँ ओर घिरा,
हिन्दू, मुसलिम, सिख, ईसाई
के बीच द्वन्द घनघोर घिरा ।

लड़ रहे कई भाषा को ले
है धर्म कहीं आड़े आया,
लेकर कोई सरहद सीमा
तो क्षेत्र कहीं पर टकराय।

मानव तन से सत प्रेम गया
मानव तन से निज नेम गया,
मानव आभूषण मर्यादा
वह भी संसृति से दूर भया ।

मानव की आत्मा सुप्त हुई
मानवता कहीं विलुप्त हुई,
श्रद्धा, विश्वास रहा न कहीं
समता समाज से लुप्त हुई ।

हे ईश्वर क्या होगा जग का
जब मानव ही मानव न रहा,
यह धरा कराह रही अब तो
कोई भी राह दिखा न रहा ।

दोहा- गुरु बिन इस संसार में राह दिखावे कौन,
ईश कृपा बिन संत से, चन्द्र मिलावे कौन ॥ 36 ॥

गुरु ज्ञानी, ध्यानी सजग, ब्रह्म जीव के बीच,
सेतु होत भव सिन्धु पर, पार करावत खीच ॥ 37 ॥

।। द्वितीय सर्ग ।।

गुरु आश्रम

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

द्वितीय सर्ग

गुरु आश्रम

वंदना गुरुदेव की शत-शत करुं माँ शारदी
तत्व ज्ञान प्रकाश अनुपम, कृपा जिनकी नारदी,
चरण में जिनके विराजे अखिल संसृति भारती
उस चरण का नित्य करता आत्मा से आरती ।

दया,करुणा,प्रेम के सागर महान मुनीष हैं
निराकारी ब्रह्म के साकार सुन्दर शीश है,
वेद की व्याख्या मही पर ज्ञान के गागर वही
भृगुटि में है कृपा पावन, जो जगत को तारती ।

ज्ञान की गंगा निरन्तर बह रही जिस हृदय से,
जहाँ समतायोग की धारा बहे अति प्रबल से,
जहाँ से माधूर्य की शीतल मधुरिमा निकलती,
उस चरण का नित हृदय से मैं उतारूँ आरती ।

जिस चरण में मोह माया की नहीं कोई चले,
कामना, ममता जहाँ पर शुष्क जंगल सा जले,
क्रोध की ज्वाला बुझे, नहिं राग दीखे पर कहीं
उस चरण की वंदना कर नहिं अघाति भारती ।

जिस हृदय में विश्व का हर जीव एक समान है
जहाँ नित निर्वाद रहता, वाद का नहिं मान है,
जहाँ सुख-दुख,जय-पराजय,हानि-लाभ रहे नहीं
जहाँ जग कल्याण की ही भावना नित धारती ।

जिस हृदय में सत्य-चित-आनंद की गंगा बहे
जहाँ सुर अरु ताल में संगीत बजता ही रहे,
जहाँ पर संसार प्रति आसक्ति का खंडहर नहीं
वहीं सतगुरु है हमारा करुँ जिसकी आरती ।

जहँ दंभ, प्रचंड घमंड मिटे,अरु मान मिटे करुणा कर से,
जहँ काम मिटे,अरु क्रोध मिटे,भय,मोह मिटे जिसके रज से,
जहँ शोक,अशान्ति,आसक्ति मिटे, ममता,कामना जिसके घर से,
कह चन्द्र वही गुरु है जग में प्रभु प्रेम जगे जिसके वर से ।

जिस जीवन में गुरु होत नहीं, निगुरा जग में वह सूर कहावे,
ज्ञान व ध्यान नहीं जिसके,मनुऐसा ही जीवन क्रूर कहावे,
भोग-विलास में आ़श रखे, जग-पास फँसे वह घूर कहावे,
चन्द्र कहे गुरु ज्ञान बिना नर पामर, पापी लंगूर कहावे ।

मिले न कोई राह जब; गुरु को चन्द्र पुकार,
गुरु के आशीर्वाद से; होता बेढ़ा पार ।

फैला हो चारो तरफ; अधंकार अज्ञानु,
सद्गुरु की पावन कृपा; दे प्रकाश जस भानु ।

समझ न आवे क्या करुँ; जाऊँ किस डग,धाम,
तब गुरु के ही शरण में; जा कर ले विश्राम ।

गुरु बिन होत न ईश का; अरु आत्मा का ज्ञान,
जीव-जगत के गाँठ को सुलझाये सम्मान ।

द्वन्द, द्वेष, आसक्ति मद, ममता, भय संसार
सद्गुरु की पावन कृपा; कर देती उद्धार ।

जाओ गुरु की शरण में; लो उनका आशीष,
हो जग में कल्याण तब; कहें सुजान मुनीष ।

भोर हुआ ऊषा सिंदुरी
प्रभा अलौकिक बरसाती,
अमिय रश्मि छवि चली आ रही
दिन कर की महिमा गाती ।

ह्रदय तुम्हारा कितना विस्त्रित
जितना है अवनी-अम्बर,
तेरी उर्जा से जीवित जग
तुमसे ही संसृति सुन्दर ।

शीतलता तुमसे ही आती
ताप तुम्हीं से मिलता है,
ज्योति तुम्हीं से ही आती है
तुमसे ही जग फलता है ।

तुम्हीं ब्रह्म के आदि शिष्य हो
तुम अविनाशी योगी हो,
तुम्हीं सनातन कर्मरथी हो
तुम रमते सत जोगी हो ।

तुम्हें नमन है शत-शत मेरा
आदि पुरुष स्वीकार करो,
निर्मम, अनासक्त निष्कामी
हमको शक्ति प्रदान करो ।

दोहा - सकल शक्ति के श्रोत तुम; दिनकर तुम्हें प्रणाम,
देवों के भी देव हो; जीवन देना काम ।। 1 ।।

विनय कर सकूँ उस ईश्वर से
तुम वह शक्ति हमें देना,
वही पिता है एक हमारा
उससे आज मिला देना ।

अधंकार को दूर भगा दो
कहीं न हो जाये देरी,
संसृति को नव राह दिखा दो
विनती है तुमसे मेरी ।

सुन विनीत स्वर भास्कर जागे
खुली आँख ज्वाला निकली,
फैल गई संपूर्ण विश्व में
प्रथम रश्मि की प्रभा कली ।

इसी प्रभा में विचरण करते
दीखे योगी मतवाले,
मन में गुरु दर्शन की चाहत
पहने थे सब मृगछाले ।

ये प्रकाश के पुंज चले जो
सद्‌गुरु का दर्शन करने,
सरबस शक्ति, भक्ति जीवन का
चरणों में अर्पित करने ।

दोहा - मन में हो दृढ़ आस्था; परम भक्ति, सत प्यार,
ऐसे ही सद शिष्य को; गुरु दर्शन अधिकार ॥ 2 ॥

उज्ज्वल राह दिखाना गुरुवर
अलोकित मन हो जाये,
अमिय असीमित ज्योति पूंज से
सारी संसृति भर जाये ।

मन में ऐसा साहस भरना
पग आगे बढ़ता जाये,
कभी न रुकने पाये पथ पर
मौत भले सर मडराये ।

वेद, कुरान, बाइबिल, गीता,
गुरूग्रंथ साहब भजते,
मतवाले योगी बालक सब
चले गुरू-माला जपते ।

भाव-विभोर बढ़े आश्रय पथ
अर्पण सत श्रद्धा करने,
दर्शन की अभिलाषा मन में
सद्गुरु-पद-रज सिर धरने ।

शान्ति मिलेगी होगा दर्शन
आश्रम की निर्मल छाया,
मलयानिल, फूलों का सौरभ
सुन्दरतम उज्ज्वल साया ।

दोहा - बिना समर्पण शान्ति नहिं, बिन न त्याग आनन्द,
बिन ईश्वर की कृपा के, मिले नहीं गुरु छंद ॥ 3 ॥

जहाँ नित्य भजते योगी मन
ईश्वर अल्ला तेरो नाम,
जहाँ सुबह ऊषा गाती है
भज ले मन निष्काम अनाम ।

प्रथम रश्मि संदेशा लाती
कहती यह जग माया है,
कभी न जग अपना होता है
कभी न होती काया है ।

सभी चराचर उसी प्रकृति के
अंश जहाँ माने जाते,
पवन जहाँ शीतलता पाता
अमृत रस नभ बरसाते ।

निशदिन मंगल हो संसृति की
जहाँ याचना की जाती,
जहाँ सभी मत एक साथ हो
ऐसी विनती ही भाती ।

ईश्वर, अल्ला नाम तुम्हारा
तुम ही जगत विधाता हो,
जहाँ समर्पण ही पूजा है
पिता तुम्हीं हो माता हो ।

दोहा - अति निर्मल पावन परम; शीतल मंद बयार,
एक ब्रह्म है मंत्र नित; बरसत आश्रम द्वार ॥ 4 ॥

जिस आश्रम के पूरब सागर
नित शीतलता फैलाता
लहर-लहर संगीत-गीत से
आश्रम को धो-धो जाता ।

गंगा जहाँ अमिय जल से नित
चरण पखारा करती है,
गंगा-सागर नाम जहाँ का
अतिपावन वह धरती है ।

अरब महासागर नित पावन
जिस आश्रम को करता है,
जहाँ कृष्ण की मधुर बासुरी
कानों में रस भरता है ।

जहाँ हिमालय की ऊँचाई
विजय पताका फहराती,
जहाँ सिंधु की गहराई नित
आत्मा में झाँका करती ।

जिस आश्रम के चरण धूलि को
हिन्द महासागर धोता,
जहाँ सत्य की पूजा होती
रामेश्वर वंदन होता।

दोहा - गंगा सागर पूर्व में, पश्चिम अरब सुहाय,
ऊपर हिमगिरि, चरण में सागर हिन्द लुभाय ॥ 5 ॥

ख्वाजा साहब की वाणी जहँ
अमृत वर्षा करती है,
जहाँ पीर औ पैगम्बर की
दुआ सर्वदा रहती है ।

जहाँ कबीर, सुर, तुलसी औ'
मीरा बंदे नित गाते,
गुरू नानक, ईशा, मूसा जहँ
पूज्यनीय पूजे जाते ।

नित अजान कर मांगी जाती
जहाँ दुआ उस ईश्वर से,
जहाँ विश्व कल्याण के लिए
विनय किया जाता रब से ।

सत्य-अहिंसा, प्रेम, दया का
शिक्षा जहाँ दिया जाता,
कण-कण में जगदीश बसा है
सत्य जहाँ माना जाता ।

मातृ भूमि सेवा सर्वोत्तम
जहाँ सिखाया जाता है,
जहाँ पेड़-पौधों, पशुओं को
भजन सुनाया जाता है ।

छंद - जिस आश्रम में गुरुओं की कृपा, नित निर्झर नीर बहा करती,
शिवलिंग सुशोभित चारो दिशा जमुना, कृषणा, गंगा बहती ,
जहँ हिन्दु मुसलमान के हिय में; जग मंगल की कामना रहती,
कह चन्द्र वही यह आश्रम है, जहँ मानवता की दिया जलती ॥ 6 ॥

जहाँ ईश वंदन से ही नित
सुबह और संध्या होती,
जहाँ नर्मदा ब्रह्मपुत्र अरु
कावेरी ताप्ती बहती ।

जहाँ अकामी मन गाता है
सुख-दुख में सम रहना है,
हार-जीत अरु हानि-लाभ में
भेद नहीं कुछ करना है ।

जहाँ कर्म की पूजा होती
धर्म-मर्म जाना जाता,
जहाँ ईश अरु जीव बीच नहिं
भेद तनिक माना जाता ।

जहाँ अद्वेष्टा, मैत्री, करुणा
निर्मम, निरहंकारी हैं,
यहाँ यतात्मा सतत योग में
संतोषी, प्रिय-चारी हैं ।

जहाँ द्वेष, ईर्ष्या, भय, मद का
चिन्ह नहीं पाया जाता,
जहाँ उदासी, व्यथा, क्षोभ अरु
राग नहीं गाया जाता ।

छंद - जहँ सिंधु सदा रखवाली करे व हिमालय मान बढ़ाता रहे,
जहँ भेद व भाव का नाम नहीं, सद्भाव में मानव गाता रहे,
जहँ धर्म धरा पर रोज खिले जहँ द्वेष व्यथा नहिं नाम रहे,
कह चन्द्र वही यह आश्रम है, जहँ प्रेम सदा ही सुहाता रहे ॥ 7 ॥

जहाँ नहीं मानापमान अरु
शीत-उष्ण, सुख-दुख होता,
ऊँच-नीच, निर्धन-धनियों में
भेद नहीं हिय में बोता ।

जहाँ हृदय में प्रेम, समर्पण,
और भक्ति, श्रद्धा रहती,
भावों में वात्सल्य भाव का
जहाँ मधुर नदियाँ बहती ।

वसुधा एक कुटुम्ब जहाँ है
वह आश्रम आने वाला,
जहाँ अखंड ज्योति जलती है
वहाँ शीश झुकनेवाला ।

जहाँ सिंधु अरु ब्रह्म-पुत्र की
निर्मल जल धारा बहती,
शरद,ग्रीष्म,वर्षा ऋतुएं नित
जहाँ धर्म धारण करती ।

जहाँ सुबह गीता, कुरान की
ध्वनि से नभ गूँजा करता,
जहाँ बाइबिल, गुरु साहब की
वाणी का झरना झरता ।

दोहा- वसुधा एक कुटुम्ब है, ईश्वर एक सुजान,
मात,पिता,गुरु सब वही; वही प्रीति अरु ज्ञान ॥ 8 ॥

जहाँ राम अरु कृष्ण कन्हैया
जनमें, हमको जाना है,
सत्य-अहिंसा, क्षमा-दया का
मंत्र वहीं से पाना है ।

उस आश्रम का दर्शन करने
चले शिष्य ले मन श्रद्धा,
आँखों में ऊषा की लाली
भावों में रजनी गंधा ।

एक शिष्य का नाम अहिंसा,
एक शिष्य सत कहलाता,
एक प्रेम सुन्दर स्वरुप का
एक दया था बतलाता ।

सबने देखा ज्योति पुंज सा
चमक रहा उज्ज्वल तारा,
एक अलौकिक कांति सामने
अमिय तेज, सुख कर न्यारा ।

मन मोहक रमणीय दृष्य था
अति अनुपम वह गुरुद्वारा,
एक झलक से ही आत्मा में
परम शन्ति जागृत सारा ।

दोहा - शान्ति और परमात्मा; दोनों एक समान,
परम सत्य पौरुष वही; होत किसी को ज्ञान ।।9।।

देखा आश्रम में आसन पर
बैठे थे सद्‌गुरु ज्ञानी,
शील, शान्ति अरु करूण, दया का
रूप लिए मानो दानी ।

मन-भावन पावन आसन था
देख चकित मन हरसाया,
अरु अनेकता में क्षण दीखा
एक एकता की छाया ।

हिमगिरि सा ऊँचा आसन था
बिछा हुआ था मृग छाला,
ज्योति निरंतर निकल रही थी,
धधक रही अविरल ज्वाला ।

कलरव करते फुदक रहे खग
आश्रम में बाहर-भीतर,
फैलाए पर नाच रहे थे
मोर, कबूतर औ' तीतर ।

फूलों से थी भरी क्यारियाँ,
उपवन की अनुपम शोभा,
गूँज रहे थे भौरे गुन-गुन
हृदय तितिलियों ने लोभा ।

दोहा - सद्‌गुरू की अनुपम कृपा; सोहे तीतर मोर,
फूल खिले चहुँओर लख; होवत आत्म विभोर ।।10।।

शावक, बछड़े और मेमने
खेल रहे थे उपवन में,
भेड़, बकरियाँ, गाय सिंह सँग
झूम रहे थे मधुवन में ।

शीतल, मंद, सुगन्ध वायु नित
बहता मृदु, मंथर-मंथर,
हर प्राणों को सुरमित करती
अमित शान्ति सुषमा सुन्दर ।

झूम रही थी डाली-डाली
झूम रही थी हर बेली,
कुसुम-लतायें गलबाहीं कर
खेल रही थी अठखेली ।

वहाँ न कोई काम क्रोध अरु
भय, मद से श्रापित दीखा,
वहाँ न लोभ, मोह, संसय, दुख
और नहीं; जीवन फीका ।

आश्रम केवल मर्यादा का
सत स्वरूप इक दर्पण था,
सत्य-अहिंसा, मानवता का
चुम्बकीय आकर्षण था ।

दोहा - मानव पशु में भेद नहिं, सिंह भेड़ में प्रीति,
मानव मानवता लिये, पशु रहते नित रीति ।।11।।

कोटि-कोटि भास्कर किरणों से
आलोकित आश्रम दीखा,
अनगिन चाँदों की शीतलता
से सिंचित आश्रम दीखा ।

पावन पर्ण-कुटी थी निर्मल
समाधिस्त गुरुवर जिसमें,
कुसुम लताओं से आच्छादित
शीतलता छाई उसमें ।

मंद-मंद मृदु पवन वह रहा
झर-झर-झर झरता झरना,
क्लांत पथिक विश्रान्ति ले रहे
कल्पवृक्ष का ले शरना ।

गुरुवर बैठे मृग - आसन पर
प्रभा अलौकिक बिखर रही,
आँखों में था तेज चमकता,
अद्भुत आभा निकल रही ।

चन्दन से सुरभित ललाट था
मृगछाला कटि में पहने,
सत सहस्त्र यदि सूर्य उचित हो
तो प्रकाश लख कर, सहमें ।

दोहा - कोटि-कोटि मिल कर कलम; लिखे नहीं लिख पाय,
गुरुकी महिमा में सकल; कागज भी खुट जाय ॥12॥

तेज पुंज देदीप्यमान तन
छिटक रही थी अमिय प्रभा,
अप्रेमय गुरु का स्वरूप था
ईश्वरीय सुन्दर प्रतिभा ।

मुख मंडल उज्ज्वल भास्कर सम
भुजा विशाल रहा उनका,
मानव जन्म कृतार्थ होत जो
कर लेता दर्शन उनका ।

ईश्वर, अल्ला, ईशा, नानक
एक तत्व गुरु में दीखा,
एक चन्द्र, सूरज, तारागण
एक सत्य उनमें दीखा ।

दशों दिशाएं उसी प्रभा से
आलोकित था भू-मंडल,
आदि, मध्य औ' अन्त रहित वे
संसृति के अनादि संबल ।

स्याम वर्ग अति उग्र रूप तन
भाल विशाल, जटा छाई,
शील शान्ति साकार रूप धर
मानो पृथ्वी पर आई ।

छंद - गुरुदेव को शत-शत नमन जो जीव के आधार हैं,
सकल तन-मन-धन समर्पित, जो जगत के सार हैं,
एक तेरा ही सहारा, जगत दीपक आप हैं,
आप ही करुणा दया अरु प्रेम के सौगात हैं ॥ 13 ॥

झुका शीश गुरु के चरणों में
गुरु का अभिवादन करने,
मानो श्रद्धा, भक्ति झुकी हो
सदगुरु से विनती करने ।

मन संतोष भरा था मानो
सम्मुख बैठा हो ईश्वर,
मानो अंधे को दीखा हो
आँखों से अवनी-अंबर ।

आँख खुली गुरुवर की मानो
ऊषा की लाली छाई,
मानों आशीषों की अंजलि
भर आशीष स्वयं आई ।

आँखों में अस ज्योति भरी है
जिससे जग आलोकित है,
चहेरे पर वह अद्भुत रस है
जिससे अमृत सिंचित है ।

दोहा- आँखों में आशीष है, हिय में अमृत खान,
वाणी में वह रस भरा, जिससे अमिय जहाँन ॥14॥

गुरु बाहें इतनी अनंत हैं
जग सारा जिसमें आता,
नेत्रों की सीमा के बाहर
जग कुछ भी नहिं रह जाता ।

उनमें राम, कृष्ण छवि दीखी,
उनमें ही अल्ला दीखे,
उनमें सद्‌गुरु नानक दीखे
उनमें ही ईशा दीखे ।

उनमें दया, धर्म का दीपक
जलते एक संग दीखा,
सत्य अहिंसा अरु मर्यादा
उस छवि से जग ने सीखा ।

उस छवि का वर्णन कर सकता
मानव की सामर्थ नहीं,
मानों ईश्वर, अल्ला, ईशा
प्रगट हुए हो साथ मही ।

ऐसे गुरु के श्री चरणों में
शिष्य झुकाए सिर बैठे,
और उसी देदीप्य पुंज में
अपना सरवस दे बैठे ।

दोहा - सत्य शिष्य पहचान है; हिय में आस्था, मीत,
भक्ति समर्पण शील हो; सदगुरु प्रति हो प्रीत ॥15॥

गुरु की आँखें खुलीं प्रभा सम
बालक नत मस्तक दीखे
नश्वर आश्रय तज संसृति का
शाश्वत पथ पर सब दीखे ।

सूक्ष्म दृष्टि से गुरु ने देखा
कोमल शिष्यों की आस्था,
टपक रही थी प्रीति दृष्टि से
चमक रहा सबका माथा ।

सबके मन में आत्म समर्पण
और भक्ति का भाव भरा,
सबके मन में मर्यादा अरु
शील, शान्ति, सौभाग्य भरा ।

गुरु को अपनी ओर देखते
देखा निर्मल शिष्यों ने,
अति-निष्छल, आत्मीय कंठ से
किया निवेदन शिष्यों ने ।

ईश हमारी एक प्रार्थना
हम शरणागत हैं तेरे,
अंधकार जग का मिट जाये
राह दिखा दो प्रभु मेरे ।

दोहा - सदगुरु मिल जाये जगत; जानो सत सौभाग्य,
जन्म-जन्म का पूण्य फल; प्रगट सामने आय ॥16॥

हम अज्ञानी मंद, मूढ़ मति
क्या जाने संसृति माया,
क्या जाने आत्मा, परमात्मा,
धूप न जाने हम छाया ।

दर्शन कर हम धन्य हुए हैं
कृपा आप की अपरम्पार,
आशीर्वाद हमें प्रभु देना
डूब न जायें हम मजधार ।

विनती कर जब मौन हुए सब
तब सदगुरु मृदु मुसकाए,
शीतलता मानो पूनम की
चाँद अमिय रस बरसाये ।

शूक्ष्म ज्ञान से गुरु ने देखा
शिष्य अलग पथ से आये,
अलग-अलग है मनोभावना
अलग-अलग मत अपनाये ।

क्षण में देख लिया बाहर अरु
अति भीतर की उथल-पुथल,
दिव्य दृष्टि से रह न सका कुछ
उनका छिपा आज औ' कल ।

दोहा - सद्गुरु के शत दृष्टि से; छिपा न कोई ज्ञान,
क्या मूरख, ज्ञानी जगत; दीखे सभी समान ।।17।।

एक ईश का राह लिए था,
एक खुदा का मतवाला,
गुरु नानक का एक शिष्य था,
एक रटे ईशा माला ।

चारों की भाषा अनेक थी
भिन्न सभी का पहनावा
मान रहे सब धर्म अलग हैं,
कर्म अलग करते दावा ।

कोई हिन्दी बोल रहा था
कोई द्राविण, पंजाबी,
बोल रहा असमी, अंग्रेजी
कोई उर्दू अरु अरबी ।

सभी धर्म कर्म वादी पर
सत कोई ना पहचाने,
चेहरे पर अज्ञान प्रगट था
एक तत्व को क्या जाने ।

बुधि से कोरे चंचल बालक
पर मानवता झलक रही,
अरु मन तल में संदेहों की
कहीं भीड़ भी प्रगट रही ।

दोहा - अनगिन राही धरा पर; जाना सबको पार,
बिन सदगुरु की कृपा के; जान सके नहिं सार ॥18॥

कहीं मन तले भेद भाव का
अंकुर भी उगते दीखा,
कहीं हृदय में भोलेपन की
भाउकता बढ़ते दीखा ।

प्रफुलित बदन, मधुर मुख मंडल
शीतल आँखें मुसकाई,
वसुधा एक कुटुम्ब हमारा
एक पिता वह ही माई ।

सत्य अहिंसा दया धर्म ही
अखिल विश्व का है जीवन,
सुन्दरता, मानवता, गुरुता
और प्रेम होता है, धन ।

ब्रह्म बंधु है, वही सखा है
जग का वह सरवस दाता,
वह है विद्या वही अविद्या,
वही पिता सबकी माता ।

बिना ईश के जग में कोई
पत्ता नहीं हिला सकता,
वह करुणा का महा सिंधु है,
और प्रीति नित हिय भरता ।

दोहा - बिना ईश की कृपा के; सत्य न जाने कोय,
पार वही भव सिंधु से; ज्ञान जिसे सत होय ॥19॥

उसका ही सतनाम अमर है
होता बड़ा रहम वाला,
मेहरवान जर्रे-जर्रे पर
इतना शूक्ष्म करम वाला ।

पावन जग है उसी बदौलत
शाक-पाक इतना वह है,
उसकी परम कृपा से अवनी
अरु अम्बर स्थिर नत है ।

वही हमें चलना सिखलाता
राह हमें दिखलाता है,
वही हमारे सभी गुनाहों
को माफी दे जाता है ।

उसके बिना जहाँ में कोई
तिल तक नहीं उठा पाता,
उसके रोशन से सारा जग
जीवन रौशन हो जाता ।

गुरु बोले बस एक वही सत
और नहीं दूजा कोई,
जिसने संसृति के घर-घर में
प्रेम बीज अमृत बोई ।

दोहा- एक सत्य परमात्मा; दूजा और न कोय,
सारा-जगत असत्य है; प्रकृति नचावे सोय ॥20॥

एक तत्व पर नाम अलग है
हर अवतार वही लेता,
संसृति है माया का बंधन
जीवन सार वही होता ।

वही अमर है, वही सनातन,
पूरी धरती है उसकी,
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
सभी दिशाएँ हैं उसकी ।

नश्वर है पाताल, गगन, भू
नश्वर प्रकृति चरा-चर है,
केवल एक वही शाश्वत है
गिरि कण तक वह व्यापक है ।

उसकी कृपा बिना नहिं होता
जनम-मरण सम्भव जग में,
उसका ही है नूर बरसता
मानव के अन्तर मन में ।

गुरु बोले उसकी ऊँचाई
हिम-गिरि से भी ऊँचा है,
गहराई में सागर से भी
अधिक अधिक वह नीचा है ।

दोहा - अणु से भी वह शूक्ष्म है, गिरि से बड़ा महान,
अरु उसकी करुणा, कृपा, अनगिन गुना जहान ॥21॥

वह ईशा हो क्षमा, दया का
पाठ जगह को सिखलाया,
कष्ट सहा पर मानवता का
राह नहीं वह तज पाया ।

जो अपने पापों को उनके
चरणों में रख देता है,
उसके भूलों को वह ईश्वर
सदा क्षमा कर देता है ।

क्षमा-सिंधु वह एक ब्रह्म है
जो हर पाप हरण करता,
शुद्ध हृदय से जो आता है
उसे अमर पद वह देता ।

काल न उसे ग्रसित कर सकता,
तेज न उसे जला सकता,
नीर न गीला कर सकता
पवन न उसे सुखा सकता ।

क्षण भर को गुरु शान्त हो गये
डूब गये अन्तर मन में,
सोच रहे थे एक ईश पर
दीख रहा हर कण-कण में ।

दोहा- अनगिन रूपों में वही; एक ब्रह्म दिखलाय,
भेद करे वह मूढ़ है, जोड़े संत कहाय ।।22।।

एक ब्रह्म पर दृष्टि जगत की
अभी अधूरी, कच्ची है,
काश समझ लेते हर नदियाँ
एक सिंधु में मिलती हैं ।

मन ही मन वे सोच रहे थे
मन कितना चंचल इनका,
एक ईश के प्रति भावों में
कितना है अन्तर इनका ।

काश बुद्धि जागृत हो जारी
अहंकार जग का मिटता,
अलग-अलग का द्वन्द जाल यह
मिट कर एक राह बनता ।

इनकी बुद्धि जगानी होगी
वरना कट-मर जायेंगे,
और कभी ईश्वर रहस्य को
जान नहीं ये पायेंगे ।

सब कहते हैं एक सत्य पर
खीच रखे मन में रेखा,
तेरे-मेरे के झगड़े में
एक सत्य बटते देखा ।

दोहा- संसृति के हर जीव का; हो जाये कल्यान,
ऐसी दैवी भावना, बिन गुरु और न आन ॥23॥

तेरे - मेरे की सीमा में
बँधे हमारे बालक हैं,
उस असीम को नहीं जानते
जो संसृति के पालक हैं ।

इनकी सीमा के बन्धन को
हमें खोलना ही होगा,
इनके इन कुंठित भावों को
हमें तोड़ना ही होगा ।

चिन्तन से जब आँख खुली तो
ऐसी खामोशी छाई,
मानो स्मशान के तट पर
सबकी आत्मा हो आई ।

उस खामोशी में गुरुवर के
मन में निश्चय भर आया,
धन्यवाद ईश्वर को जिनसे
आत्म ज्योति हिय जल पाया ।

टूटा गुरु का मौन, सभी में
ईश्वर को देखा उनने,
आँखों में ममता भर आई
हिय से प्रेम लगा झरने ।

दोहा - गुरू हृदय नवनीत सम; बुद्धि करुण आकार,
ब्रह्म - जीव से बीच में; होता वह पतवार ॥ 24 ॥
गुरु बिन होत न ज्ञान मनु; ज्ञान बिना नहिं ध्यान,
ध्यान बिना ईश्वर नहीं; ईश बिना निष्प्रान ॥ 25 ॥

हे प्रभु! ज्ञान मुझे देना तू
इनको राह दिखा पाऊँ,
तेरे सत्य रूप से इनका
साक्षात्कार करा जाऊँ ।

अन्तर आत्मा फूट पड़ी ज्यों
कल-कल कर नदियाँ बहती,
जीवन के सच्चे रहस्य का
पल-पल उद्घाटन करती ।

शास्त्र-मतों के मत-भेदों से
मति तेरी है बौराई,
उसके प्रति हर मोह तुम्हारा
है केवल दल-दल खाई ।

गिरे हुए हो उस खाई में
निकल बता कब आओगे,
कब समझोगे जीव एक है
एक ईश तुम पाओगे ।

प्रथम शास्त्र के मत-भेदों से
अलग तुम्हें होना होगा,
और मोह के दल-दल में से
निकल तुम्हें जीना होगा ।

दोहा - अपने-अपने शास्त्र से; करो मोह तू भंग,
अंधकार को दूर कर; मन कर स्वच्छ असंग ॥26॥

दूजा तुम इस निखिल विश्व के
मानव को अपना मानो,
जीव-जीव में भेद नही है,
परमात्मा सबको जानो ।

ऊँच नीच का भेद न मन में,
धनी नहीं निर्धन कोई,
सभी अंश हैं उस अंशी के
जाग्रत कर अन्तर सोई ।

श्रद्धा अरु विश्वास हृदय धर,
मन निश्छल करना होगा,
ईश चरण का एक सहारा
तुमको हिय धरना होगा ।

सब धर्मों ने मूल मंत्र इक
सत्य - अहिंसा माना है,
जग कैसा भी हो पर सबको
छोड़ एक दिन जाना है ।

जीव ब्रह्म का एक अंश है
और उसी को पाना है,
कितना भी हो कहीं मतान्तर
सत्य सभी ने माना है ।

दोहा- सत्य, अहिंसा, क्षमा अरु दया धर्म का मूल,
भेद नहीं कहु होत है; हो कैसा भी कूल ।।27।।

अतः तुम्हें उस एक ईश प्रति
शीश झुकाना ही होगा,
जग से तनिक न नाता मनु का
अटल सत्य पाना होगा ।

तुम असत्य को सत्य मानते
यह तेरी है कमजोरी,
अचल और निश्छल जब होगी
बुद्धि बनेगी तब कोरी ।

तभी तुम्हें जग एक दिखेगा
एक ईश मन में होगा,
ईश्वर-अल्ला एक दिखेंगे
कहीं न मन अन्तर होगा ।

जब मानव का जग में सारा
ही बन्धन कट जायेगा,
उसी एक सत्य से सच्चा
नाता तब हो पायेगा ।

नित्य योगमय पर सेवा की
जब अनुभूति हृदय होती,
कर्मयोग तब कहलाता है
जब न कामना मन होती ।

दोहा- कर मत मैला मन मनुज; ईश्वर अल्ला एक,
भेद करत उलझत जगत; लेत कामना छेक ॥ 28 ॥

उस विराट के प्रति चिन्तन ही
ज्ञान योग कहलाता है,
प्रेम बरसता कभी सत्य प्रति,
भक्ति योग बन जाता है ।

किया कभी जब चिन्तन लय से
लययोगी हो जाता है,
प्राणायाम किया उस सत प्रति
हठयोगी कहलाता है ।

यम-नियमादि आठ अंगों से
जब उसका अनुभव होता,
जब जानो अष्टांग योग ही
धरती पर अविरल बहता ।

जाल बुनी तुमने खुद अपनी
लोभी, मोही, संसारी,
उसी जाल में फसे शान से
गई तुम्हारी मति मारी ।

मोह, महा दल-दल है जग में
हर जीवों की कमजोरी,
हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, इसाई
बँधे हुए सब इस डोरी ।

छंद - नव योग जगे मन में तुम्हरे, तब चिन्तन ईश की आप करें
दिन रात सुहात भजन, कीरतन, भक्ति योग हि से मन आप भ
उपकार के कर्म हि नीक लगे, मत भेद जरा मन में न धरे
उवरे जग - दल-दल से चन्दर, जिसके मन ईश्वर प्रेम झरे ॥29

पाना इससे पार कठिन है
महा जाल हम स्वयं बुने,
एक बार जो फस जाते हैं
समझो अपना काल चुने ।

शान, मान, मर्यादा, संस्कृति
सभी मोह के परिधि तले,
निकल नहीं सकता है मानव
कितना भी हो वीर भले ।

तन प्रति ममता और अहंता
मात-पिता, मामा-मामी
तिरिया, पुत्र, वस्तु प्रति ममता
मोह कहावे, हे कामी ।

तुम चेतन हो औ शरीर जड़
दोनों में कैसी समता,
कैसा यह सम्बन्ध अभागे
कैसी जड़ प्रति है ममता ।

मोही तुम ना देख सके; है-
आँखों पर माया परदा,
अभिमानी ! मन के ऊपर से
पोछ सको पोछो गरदा ।

दोहा - जड़ चेतन का संग जग; हो नहिं सके सुजान,
माया का सब फेर है, तजे वही सत जान ॥ 30 ॥

नित सम्बन्ध बढ़ा संसृति से
रह जाते हो तुम वंदे,
और बीच पथ सत्य भूल कर
मर जाते हो तुम वंदे ।

जैसे बीच राह में कोई
हँसी, खेल में फँस जाता,
जैसे सुरा- सुन्दरी को लख
बीच राह में रह जाता ।

वैसे ही इस नाशवान के
संग्रह औ सुख लेने में,
वैसे ही तन-मन, वाणी प्रति
ममता, राग सजोने में ।

सकल जिन्दगी लुट जाती है
कुछ भी साथ नहीं जाता,
मुट्ठी बन्द किये आता है
खाली हाथ चला जाता ।

वे ही तेरे काम न आते
जिनको अपना कहते हो,
जीवन के अन्तिम क्षण में तुम
रो- रो कर नित मरते हो ।

दोहा - आता हाथ पसार कर, जाता हाथ पसार,
फिर क्यों डूबा मोह, मद, ममता में संसार ॥ 31 ॥

निकल सका जो इससे बाहर
सत्य रूप उसने जाना,
ममता और अहंता को नहिं
अपना जीवन सुख माना ।

बोध सत्य का हो जाना ही
मोह नदी से तरना है,
अनासक्त मन हो जाना ही
सागर पार उतरना है ।

मोह जाल से मुक्ति के लिए
केवल दो पथ होते हैं,
एक भक्ति-ज्ञान पथ, दूजा-
पर-सेवा रत कहते हैं ।

जो चाहो वह राह चून लो
तन,मन, बुधि, विचार तेरा,
पर रखना तू याद मनुज यह
साथ नहीं देगा डेरा ।

पर सेवा का भाव हृदय में
प्रबल वेग जितना होगा,
उतना विषय-वासनाओं से
दूर तुम्हारा मन होगा ।

दोहा - **तन, मन, बुद्धि, विचार अरु; वाणी, ममता, मोह,**
सब बाँधे संसार में; उपजे काम व कोह, ॥ 32 ॥

मिट जाती है सुख की इच्छा
पर सुख से सुख मिलता है,
संसृति की सेवा करने का
भाव हृदय में खिलता है ।

पर मानव मत मतान्तरों में
उलझ-उलझ निज को खोया,
संप्रदाय, मत, पंथ, शास्त्र के
मोह जाल में है सोया ।

ईश्वर अल्ला धर्म नाम से
अलग-अलग खीचा तानी,
कहलाता शास्त्रीय जाल जग
निकल नहीं पाता प्रानी ।

उलझे हुए छटाक सूत का
ढेर कहाता संसारी,
तो सौ मन उलझे सूतों का
होता है शास्त्री पारी ।

दोनों राहों से जो निकला
बुद्धिमान कहलाता है,
निश्छल अचल सरल राही नित
ईश्वरीय पद पाता है ।

दोहा - माया में उलझा मनुज; जानो सूत छटाँक,
सौ मन उलझे सूत सा; शास्त्र जाल की धाक ।। 33 ।।

ईश शरण रहने वाला मनु
भेद नहीं मन में रखता
हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, इसाई
हर हिय में ईश्वर दिखता ।

अखिल विश्व के पूज्यनीय हैं
राम, कृष्ण, ईशा भाई !
और मुहम्मद, गुरु नानक की
सबने ही प्रभुता गाई ।

इन पुरुषों के हृदय सिंधु में
करुणा की धारा बहती,
निखिल विश्व की मानवता पर
शीतलता ही नित झरती ।

इनके मन में भेद नहीं था
सभी चराचर अपने थे,
संसृति में छाये खुशियाली
इनके मन के सपने थे ।

पशु-पक्षी, वाटिका, तलैया
हो चाहे मानव जीवन,
कीट पतंगे हों; जल-चर या
थलचर या हो जड़ चेतन ।

दोहा - हर प्राणी प्रति प्रेम ही; मानवता कहलाय,
जो जाने पंडित वही; बाकी मूर्ख कहाय ॥ 34 ॥

अमिय प्रेम जग में लहराये
सबके सुख में सुखी रहो,
जीव, जगत पर सदा समर्पित
दुख में कभी न दुखी रहो ।

तभी आज तक इस संसृति में
अमर और पूजित वे हैं,
उन्हें काल नहिं मार सका है
वन्दनीय सबके नित हैं ।

जब तक मन में भाव न होगा
हर जीवन, जग है अपना,
तब तक कैसे पूरा होगा
तेरे जीवन का सपना ।

प्रिय शिष्यों इनके जीवन से
सीख तुम्हें लेनी होगी,
इनकी राहों पर चल कर ही
तुम्हें शान्ति बोनी होगी ।

इन पुरुषों की राह एक है
सत्य, शील, सेवा करना,
हर जीवों प्रति दया हृदय में,
अमित प्रेम भरते रहना ।

दोहा- **एक राह हो सत्य की, पर सेवा हो कर्म,**
हर प्राणी प्रति प्रीति हो, यही मनुज का धर्म ॥ 35 ॥

भेद, बुद्धि को त्याग ज्ञान से
उजियाला जीवन कर लो,
शाम भले ही हो जाये पर
अमिय प्रेम हिय में भर लो ।

शुद्ध चित्त से करो प्रार्थना
उस अविनाशी ईश्वर से,
मन पवित्र हो जाये तेरा
मन्दिर, मसजिद के वर से ।

जो सतकर्म करो जीवन में
सब उसको अर्पित कर दो,
कल की चाहत, तनिक न रखना
प्रीति जगत कण-कण भर दो ।

अहंकार के वसीभूत मनु
संसृति में अंधा होता,
मन, बुधि अपना मान जीव नित
तिल-तिल जीवन भर जलता ।

कर दो अर्पण परमात्मा को
मन, बुधि, इन्द्रिय, सुख अपना,
वरना जीवन व्यर्थ रहेगा
जग बंधन में बँध सपना ।

दोहा - अहंकार ही जगत में; सब अवगुण की खान,
प्रीति मनुज को ईश का; एक अमिय वरदान ॥ 36 ॥

सूरज ढलते देख पक्षियाँ
निविड़ ओर उड़ जाती हैं,
वैसे ही जीवन ढलते लख
आत्म देह तज जाती है ।

देह न तेरा, मेरा, उनका,
जात-पात, मत पंथ नहीं,
दीख रहा जग वैसा है नहिं
दीख रहा नहिं, वही सही ।

ईश कृपा से तुम आये हो
महिमा तुम्हें सुनाऊँगा,
तेरे ही इस मधुर प्रेम से
जग में फूल खिलाऊँगा ।

तेरी श्रद्धा, भक्ति प्रबल अति
पूरा है विश्वास मुझे,
मेरे सारे अनुभव के तुम
सही पात्र हो आश मुझे ।

गुरु वाणी से तेरे मन को
निर्मल पावन कर दूँगा,
गीता के जीवन रहस्य को
तेरे सम्मुख धर दूँगा ।

दोहा - ज्यों लक्षण नवजात के पलने में दिख जाय,
त्यों सत शिष्यों की परख; सतगुरु को हो जाय ॥ 37 ॥

ब्रह्म जीव का क्या है नाता
तुमसे सत्य बताऊँगा,
जीव जगत के जग-बंधन का
राज आज मैं गाऊँगा ।

जग-बंधन में पड़ा हुआ मनु
कैसे तोड़ सके बंधन,
क्यों करती है आज जगत में
मानवता बैठे क्रंदन ।

संप्रदाय अरु जाति धर्म में
कैसी आज लड़ाई है,
सीमा में बंधकर व्याकुल माँ
कैसी चीख लगाई है ।

क्यों मानव मानव का दुश्मन
नित्य पियासा रहता है,
दिन प्रति दिन क्यों प्रेम के बिना
यह संसार तरसता है ।

कर्म,धर्म, भाषा विवाद क्यों
प्रकृति आज है मतवाली,
नर्क बन गया है मनु जीवन
क्यों छोड़ा पथ सत माली ।

दोहा - भाषा भावभिव्यक्ति है, धर्म शुद्ध चित जान,
प्रेममयी संसार यह; फिर क्यों भेद सुजान ॥ 38 ॥

एक एक पथ पर मैं विस्त्रित
चर्चा तुम्हें सुनाऊँगा,
तेरे पथ पर ब्रह्म ज्ञान का
दीपक अमिय जलाऊँगा ।

वह ईश्वर कण-कण में बसता
तनिक न भेद कहीं रहता,
वह शाश्वत सुख का दाता है
सबका दुख वह ही हरता ।

सूक्ष्म दृष्टि से सारी धरती
सदा उसी में रहती है,
उसमें ही निश-दिन वह जीती
उसमें ही नित फलती है ।

ईश्वर कृपा अपार जगत पर
जग उसकी सुन्दर रचना,
जग में मानव अरु मानवता
उसकी अनुपम संरचना ।

हर प्राणी है अंश ईश का
प्रेम तुल्य इसको जानो,
मानव का कर्त्तव्य एक है
पर सेवा सद्‌गुण मानों ।

दोहा - पर सेवा सम कर्म नहिं, धर्म न सम उपकार,
पर सेवा में जो लगे; उसका हो उद्‌धार ॥ 39 ॥

कभी भटक जाना यदि पथ पर
प्रायश्चित कर लेना तू,
आत्म निवेदन उससे करना
दूर कभी मत रहना तू ।

जान रहा हूँ तू संसारी
अनगिन दोष भरे होंगे,
दूर भगाने का प्रयत्न पर
तुम्हें आज करने होंगे ।

सभल-सभल कर पग रखना ही
मानव का सत कर्म यहाँ,
मानवता का आदर करना
हर प्राणी का धर्म यहाँ ।

ऊँच-नीच, निर्धन - धनियों में
जग में अनगिन खाँई है
चूक हुई तो बच न सकेगी
मानवता अकुलाई है ।

बाधायें, कितनी भी आयें
चीर उसे तू बढ़ जाना,
धीरज कभी न खो देना तुम
हिम्मत हार नहीं जाना ।

दोहा - चित में धीरज धर्म हो, मन में हो उत्साह,
मिटा सके मानव वही; भेद-भाव की चाह ।। 40 ।।
बाधायें कितनी रहे, बढ़ता वीर अथाह,
जीत-हार की वह कभी, करे नहीं परवाह ।। 40 अ ।।

कभी मान-सम्मान लिए कर
आयेगी सुन्दर बाला,
कभी विकारों का प्याला ले
दिखलायेगी मधुशाला ।

देख उसे नहिं तुम खुश होना
लक्ष्य तुम्हारा और कहीं,
तुमको जाना और कहीं है
तेरा है अस्तित्व कहीं ।

तुम्हें यहाँ तो आना ही था
विधि का यही विधान महा,
इसे विधाता के विधान का
सुन्दर घटना मान यहाँ ।

अहंकार अरु मन-विकार ही
पथ में बाधक होते हैं,
निरहंकारी, अविकारी ही
संसृति सदा सजोते हैं ।

जहाँ कभी भी काम सताए
राम नाम जप लेना तू ,
और उसी क्षण उस स्थल को
त्याग तुरत चल देना तू ।

दोहा- **काम मिटे जप राम से; अहंकार निज ज्ञान,**
राग मिटे वैराग्य से; द्वेष प्रेम से जान ॥ 41 ॥

मन में लोभ कहीं भर जाए
नश्वरता स्मरण करना,
मर्यादा पुरुषोत्तम जीवन
हृदय तले तू धर लेना ।

क्रोध नाश का मूल कहाता
कभी नहीं मन में लाना,
आ जाये यदि कभी मन तले
प्रीति राह तू अपनाना ।

मोह जाल है नित माया ही
जो अंधा कर देती है,
सत-असत्य का ज्ञान न जाने
भेद मन तले सेती है ।

कर्म राह पर चलते-चलते
कभी न मद में बौराना,
राग-द्वेष उपजे यदि मन में
आप-पराया तज जाना ।

तुम लोगों की राह एक है
पर मन में है भ्रान्ति भरी,
नहीं दीखता तुम्हें बीच में
खड़ी एक दीवार मरी ।

दोहा- सभी कर्म संसार का; होता माया जाल,
भेद-भाव दीवार को; तुम्हें ढहाना लाल ॥ 42 ॥

उसी भीत को मन से अपने
तुमको आज ढहाना है,
आज खड़े जो अलग-अलग हैं
उनको गले लगाना है ।

व्यर्थ विवादों में घिर तेरा
कहीं समय न गुजर जाये,
मानव तन पा कहीं न तेरा
सारी व्यर्थ उमर जाये ।

कह कर गुरुवर शान्त हो गये
मानों कुछ प्रत्याशा हो,
एक दृष्टि शिष्यों पर डाली
मानों कुछ अभिलाषा हो ।

एक अलौकिक शान्ति देख कर
सभी शिष्य स्वर में बोले,
आँख खुल गई आज हमारी
जग रहस्य ऐसा खोले ।

प्रीति किसे कहते हैं जग में
आज समझ में आई है,
जगत-जीव अरु जीव ब्रह्म का
भेद आज खुल पाई है ।

दोहा - सत्गुरु जिसको मिल गया; उसका जीवन धन्य,
हर रहस्य संसार का; गुरु खोले नहिं अन्य ॥ 43 ॥

है न यहाँ पर कोई अपना
नहीं पराया संसृति में,
आत्मा-परमात्मा हर कण-कण
नित्य बसा इस संसृति में ।

जग सेवा ईश्वर वंदन है
आज हमें मालूम हुआ,
एक ईश के विविध रूप हम
और उसी की एक दुआ ।

हम सब चरणों में प्रण लेते
जग को अपना मानेंगे,
जो भी आज्ञा होगी उसको
हम सौभाग्य हि जानेंगे।

दृष्टि गई गुरु की शिष्यों पर
देखा सभी अभेद हुए,
मत-मतान्तरों से ऊपर उठ
इस संसृति के वेद हुए ।

खिली हुई थी हिय कोमलता
दया आँख में झलक रही,
मधुरी वाणी निकल रही थी
अमिय ज्योति जस बरस रही ।

दोहा - गुरु के आशीर्वाद से; आत्म बोध हो जाय,
जिसपर गुरु की हो कृपा मुक्ति उसे मिल पाय ॥ 44 ॥

फिर बोले गुरु एक ईश ही
है सबका मालिक जग में,
उससे ही है अखिल विश्व यह
वही जीव भरता सब में ।

एक उसी से प्रकृति प्रगट है
प्रकृति कार्य गुण कहलाते,
गुण से अहंकार, मन, बुद्धी
जिसमें मानव बँध जाते ।

यही जगत माया कहलाती
जग बंधन बन जाती है,
विविध पंथ इससे बनते हैं
संसृति जाल कहाती है ।

इसे तोड़ देता जो योगी
मुक्ति वही पा जाता है,
जन्म-मरण से बच जाता है
और परम पद पाता है ।

मन में उसके समता होती
सुख-दुख में सम जीते हैं,
चाहे मिट्टी का ढेला या
सोना एक समझते हैं ।

दोहा- माया का बंधन कटे; हो नहिं जग से प्यार,
उस योगी के हिय तले; समता करे विहार ॥ 45 ॥

प्रिय हो या अप्रीय श्रृष्टि में
सब समान हो जाते हैं,
निन्दा स्तुति हानि-लाभ के
कभी निकट नहिं आते हैं ।

मान और अपमान जगत का
होता नहीं साधुओं में,
मित्र,शत्रु में भेद न होता
सच्चे कर्म योगियों में ।

कर्मों का आरम्भ ईश की
कृपा मान कर करते हैं,
सत्य ब्रह्मचारी कहलाते
जग में मुक्त विचरते हैं ।

राग द्वेष का नाम न होता
लोभ-मोह कट जाता है,
काम क्रोध से मुक्त विचरता
जीव ब्रह्म सम भाता है ।

यही मंत्र है उस मानव को
कर्मयोग पथ जो जाते,
ईश्वर के समक्ष जीवन नित
अर्पित अपना कर पाते ।

दोहा- काम क्रोध ही जगत में; सब द्वन्दों की खान,
मुक्त वही संसार में; ऊपर उठता मान ॥ 46 ॥

शिष्यों का मन गुरु ने देखा
उथल-पुथल हो रहा प्रबल,
प्रकृति और परमात्मा को ले
द्वन्द चल रहा है प्रतिफल ।

मनोदशा का अवलोकन कर
गुरु बोले अमृत वाणी,
रोगी का हर रोग वैद ज्यूँ
जान लिया हो धर नाड़ी ।

बोले प्रकृति कार्य-बन्धन है
इससे सजग सदा रहना,
तुम विवेक से युक्त जीव हो
कभी न बंधन में पड़ना ।

तुम हो बन्धन मुक्त सयाने
मुक्ति तुम्हारी ही गति है,
मुक्त हुआ तो संसृति तेरी
नहीं हुआ तो दुर्गति है ।

कर्म उसे कहते हैं बच्चों
जिसमें स्वार्थ नहीं होता,
पर हित में ही पूर्ण सर्मपण
पर उपकार यही होता ।

दोहा - पूर्ण सर्मपण ईश प्रति; होता भक्ति सुजान,
पर सेवा से श्रेष्ठ नहिं, कोई कर्म महान ॥ 47 ॥

सात्विक बुद्धि और वैरागी
नित एकाकी, जितेन्द्रिया,
मन,वाणी, तन से जो संयत
वह संयासी धर्म प्रिया ।

राग-द्वेष से रहित कर्म नित
होता है सात्विक जीवन,
कर्तृत्वाभिमान नहिं होये
होता जग से अपनापन ।

कर्म और फल के प्रति होता
अनासक्त त्यागी जीवन,
बाँध सके ना कर्म उसे अरु
बाँध सके ना जग बन्धन ।

केवल करना करते रहना
त्यागी का लक्षण होता,
फलासक्ति का त्याग जगत में
सबसे उत्तम फल होता ।

कर्मों का फल त्याग दिया जो
वही परम पद पाता है,
बिना स्वार्थ के कर्म किया जो
वही जगत में भाता है ।

दोहा- फलासक्ति का त्याग ही, कर्मयोग कहलाय,
अस योगी संसार में, रहत परम-पद पाय ॥ 48 ॥

जिसका अन्तर शुद्ध नहीं है
वह क्या जाने पर पीड़ा,
पर हित कैसे भाये उसको
जिसके मन में हो कीड़ा ।

जिसकी धारण शक्ति शुद्ध है
वह सात्विक कहलाता है,
अहम भाव का त्याग बुद्धि को
बन्धन मुक्त कराता है ।

पर सेवा का भाव हृदय में
नित तुमको रखना होगा,
जग के सब स्थावर-जंगम को
अपने हिय भरना होगा ।

हृदय तुम्हारा उस ऊँचाई
को जब भी पा जायेगा,
तब उस ईश्वर की छवि तेरे
आँखों में छा जायेगा ।

कोई हिन्दू, मुसलमान तब
सिक्ख, इसाई ना होगा,
केवल एक उसी ईश्वर का
अंशी हर मानव होगा ।

दोहा - ईश्वर की छवि हृदय में; आते ही इन्सान,
भेद-भाव को भूलकर; करता प्रेम जहाँन ॥ 49 ॥

एक सूर्य है एक चन्द्र है
एक रात्रि है, एक दिवस,
एक उसी ईश्वर का दीपक
जलता है संसृति में बस ।

जो रोकेगा राह प्रकृति की
वही नष्ट हो जायेगा,
जो रोपेगा नई पौध को
वही अमर फल पायेगा ।

जो खोदेगा राह और की
वह खुद ही गिर जायेगा,
जो बोयेगा विष का पौधा
अमृत कैसे पायेगा ।

गुरुवर बोले जाओ चहुँदिश
समझाओ सारे जग को,
कहीं वख्त की गार गिरे ना
निगल नहीं जाये सबको ।

दोहा - औरों का पथ खोद कर; बढ़ न सका जग कोय,
पहले चुभता उसी को; जो पथ काँटा बोय ।। 50 ।।

गुरु बोले उस ओर जहाँ मनु
भाषा पर लड़ते रहते,
अरु खोले वह राज जहाँ पर
जाति-पाति पर नित मरते ।

और कहे वह दिशा जहाँ पर
ऊँच-नीच का था रगड़ा,
और गये उस राह जहाँ पर
संप्रदाय का था झगड़ा ।

शान्त क्लांत भीगे नयनों से
गुरु ने आशीर्वाद दिया,
और पूण्य सरवस जीवन का
शिष्यों को वरदान दिया ।

शिष्यों तुम विचलित मत होना
इन अनजानी राहों पर,
चलते रहना तुम जीवन भर
रहे आश निज बाहों पर ।

सफल रहो जीवन यात्रा में
पूरी हो तेरी आशा,
रहो जहाँ जिस भी स्थिति में
पूरी हो नित अभिलाषा ।

दोहा - गुरु के आशीर्वाद से; अमर हुए श्रीराम,
जग में ऐसा कौन नहिं; मिला जिसे विश्राम ।। 51 ।।

संयम कभी न डिगने पाये
प्रीति सदा सबसे रखना,
नियम, धर्म से चलते रहना
मानवता तेरा गहना ।

बाधाँयें कितनी भी आये
पर पीछे पग मत रखना,
दीखे जहाँ अँधेरा उस पथ
रोशन ही करते रहना ।

भावुकता में पड़ कर कोई
तुम न कभी निर्णय लेना,
बिना बिचारे काम न करना
हो कोई भाई-बहना ।

जब आगे पथ नहीं दिखे तो
बैठ अकेले चुप 'रहना,
अपने में ही ध्यान मगन हो
ईश्वर का चिन्तन करना ।

नारी तो ममता की मूरति
जग माता उसको कहना,
कमजोरी को देख किसी की
कभी नहीं उस पर हँसना ।

दोहा - ज्ञान नहीं गुरु के बिना; लाख जतन कर कोय,
राह दिखावे एक ही; दीखे कितने होय ।। 52 ।।

नारी की भावुकता, प्रियता
औ़र शक्ति होती ममता,
उस जीवन की सत्य कहानी
एक सर्मपण औ समता ।

भटक कहीं यदि तुम जाना तो
राय प्रकृति से ही लेना,
वही जगत का एक गुरू है
उसी राह पर चल देना ।

कभी उदासी छा जाये तो
कुसुम साथ तुम हँस लेना,
कभी क्रोध आ जाये तुमको
वृक्ष रूप धारण करना।

धूप-छाँव सा जीवन होता
निश-दिन सा सुख-दुख होता,
कभी अँधेरा कभी उजाला
हर जीवन का सत होता ।

कभी न इससे विचलित होना
जग में ही ऐसा होता,
सुख-दुख कभी नहीं आये तो
जीवन ही नीरस होता ।

दोहा - दुख-सुख जीवन संगिनी; धूप-छाँव का खेल,
समता होये चित्त में; जीवन सुन्दर वेल ॥ 53 ॥

धरती से धीरज लेना तू
और मौनता वृक्षों से,
फूलों से हँसना तुम लेना
रोना स्वात-पपीहों से ।

चलना तो हाथी सम चलना
शेरों सा पथ पर बढ़ना,
झुकना हो तो फूल-फलों से
लदी डालियों सा झुकना ।

मृत्यु जीव का एक सत्य है
नहीं भुलाना कभी उसे,
कभी सामने आ जाये तो
गले लगाना शिष्य उसे ।

मन को खाली कभी न रखना
नित अन्दर चिन्तन करना,
अपना हित चिन्ता कहलाती
पर-हित चिन्तन का गहना ।

चिन्ता से तुम स्वयं जलोगे
चिन्तन से पर-हित होगा,
चिन्ता से दुर्बुद्धि जगेगी
चिन्तन से उज्ज्वल होगा ।

दोहा - चिन्तन से चित शुद्ध हो; चिन्ता से जरि जाय,
एक मिलावे आतमा; एक मिटावे काय ॥ 54 ॥

जो होना है वह होगा ही
तनिक नहीं परवा करना,
सब कुछ लुटता हो लुट जाये
सत्य राह पर ही चलना ।

जीव-जीव में भेद न रखना
जगत पिता के सब बंदे,
भेद बढ़ाता है झगड़े को
प्रेम मिलाता है बंदे ।

सदा बड़ों की सेवा करना
छोटों को हिय में भरना,
प्रेम पूर्ण भाषा ही होये
तेरे वाणी का गहना ।

कभी न मन से विचलित होना
घृणा किसी से मत करना,
कोई द्वेष करे तुमसे पर
द्वेष न तुम उससे धरना ।

करुणा की धारा बरसाना
आत्मीयता नित रखना,
भावों तक ही रह नहिं जाये
उसे क्रियान्वित भी करना ।

दोहा - होनी होकर ही रहे, करो न चिन्ता आप,
शुद्ध चित्त से कर्म कर, सबसे मेल-मिलाप ॥ 55 ॥

मेरा है आशीष बालकों
यात्रा तेरी सफल रहे,
कभी निराश न होना पथ पर
कृपा ईश की बनी रहे ।

कहकर गुरुवर घोर मौन में
बैठ गये मृगछाला पर,
मन ईश्वर चरणों में अर्पित
देख रहे भीतर अंबर ।

मानों उस विराट अम्बर से
माँग रहे हो दृढ़ आशीष,
जो अभेद बन कवच सर्वदा
बँधा रहे शिष्यों के शीश ।

शीश झुकाया गुरु चरणों में
शिष्यों ने, करते बंदन,
वह आशीष हमें दो गुरुवर
तोड़ सके हम जग बंधन ।

हाथ उठा आशीष दिये गुरु
मनोकामना हो पूरण,
आँख बंद कर लिए लगाकर
हर शिष्यों के सर चूरण ।

दोहा - सर पर गुरु आशीष हो; हिय में श्रद्धा, भक्ति,
मुख में गुरु का मंत्र हो, यही सत्य शिव शक्ति ॥ 56 ॥

सबने सबको गले लगाया
तन रोमांचित हो आया,
गद-गद वाणी मौन हो गई
आँखों में आँसू छाया ।

देख रहे हर एक एक टक
हिय विह्वल हो भर आया,
ममता के सागर में डूबा
प्रेम लहर था लहराया ।

कदम से कदम मिला चले सब
धारण कर कर्मी माला,
अनासक्त भर भाव हृदय में
आँखों में उज्ज्वल ज्वाला ।

चले सभी चहुँदिस राहों पर
मन में था उत्साह प्रबल,
और आश थी कुछ करने की
हृदय भरा था अतुलित बल ।

छंद - मनु जन्म अनेक भजे प्रभु को गुरु का तब रूप दीदार मिले ,
तब ज्ञान जगे मन अन्तर में गुरु का जब पावन प्यार मिले,
वह भाग्यमयी जिसको जग में गुरुदेव का आशीर्वाद मिले,
कहे चन्दर आत्म जगे तब ही, गुरु के प्रति भक्ति अपार मिले ।। 57 ।।

दोहा - आत्म शक्ति हो हिय तले; अनासक्त हो भाव,
तो हर बाधा पार कर; पहुँच जाय मुन ठाँव ।। 58 ।।

॥ तृतीय सर्ग ॥

संप्रदाय

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

तृतीय सर्ग

संप्रदाय

जब भेद बढ़े, अरु दंभ बढ़े, भय खेद बढ़े मुन मानस में,
है बड़ा न कोई इस संसृति में अभिमान बढ़े जब आपस में,
जब धर्म व कर्म का मेल नहीं हर भाव रहे इक तामस में,
तब चन्द्र कहे सम्प्रदाय बने, द्वन्द राग बढ़े जब तापस में ।

सम्प्रदाय बने जब संसृति में तो विनाशक भाव जगे मन में,
पर के उपकार का भाव नहीं; अपकार के भाव उठे तन में,
अपनेपन का इक स्वार्थ पले; जहँ प्रेम नहीं हिय के घन में,
कह चन्दर आग कभी न बुझे; संप्रदाय की ज्वाल जहाँ जनमें ।

सम्प्रदाय से तंग समाज सभी; यह देश, विदेश, धरा न बची,
मनु काँप गई पृथ्वी सबरी, अति चीख-पुकार गुहार मची,
बहती हर ओर लहू नदियाँ पर प्यास बुझे नहिं आस बची,
कह चन्दर मानवता सिसकी प्रभु कौन बता यह रास रची ।

मन में हो यदि भय भरा; नरक जनम हो जाय,
डर-डर जीता जो यहाँ; वही मरा कहलाय ।

भय दुर्गति का फल लिए; आता विविध प्रकार,
कभी रोग अरु मोह तो; कभी विरोध विचार ।

स्वतंत्रता होती नहीं जहाँ होत भय - धान,
पराधीनता सुख नहीं; दुख की होती खान ।

सम्प्रदाय के मूल में; भय ही विष की खान,
उग्रवाद, आतंक का; उद्‌गम इसको जान ।

सम्प्रदाय से होत है; जीव ईश से दूर,
अपनों से ममता नहीं; और गैर से क्रुर ।

सम्प्रदाय अभिमान है; राह अनेक असंत,
फल इसका केवल यही; मानवता का अंत ।

सम्प्रदाय का सार इक; मनु मानत अज्ञान,
बढ़ती केवल भ्रान्ति है; और अनेकों क्रान्ति ।

जहाँ धर्म के नाम पर; होत स्वार्थ की पूर्ति,
चन्दर निर्मित हो वही; सम्प्रदाय की मूर्ति ।

गुरु का आशीर्वाद लिए सर
मानवता-पथ के राही,
जीवन का दर्शन सिखलाने
चले कर्म-योगी चाही ।

कर धर चले सुकृति मर्यादा
जग का अवलोकन करने,
संसृति के हर मात-पिता का
अति पावन दर्शन करने ।

आश्रम की वह मर्यादा जो
जीवन ज्योतिमयी जलती,
जिसे प्रज्वलित होते युग-युग
देख रही थी यह धरती ।

जिसको स्थापित करने में
कितने सारे युग बीते,
स्वयं प्रगट हो ईश धरा पर
गाये रामायण गीते ।

उसी सत्य का गीत सुनाने
बढ़े आज ऐसे राही,
मनो-भावना निर्मल, पावन
और हृदय अति उत्साही ।

दोहा- मानवता अस धर्म है; करे मनुज उद्धार,
बढ़ते, फलते, फूलते; बीत गये युग चार ॥ 1 ॥

जिसे राम, बुध और कन्हैया
जीवन का दर्पण माने,
गुरुनानक, तुलसी, मीरा लख
सत स्वरूप को पहचाने ।

जिसे मुहम्मद सत्य ज्ञान का
पावन दीपक कहते थे,
जिसे महात्मा - गाँधी जीवन-
दर्शन सत्य समझते थे ।

जिसे विवेकानंद हृदय ले
संसृति को पहचान सके,
सद्गुरु आशाराम, शुधांशु
आनन्दी माँ जान सके ।

उसी राह पर शिष्य बढ़ रहे
गुरु चरणों का, कर वंदन,
देख रहे थे मानवता अरु
मानव का हो रहा हनन ।

धरती थी व्याकुल हिंसा से
सम्प्रदाय से मानवता,
तड़प रहे थे शहर, गाँव अरु
लड़प रही थी कोमलता ।

दोहा - सम्प्रदाय वह आग है; जिससे बचा न कोय,
ऊँच नीच देशी अरु; भले विदेशी होय ।। 2 ।।

धरती माँ रो रही भाग्य पर
उसका मन था भर आया,
कितने लाड़-प्यार से पाला
पर अभाग सर घहराया ।

मजहब की दीवार खड़ी है
कैसे गले लगाऊँ मै;
व्याकुल ममता तरस रही है
कैसे दूध पिलाऊँ मैं ।

तुम बालक हो; भले न मेरी
निर्मल ममता पहचानो,
भले न नारी की भाउकता
कोमलता को तुम जानो ।

भले सहजता और सरलता
जीवन की नहिं अपनाओ,
भले न माता की मानवता
को न कभी तुम सह पाओ ।

पर जीवन देने वाली माँ
कैसे तुम्हें भुला सकती,
दूध पिलाने वाली माता
कैसे जहर पिला सकती ।

दोहा - धरती की ममता सरल; दे जल अन्न उदार,
करती धारण अंक में; बरसाती नित प्यार ॥ 3 ॥

बूँद-बूँद लोहू की कीमत
केवल माता ही जाने,
जिसने तन से जन्म दिया है
वह लोहू को पहचाने ।

मैं हूँ माता कैसे भूलूँ
बचपन की यादें तेरी,
तुतली-तुतली, मधुर-मधुर स्वर
सुन गदगद ममता मेरी ।

इसे न व्यर्थ गवाओ वरना
तड़प-तड़प मर जाऊँगी,
आँचल की यह शीतल छाया
तुम्हें नहीं दे पाऊँगी ।

हे मेरे प्रिय लाल बताओ
आपस में क्यों लड़ते हो,
हर शरीर में, खून हमारा
इतना क्यों न समझते हो ।

छंद- रो रही है धरा अपने भाग्य पर सर कूट कर,
देख कैसे लड़ रहे हैं लाल मुझ को लूट कर,
खून इसका या गिरे उसका न कोई फर्क है,
बह रहा है खून केवल देख मेरा फूट कर ।। 4 ।।

दोहा- भेद भाव से रहित यह; धरती होती एक,
क्यों फिरते हो हृदय ले; निश दिन द्वेष अनेक ।। 4 अ ।।

क्लान्त पवन पूरब से चाहे
पश्चिम से जब-जब आये,
करुण कहानी ही कहता है
आँख मिलाते सरमाये ।

सीमा से जब चाँद गुजरता
मर्माहत हो जाता है,
कल तक गले लगाने वाला
आज कलम सर करता है ।

कभी सभी धरती माता के
सत सपूत कहलाते थे,
मिला कदम से कदम राह पर
सिंहों सा बढ़ जाते थे ।

एक दूसरे के प्रति मन में
ऐसा प्रेम भरा रहता,
जैसे माता के तन-मन से
ममता नित्य बहा करता ।

खड़ी नहीं थी कहीं दिवारें
जाति धर्म अरु भाषा की,
खुदी नहीं थी खाँई कोई
भाव, कुभाव, पिपासा की ।

दोहा - समता हो जब हिय तले; मन में हो सद्‌भाव,
मानवता नहिं मर सके; लाख भले हो घाव ॥ 5 ॥

सम्प्रदाय का कहीं मन तले
उठता तनिक धुँआ नहिं था,
जीवन के सरगम में अक्षर
स्वर का कहीं अभाव न था ।

हर मन में बट-वृक्ष लगा था
समता की शीतल छाया,
जिसके नीचे हिन्दु, मुसलिम,
सिक्खों ने मिल कर गाया ।

तब हिन्दू, सिख, मुसलमान में
ऐसा भाव नहीं आया,
एक भाव था केवल मन में
हम सब माँ के हैं छाया ।

सबकी ही है शाम एक अरु
सबकी ही एकी भिंसार,
सबकी ही है एक जिन्दगी
सबका ही एकीं संसार ।

एक दूसरे के बिन दोनों
यहाँ अधूरे थे ऐसे,
ममता बिन होती है माता
नित अपूर्ण जग में जैसे ।

दोहा - ईश्वर ने पृथ्वी रची; नर-नारी संसार,
हिन्दू-मुसलिम नहिं रची; रचे आप ही यार ॥ 6 ॥

जान रहे थे हर जग वासी
भेद न अल्ला-ईश्वर में,
कैसे हो सकता है अन्तर
पृथ्वी और समुन्दर में ।

एक भाव था हम मानव हैं,
नहीं मुसलमां हिन्दू हैं,
मन इतना धीरज था उनका
जितना धीर समुन्दर है ।

स्वतंत्रता की लहर उठी थी
उसी समुन्दर के अन्दर,
जाति - पाति के दीवारों को
डुबा चली लहरें अम्बर ।

हे सूरज ! हे चाँद लाल के
पथ को आलोकित करना,
प्राण जाय तो जाय; न जाये
प्रण, इनकी रक्षा करना ।

दे आशीष शान्त हो गई
ममतामयी धरा - माता,
हाथ जोड़; कर रही निवेदन
सुखी इन्हें रखना दाता ।

दोहा - माँ ममता में जो पला; उसका ऊँचा भाल,
बिन ममता मानव नहीं; हो सकता हे लाल ॥ 7 ॥

सभी शिष्य धरती माता की
करुण कहानी बतलाते,
गाँव-गाँव अरु शहर-शहर में
पावन गाथा थे गाते ।

चले जा रहे थे राही सब
गाते गीता और कुरान,
चहुदिश गूँज रहा था यह स्वर
हे अल्ला ईश्वर भगवान ।

सम्बल देना मुझे आज तुम
उस पथ पर हम आये हैं
जिस पथ जाकर नर-नारी सब
मानवता को पाए हैं ।

गगन-धरा के बीच अजाना
है कैसा बन्धन तेरा,
जिसे ग्रहण कर पृथ्वी वासी
के मन में बन्धन, घेरा ।

मंदिर में बज रही शंख ध्वनि
मसजिद में अजान दानी,
गिरजा घर में ईश वन्दना
गुरु दरबार सबद बानी ।

दोहा- बरस रही ईश्वर कृपा; चारो ओर सुजान,
क्या हिन्दू क्या मुसलमाँ; सब ईश्वर वरदान ।। 8 ।।

प्रेम भरा था हृदय अपरिमित
ज्यो पवित्र गंगा का जल,
शीतल, सुरभित और मृदुलतम
बहता झरना ज्यों कल-कल ।

अतुलित था उत्साह, अलौकिक
भरा भुजाओं में था बल,
और लालसा थी बढ़ने की
मन संकल्प भरा छल-छल ।

उमड़ रहा था प्रेम हृदय में
सम्प्रदाय प्रति लड़ने की,
पराधीनता की बेड़ी को
तोड़ नष्ट कर देने की ।

हे प्रभु हमें शक्ति देना तू
आगे कदम बढ़ा पाऊँ,
कहीं न हिम्मत हार स्वयं मैं
अपने को टूटा पाऊँ ।

एक कर्म है, एक धर्म है,
एक राह है, एक कदम,
एक ज्योति है, एक लक्ष्य है,
मन में है बस एक कसम ।

दोहा- मन में हो उत्साह अरु; बढ़ने का संकल्प,
रोक सके नहिं जगत में; मिलकर अनगिन कल्प ॥ 9 ॥

इस धरती को सम्प्रदाय से
मुक्त करा दो हे ईश्वर,
धर्म-कर्म का दर्शन सबको
अब समझा दो हे गुरुवर ।

कोई कहता राम, मुहम्मद
कोई भजता गुरु नानक,
कोई ईशा नाम पुकारे
एक तार के सब मानक ।

एक ज्योति है सारे जग में
जिसको मानव भजता है,
अलग-अलग थल की बोली है
अलग-अलग स्वर बजता है ।

हम लोगों के रहते कैसे
नर्क बना जीवन माँ का,
कब, किसने आँचल पर कैसे
लगा गया धब्बा हलका ।

ये पहाड़ नदियाँ झरने सब
जिसकी पूँजा करते हैं,
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
चरणों में नत रहते हैं ।

दोहा- ईश्वर अल्ला एक है; जानत है सब कोय,
भेद-भाव का विष दिया; किसने, कब जग बोय ।।10।।

नित आकाश फूल बरसाता
क्षितिज प्रेम से मिलता है,
फिर इस भू पर मानवता का
फूल नहीं क्यों खिलता है ।

छीन लिए हैं क्यों धरती की
आजादी, खुशियाँ सारी
मोड़ दिये हैं जीवन धारा
बहती थी निर्मल प्यारी ।

निर्मल धारा फिर बह निकले
ऐसा पथ रचना होगा,
धूमिल चित्रों में फिर नव रस
रंग हमें भरना होगा ।

यही धर्म है हो न कहीं भी
कोई कभी गुलाम सखे,
जीवन में आजादी होती
सबसे बढ़ कर प्राण सखे ।

आजादी जीवन होती है
आजादी होती सरगम,
आजादी सर-रंग घोलती
आजादी से मिटता गम ।

दोहा- उसकी रचना एक है; सबके लिए समान,
हो चाहे वह पूर्व का; या पश्चिम का मान ।।11।।

प्रकृति सदा आजाद रही है
नियत सजाई आजादी,
गगन धरा आजाद रहे हैं
और चराचर आजादी ।

आजादी बिन मुक्ति नहीं है
आजादी बिन शक्ति नहीं,
आजादी बिन व्यर्थ जिन्दगी
आजादी बिन भक्ति नहीं ।

मुक्त गगन है, मुक्त पवन है
मुक्त सभी पशु-पक्षी हैं,
मुक्त हिमालय, मुक्त शिवालय
मुक्त नदी, झरने, सर हैं ।

एक राग है, एक रागिनी
एक राह है एक कदम
एक गीत, संगीत एक है
एक जीत की भरते दम ।

सोच रहे थे आज शिष्यगण
कितना उत्श्रृंखन है मन,
कितना मर्यादित मानव था
कितना बिगड़ गया जीवन ।

दोहा - जीवन तोर अजाद है; बाँधो इसे न पंथ,
बँधा यहाँ जो भी मरा; बिन बँध हुआ महंथ ॥12॥

तब जनता थी पूर्ण समर्पित
और त्याग-तप की मूरत,
वीरों के पग नित थे बढ़ते
कुर्बानी देने में रत ।

चारो ओर प्यार की नदियाँ
बहती थी नित अनुशासित,
प्रण ही मानो बैठ गया हो
धर साकार रूप आश्रित ।

ऐसा था भाई-भाई में
मधुर प्रेम लावव्य लिए,
और भरोसा ऐसा मन में
जैसे होता साँस प्रिये ।

सूरज चाँद मित्र हैं लेकिन
प्रात शाम में बट जाते,
मानव की नित देख मित्रता
वे भी निश-दिन शरमाते ।

महक रहा था वतन हमारा
खिले हुए थे बाग चमन,
हिन्दू मुसलिम, सिक्ख, इसाई
प्रेम भरा था हर आँगन ।

दोहा - जहाँ प्रेम है द्वेष नहिं; समता जहाँ न राग,
जहाँ शुद्ध मन बुद्धि हो; वहाँ काम नहिं दाग ॥13॥

ऐसी प्रेमातुर वेदी थी
प्रण का ऐसा वज्रासन,
हिला नहीं सकता था कोई
हिन्दू मुसलिम का तन-मन ।

ऐसी थी वह ध्वजा पताका
ऐसा था उनमें सत संग,
रंगों में अद्‌भुत गहराई
ऐसा था जीने का ढंग ।

जैसे पूरब, पश्चिम, उत्तर
दक्षिण मिल संसृति होती,
ऐसे ही सबके मिलाप से
जग में ज्योति नई जलती ।

धरती माँ के चार पुत्र थे
चारों के अनगिन संतान,
सबके मन में धर्म कर्म प्रति
लहर उठी थी सीना तान ।

कैसा अद्‌भुत प्रेम भरा था
धरती के सन्तानों में,
कैसा अद्‌भुत त्याग भरा था
मातृ-भूमि दीवानों में

दोहा - त्याग बिना जीवन नहीं; ध्यान बिना नहिं ज्ञान,
भक्ति बिना नहिं भावना, शक्ति बिना नहिं मान।।14।।

हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख वही जो
कल तक मिल कर गाते थे,
धरती माँ ही माता मेरी
पिता ईश कहलाते थे ।

कल तक जिसने खून बहाया
मिलकर माँ के चरणों में,
कल तक था जिसने गुण गाया
सुन्दर अक्षर वर्णों में ।

कल तक जिसने इस धरती से
अपना तन-मन सीचा था,
कल तक जिसने श्री चरणों में
पुष्पांजली उलीचा था ।

कल तक लोरी गा जिस माँ ने
चलना, सोना सिखलाया,
कल तक जिसने दूध पिला कर
तुमको हँसना बतलाया ।

कल तक जो तुमको पल भर को
पलकों से न जुदा करती,
तेरे हर दुख पर न्यौछावर
निश दिन खुदा-खुदा भजती ।

दोहा- ममता से बढ़ कर नहीं; होता प्रेम जहान,
प्रेम समर्पण चाहता; जो दे वही महान ।।15।।

हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, इसाई
कल तक जो भाई-भाई,
सम्प्रदाय की ज्वाला में जल
आज बने क्यों कस्साई ।

एक दूसरे के लोहू के
प्यासे कब वे बन बैठे,
कैसी वह दुर्भाग्य घड़ी थी
एक दूसरे पर ऐठे ।

आँखों पर कैसा परदा है
आज न माता दिखती है,
कल जो राखी बाँध रही थी
पथ पर आज सिसकती है ।

तड़प रही है गली-गली में
सुनने वाला कौन रहा,
जो भाई राखी बँधवाया
वही आज है तोड़ रहा ।

सोचो क्या गुजरी होगी जब
माँ का लाल मिटा होगा,
सोचो क्या गुजरी होगी जब
माँ का प्यार लुटा होगा ।

दोहा- प्रेम टूटते देख कर; भू को लागे लाज,
बहती थी गंगा जहाँ; रक्त बह रहा आज ॥16॥

ऐ हिन्दु ! ऐ मुसलमान रे !
मुझे बताओ तुम हो कौन,
क्यों मानवता की राहों पर
बैठ गये दानव बन मौन ।

क्या इन्सान नहीं हो बोलो
जो पशुओं सा झगड़ रहे,
छिन्न-भिन्न हो रही आज फिर
मानवता क्यों अकड़ रहे ।

भेद भाव का कहीं न जग में
बीज कभी भी हम बोये,
किधर कहाँ से आया पौधा
काँधे पर किसने ढोये ।

राम वही हैं; वही मुहम्मद
जिसको गले लगाये थे,
जिसके हाथों को हाथों ले
तुम झंडा फहराये थे ।

ज्योति पुंज है एक न जाने
अलग - अलग क्यों नाम हुए,
और नाम के पथ पर मानव
चल कर क्यों सैतान हुए ।

दोहा - जो जागा उसको मिला; अंधकार में ज्योति,
जो सोया उसको मिला; नित्य अमावस पोति ॥17॥

भूल गये असली धारा को
जो सागर में मिलती है,
भूल गये उस ज्योति पुंज को
दिनकर साथ निकलती है ।

हाहाकार मचा था चहुदिश
इन्सानियत कराह रही,
और देख कर धरती माता
कर चित्कार पुकार रही ।

मेरे लालों की आँखों से
किसने ज्योति चुराई है,
भाई-भाई के घर में यह
किसने आग लगाई है ।

किसने माँ का सीना चीरा
दो टुकड़े कर डाला है,
और भुजाओं को भरोर कर
खंड-खंड कर डाला है ।

जो कहता गीता मेरी है,
जो कहता कुरान मेरा,
जो कहता गुरु-ग्रंथ हमारा
जो कहता बाइबिल मेरा ।

वही सम्प्रदाय का राही
मानवता का है दुस्मन,
वह समता पथ का रोड़ा है,
वही अमानुष है दुर्जन ।

दोहा - गुरु वाणी गीता मनुज; बाइबिल वेद कुरान,
एक पंथ का ही नहीं; मानवता की जान ।। 18 ।।

गीता बाइबिल, गुरू-ग्रथ अरु
है कुरान मानवता की,
नहीं किसी भी एक वर्ग की ।
नहीं किसी दानवता की ।

श्रुतियों को जो अपना कहते
वे होते हैं चोर महा,
मानवता पथ के रोड़े वे
अरु पापी हैं घोर महा ।

ऐसे ही पापी धरती पर
सीना तान, हुँकार रहे,
सम्प्रदाय का नारा देकर
मानव को ललकार रहे ।

भाग रहे हैं अपने घर से
ये निरीह बालक मेरे,
कहाँ किधर जाना है इनको
चहुदिश काल रहा घेरे ।

दोहा - सम्प्रदाय की आग में; झुलस रहा हर ठाँव,
क्या दिल्ली क्या अमरिका; सभी शहर हर गाँव ॥ 19 ॥

कौन खेत अरु मैदानों को
कब्र बना मतवाला है,
किसने भोली माँ बहनों को
बे - इज्जत कर डाला है ।

माँ बालक से बिछुड़ गई है
पिता हुआ जग से सपना,
हाहाकार मचा है जग में
दीख रहा न कहीं अपना ।

लाशों का अम्बार लगा है
नोच रहे कुत्ते भूखे,
गिद्ध झपट्टा मार-मार कर
उड़ जाते ले तन सूखे ।

घूम रहे हैं गाँव-गाँव में
स्यारों, लोमड़ियों के झुंड,
दीख रहे राहों पर अनगिन
भरे हुए लोहू का कुंड ।

चारों ओर लाश के टीले
देख रही मानवता हार,
ना जाने किस ओर हमारा
चला जा रहा है संसार ।

दोहा- पशु सम मानव कट रहा; बहा नीर सम खून,
चारों ओर कराह की; सुना रही है धून ।। 20 ।।

जीवन की बगिया मुरझाई
उजड़ गया है आज चमन,
जगी नहीं फिर भी मानवता
स्वार्थ भरा है इतना मन ।

स्वार्थ नहीं तो फिर यह क्या है
जिद क्या इसको कहते हैं,
अपने ही माँ के आँचल को
फाड़ कौन खुश रहते हैं ।

धरती माता विलख रही है
देख दुर्दशा लालों की,
स्वारथ में कुर्बान हो रही
हर खुशियां औलादों की ।

जिन्हें आँख में अंजन जैसा
माँ सभाल कर रखती थी,
ममता के आँचल से जिनको
निश-दिन बेना झलती थी ।

जिनके हर दुख को माँ अपने
ऊपर ले-ले खुश रहती,
जिनके एक हँसी पर अपनी
खुशियाँ न्योछावर करती ।

दोहा - सुख-दुख सह माँ पुत्र को; देखत सुखी अघाय,
बीत रही क्या हृदय पर; जब हो माँ असहाय ॥ 21 ॥

जिनकी खुशियों के खातिर मैं
रात-रात जागा करती,
जिनकी अभिलाषा के खातिर
दिन-दिन भर भागा करती ।

नन्हीं-नन्हीं उँगली धर कर
जिनको चलना सिखलाती,
जब-जब नींद नहीं आती थी
तब-तब मैं लोरी गाती ।

उन एहसानों का बदला ये
कैसे-कैसे लेते हैं,
उस पावनता को ये अपने
पैरों तले कुचलते हैं ।

हम हिन्दुस्तानी हैं कोई
पाकिस्तानी कहते हैं,
लहूलुहान हो रही आत्मा
ऐसे शब्द निकलते हैं ।

खिलने से पहले ही खुशियाँ
उजड़ गई हम देख रहे,
फलने से पहले ही आशा
टूट गई हम देख रहे ।

दोहा- तन से उपजा पुत्र जब; माँ का दुश्मन होय
तब क्या बीते माँ हृदय; जाने और न कोय ॥ 22 ॥

इसको मानवता कहते क्या
आती है क्यों शरम नहीं,
इस दानवता से धरती की
फूट गई क्या करम नहीं ।

एक दूसरे के प्राणों के
प्यारे बन कर टूट रहे,
मानो आकर स्वयं काल ही
अखिल विश्व को लूट रहे ।

चीख रही है धरती माता
पर किसने है कब माना,
खंड-खंड हो बिखर रही है
टूट रहा ताना - बाना ।

एक पेड़ की दो शाखाएँ
दोनों टूटी दीख रहीं
हरियाली का नाम नहीं है
खड़ी-खड़ी ही सूख रही ।

आग लगी है घर में देखो,
झुलस रहा है जग सारा,
हिन्दू, मुसलिम एक न माने
टूट रहा आगन प्यारा ।

दोहा- टूटी डाली पेड़ से; हरी नहीं रह जाय,
पत्ते सूखे, झर पड़े, उड़ इत-उत मुरझाय ॥ 23 ॥

यह कैसी मानवता जिसमें
टूट रही संसृति सारी,
यह कैसी खुशिहाली जिसमें
रूठ रही ममता प्यारी ।

महाशक्यों के समक्ष जब
आती है ना शर्म तुम्हें,
अपनों के आगे झुकने में
क्यों आती है शर्म तुम्हें ।

बड़ा कभी माने होते या
छोटा पहचाने होते,
तो लोगों का प्यार न बटता
और न अनजाने होते ।

पर कैसा दुर्भाग्य समाया
हिन्दू मुसलिम के मन में,
शायद नहीं दीखता रब का
दौड़ रहा लोहू तन में ।

नहीं दीखता प्यार, मुहब्बत
नहीं दीखता जग-परिवार,
नहीं दीखता एक ईश है,
नहीं दीखता ईश दुलार ।

दोहा - भाई-भाई लड़ रहे; लोहू बहता देख,
माँ की ममता रो पड़ी; खीचा किसने रेख ।। 24 ।।
द्वेष घृणा चारों तरफ; उबले खून अपार,
सम्प्रदाय में धधकता; एक मात्र व्यभिचार ।। 25 ।

अपनी अपनी फौज बन गई
और बना अपना झंडा,
अपनी-अपनी नीति बन गई
अपना-अपना था डंडा ।

सम्प्रदाय का वृक्ष बन गया
हिन्दू, मुसलिम बने तना,
उग्रवाद, आतंकवाद का
फूल-फूलने लगा घना ।

इधर सिसकती धरती माता
पर अधर्म हँसता दीखा,
मानवता की साँस रुक गई,
दानवता फलते दीखा ।

सम्प्रदाय का यह नारा है
भाई को भाई मारे,
माँगे कोई पूरब - पश्चिम
उत्तर - दक्षिण को प्यारे ।

इस खीचा तानी में कितने
उजड़ गये बस्ती अरु गाँव,
कितने शहर विरान हो गये
कितने ढूँढ रहे थे ठाँव ।

दोहा - भाई नहिं भाई चिन्हे; धर्म न चिन्हे धर्म,
सम्प्रदाय की आग में; स्वार्थ एक ही कर्म ॥ 26 ॥

निज स्वारथ में लगे हुए हैं
खीच रहे दूजे का पाँव,
सोच न पाये कितना गहरा
लगता मानवता पर घाव ।

हो चाहे पंजाब, सिंधु वह
हो चाहे कश्मीर चमन,
उढ़ा दिया है सम्प्रदाय ने
सब पर देखो आज कफन ।

तुम ज्ञानी, ध्यानी, त्यागी हो
पर स्वारथ ना त्याग सके,
ये हिन्दू ये मुसलमान हैं
यह कुभाव नहिं लाँध सके ।

मन इतना हो गया मलिन है
देश तुम्हें न तनिक दीखा,
तेरे स्वारथ के प्रहार से
वतन हमारा है चीखा ।

तुम्हें न दिखता माँ का बटना
दिखा न वीरों का सपना,
उन्हें न दीखा शिशु का मरना
अरु अवलाओं का कँपना ।

दोहा - सम्प्रदाय में बुद्धि मन; इतना बदतर होय,
अपना-अपना ही दिखे; जग से ममता खोय ॥ 27 ॥

तरस नहीं उनकी आँखों में
जब दो भाई लड़ते हैं,
देख खुशी हो जाते हैं वे
जब सिर कट-कट गिरते हैं ।

जनता की खुशियाँ छिन जाती
जीवन दुर्लभ हो जाता,
तन मर्माहत हो जाता अरु
व्याकुल मन है पछताता ।

अति प्रसन्न तब हो जाते वे
मानो पद महिपाल मिला,
मानो गीदड़ को घर बैठे
एक मांस का हार मिला ।

तुम तो आग लगा कर भाई
घर में बैठ गये अपने,
पर सारा संसार जल रहा
ज्यों वन लगता है जलने ।

झुलस रहा है पत्ता-पत्ता
नर अरु नारी का जीवन,
चीख रही है करुणा, ममता
टूट रहा है उनका मन ।

सम्प्रदाय की करनी का फल
मानवता का बटवारा,
भोली-भाली जनता टूटी
टूट रहा है जग सारा ।

दोहा - **मानवता झुलसे फले दानवता संसार,**
सम्प्रदाय का फल यही; दीखे कहीं न प्यार ॥ 28 ॥
सम्प्रदाय में माँ नहीं; ममता नहीं सुहाग,
धर्म-धर्म के बीच में, हो अधर्म की आग ॥ 29 ॥

द्वेष - घृणा करते देखा मैं
एक दूसरे प्रति मन में,
खून उबलते मैंने देखा
एक दूसरे प्रति तन में ।

घर में आग लगाते तुमको
क्यों नहिं शर्म तनिक आई,
लूट लिया धरती से तुमने
जीवन की क्यों सच्चाई ।

जहाँ मौलवी देते थे नित
दुआ हमारी जनता को,
आशीर्वाद दिया करते थे
पंडित नित मानवता को ।

उस धरती की दुर्गति देखो
युद्ध हो रहा छाती पर,
सहन कर रही तोप, टैंकऔ
अस्त्र - शस्त्र संहाती हर ।

भारत में दो फूल खिले थे
सत्य अहिंसा जिसका नाम,
सूरज उगते उठ जाते थे
शाम शान्ति हो जिसका धाम ।

दोहा - सत्य अहिंसा मूल है; मानव जग कल्यान,
मानवता संसार में; इसके बिना न जान ।। 30 ।।

उठते थे सूरज किरणों सँग
सूरज ही कहलाते थे,
ज्वाला से तप कर सुवर्ण सँग
सोना ही बन जाते थे ।

सूरज सा निस्वार्थ कर्म कर
जग उजियाला करते थे,
अपने पौरुष से प्राणी में
नित वे जीवन भरते थे ।

दिन भर कर्मयती सा तप कर
तिमिर छाँव जब जाते थे,
तब शीतल आँचल में दोनो
चाँद तले सुख पाते थे ।

निर्मल मन, निर्मल ही जीवन
निर्मल आत्मा थी उनकी,
निर्मलता साकार रूप धर
मानों इस भू पर झलकी ।

पाँच तत्व मिलते ही जैसे
यह शरीर है बन जाता,
वैसे दोनों के मिलने पर
ही भारत था कहलाता ।

दोहा - मिल जुल कर इस जगत में; रहे सदा इन्सान,
तो जानो संसार में; ईश करे मुसकान ।। 31 ।।

कब लकीर तेरे मेरे की
खिची गई मानव अन्दर,
कब हिन्दू मुसलिम कहलाये
हुए बता कब से बन्दर ।

किसने कब इन इन्सानों को
सम्प्रदाय में है बाँधा,
हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख, इसाई
शब्द हुए कब जग बाधा ।

यह लकीर ही भूल बन गई
सम्प्रदाय जनमा जग में,
वरना सब इन्सान हुए थे
भेद नहीं काया, मन में ।

जब-जब संघ बना मानव का
तब-तब उपजी नई दरार,
मानव-मानव के विरोध का
मिला एक नकली आधार ।

श्रृजनहार है एक, शास्त्र भी
होता मूल जगत में एक,
अलग-अलग जब शास्त्र बन गये
जन्म दिये तब पंथ अनेक ।

दोहा - एक ब्रह्म अरु एक जग; एक आतमा होत,
फिर फूटा मत-भेद कब; बता कहाँ से श्रोत ।। 32 ।।

अलग-अलग डाली पर कब से
किये घोसले का निर्माण,
भूल गये सब मूल एक है
जिससे मिलता यही प्रमाण ।

कैसी भूल हुई मानव से
जो न आज तक सुधर सकी,
अलग-अलग धर्मों के पथ पर
चल मानवता आज थकी ।

काश न होता स्वाभिमान तो
अलग शास्त्र कैसे बनता,
शास्त्र नहीं होता विभिन्न तो
जीवन आज सरल होता ।

अपनी करनी का फल मानव
भोग रहा है धरती पर,
अपने ही हाथों से अपना
जाल बिछाया संसृति पर ।

उलझ गया है राह न कोई
आज दिखाने वाला है,
हे ईश्वर ! भू पर मानव का
अब क्या होने वाला है ।

दोहा - अलग-अलग ढपली बजी; बने अधर्म अनेक,
भूल गये परमातमा; होता जग में एक ॥ 33 ॥

धर्म-धर्म में युद्ध हो रहा
इतने अंधे आज हुए,
कल तक जो थे कर्म सिखाते
आज मनुज के काल हुए ।

धर्म, कर्म जीवन के पहलू
सदा बनाते आत्म प्रबल,
दोनों ही मिल, उपजाते हैं
जीव - जगत में प्रेम विमल ।

धर्म बिना है कर्म अधूरा
धर्म अधूरा कर्म बिना,
दोनों के हैं लक्ष्य एक अरु
राह एक होता जीना ।

एक शुद्ध करता है मन को
आत्म स्वरूप दिखाता है,
त्रिगुणमयी इस प्रकृति संग वह
कभी न हाथ मिलाता है ।

कर्म प्रकृति से अलग नहीं है
नहीं कर्म से प्रकृति अलग
पूर्ण समर्पण इक दूजे पर
है अद्भुत जीवन अरु ज़ग ।

दोहा - धर्म बिना नहिं कर्म है; कर्म बिना नहिं धर्म,
जिसका चित हो शुद्ध वह; जाने इसका मर्म ॥ 34 ॥

धर्म गुरू है कर्म शिष्य है
एक सिखाता, सीखे एक,
एक कर्म की राह बताता
और राह पर चलता एक ।

एक भक्ति है, एक शक्ति है
एक ज्ञान दूजा विज्ञान,
एक सुप्त दूजा जागृति है
एक शाम है एक विहान ।

दीखे जग अपना सधर्म से
कर्म जगत प्रति करना है,
धर्म जीव का हाल बताए
उसे कर्म से भरना है ।

पर हे मानव बुद्धिमान हो
ऐसा क्यों बौराए तुम,
धर्म कर्म को खड़ा किए क्यों
आज बीच चौराहे तुम ।

दोनों का अस्तित्व मिट गया
दोनों हरप्रभ देख रहे,
टूट गया ईमान धर्म का
देख क़र्म नित क्लेश सहे ।

दोहा- **धर्म जहाँ कल तक रहा; मानवता का मूल,**
आज वही अलगाव का; हुआ नुकीला शूल ॥ 35 ॥

जहाँ धर्म के नाम पर कभी
कर्म सुधारा जाता था,
जहाँ धर्म के नाम हृदय में
मानवता भर आता था ।

उसी धर्म के नाम आज क्यों
कर्म बिगड़ा जाता है,
और धर्म के ही ऊपर क्यों
लाश चढ़ाया जाता है ।

धर्म न बलि चढ़ने को कहता,
और न अलग-अलग होता,
निखिल विश्व की मानवता का
केवल एक धर्म होता ।

हर मानव प्रति सच्ची सेवा
हर जीवन प्रति दया रहे,
सत्य अहिंसा और प्रेम का
भाव हृदय में भरा रहे ।

अलग न दीखे क्षण कोई भी
दीखे सारा जग अपना,
हर कण-कण में ईश्वर दीखे
यही धर्म का है सपना ।

दोहा - हर प्राणी प्रति प्रेम हो; सेवा भाव समान,
भेद-भाव मन में नहीं; कहते धर्म सुजान ।। 36 ।।

शब्दों का है फेर रे भाई !
मत कर तू अभिमान यहाँ,
ना कोई हिन्दू होता है
ना कोई इसलाम जहाँ ।

हर कोई ईश्वर सपूत है
सबका होता एक पिता,
पहचानो तुम अपनी आत्मा
फूल अनेकों एक लता ।

एक सूर्य है, एक चन्द्र है
एक धरा है, एक गगन,
हर जीवों में उस ईश्वर का
अंश एक आत्मा, हे मन ।

खोल दृष्टि तू देख जगत को
सब दीखेंगे एक समान,
नहीं कहीं निर्धन कोई है
नहीं कहीं कोई धनवान ।

होता कोई अनजाना नहिं
है कोई भी पहचाना,
जीवन के अन्तिम क्षण तक मनु
एक कर्म को सत जाना ।

दोहा- हिन्दू मुसलिम एक हैं; शब्दों का है फेर,
ईश्वर अल्ला भेद नहिं; एक ईश की टेर ॥ 37 ॥

जीवन की असली सच्चाई
कब भूला मानव अपना,
कब वह अपने ही हाथों से
लूट लिया प्यारा सपना ।

कब कुकर्म को कर्म बनाया
कब कुपंथ को पथ माना,
कब पुष्पांजलि को स्वारथ पर
अर्पित कर गाया गाना ।

इस जग में बस कर्म सत्य है
झूठा है ताना बाना,
मानव कब फस गया जाल में
कर्म नहीं क्यों पहचाना ।

कर्म, धर्म तो सरल रूप हैं
शील, सत्य निर्मल धारा,
बहता जाता अविरल गति से
करता सुरभित जग सारा ।

दोहा - सुपथ भूल मानव चला; कब कुपंथ के साथ,
अनासक्ति का त्याग कर; लिया मोह कब हाथ।। 38 ।।

कर्म न चीन्हें संगी साथी
और न अपना नहीं परा,
मानव के जीवन की गाथा
इसी कर्म पर रहा धरा ।

इसी कर्म पर पुनर्जन्म है
इसी कर्म का फल दाता,
इसी कर्म के बल पर मानव
भाग्य विधाता को पाता ।

यह शरीर कर्मों का पुतला
कर्म बिना जल जाता है,
जीवन जिसको कहते हैं हम
कर्म बिना न सुहाता है ।

जिसने कर्म किया है उसको
बाँध समय नहिं पाता है,
तन छूटा पर राम, कृष्ण का
जीवित कर्म कहाता है ।

कर्म बिना अस्तित्व नहीं मनु
राक्षस ही रह जाता है,
त्रिगुणी इस संसृति का जीवन
कर्ममयी कहलाता है ।

दोहा - त्रिगुणी इस संसार में; कर्म कहाये सार,
कर्म बिना मानव जनम; जानो होत असार ।। 39 ।।

कर्म धर्म है; करते जाना
ही मानव की नियति रही,
धर्म राह पर चलते जाना
है मानव की प्रकृति सही ।

मानव के हर अंग-अंग से
बही कर्म की धारा है,
मत रोको ऐ दुनियाँ वालों
केवल कर्म तुम्हारा है ।

पर स्वार्थी तेरे मन अन्दर
भरी स्वार्थ की है ज्वाला,
भस्म कर रही अवनी - अम्बर
अरु अन्दर की मधुशालां ।

ना अन्तर - मन को पहचाने
और न बाहर को जाने,
केवल नश्वरता के पीछे
पागल हो तुम दीवाने ।

ना मिलने देते जनता को
भड़काते उनका अभिमान,
भोले-भाले क्या जाने वे
होता क्या हिन्दू, इसलाम ।

दोहा - जनता भोली होत है; नेता होत चलाँक,
नित गढ़ता वह धर्म का; सुन्दर एक पिनाक ॥ 40 ॥

जान सके ना तुम भी अब तक
क्या होता है धर्म जहान,
क्या होता मानव संसृति में
होता क्या उसका ईमान ।

क्या होता है हृदय, आत्म, मन
क्या होती माँ की ममता,
देख नहीं तुम पाये स्वार्थी
कितनी उनमें है समता ।

क्या होता है जग अधियारा
क्या होता है उजियाला,
क्या होता है प्रेम जगत में,
क्या होता विष का प्याला ।

धर्म बाँट कर रह सकते हो
खुश क्या तुम्हें भरोसा है,
अपनों के सँग धोखा देने-
वालों को जग कोसा है ।

तुमको तो अपनों को ही क्या
खुद को छलते देखा है,
आत्मा से तुमको पछताते
मन से रोते देखा है ।

दोहा - सम्प्रदाय के हाथ को; करता जो मजबूत,
वह मानव संसार में; अधम-अधम अतिधूर्त ॥ 41 ॥

पर तुम अपनी कमजोरी को
बाहर कब आने देते,
टूटी नौका से सागर को
पार लगाने चल देते ।

शरम नहीं आती क्या तुमको
डूब कहीं भी जाओगे,
एक हवा के झोंके के संग
तृण सम तुम उड़ जाओगे ।

तेरे माथे पर कलंक का
वह टीका लग जायेगा,
जिसे मिटाने में तुम ही क्या
युग-युग तक शरमाएगा ।

किसी समय भौगोलिक सीमा
बाधक पथ में होती थी,
किसी समय भाषा की वीणा
बाँध अलग कर देती थी ।

कभी - कभी तो खान-पान ही
बन्धन पथ में हो जाता,
वर्ग भेद खुल कर जनता के
कभी सामने आ जाता ।

दोहा- भौगौलिक सीमा कभी; भाषा बोली जाप,
कभी ईश के बीच में; सम्प्रदाय हो श्राप ।। 42 ।।

ऊँच-नीच का भेद बढ़ाया
युग-युग तक डूबे उसमें,
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
थे अपने-अपने खेमे ।

पर अब तो भौगोलिक सीमा
लाँघ गया है यह विज्ञान,
भाषा की दूरी कम हो कर
फैल गया तथ्यों का ज्ञान ।

पर तुम अहंकार पर लड़ते
स्वाभिमान पर मर जाते,
क्यों नहिं मानवता के खातिर
संसृति में कुछ कर जाते ।

यदि तेरा डर होता हिन्दू
भी नमाज पढ़ने लगते,
अरु मुसलिम तेरे ही डर से
भजन अभी भजने लगते ।

पर जिस पथ जिसको चलना है
शान्ति जहाँ पर मिलती है,
वे उस पथ के राही होते
उस पथ आत्मा खिलती है ।

दोहा- डर से कभी न होत है; किसी धर्म का नाश,
अपने-अपने पथ चलो; चले जब तलक साँस ।। 43 ।।

धर्म मिलाए परमात्मा से
कर्म बनाये जग-शाला,
नहीं कराये झगड़ा, झंझट
सदा मिटाये जग ज्वाला ।

चीख सुनाई पड़ जाती है
कानों में नित लालों की,
ममता मर्माहत होती है
पर क्या करु दिवालों की ।

हिम गिरी सा है बीच खड़ा वह
असमर्थ हो जाती हूँ,
राह नहीं मिलता आने का
बैठ बीच पछताती हूँ ।

क्यों नहीं सुनते मर्माहत स्वर
धरती माता चीख रही,
आज अनाथ पड़ी ममता की
माँग रक्त से भीग रही ।

क्यों नहिं आत्मा जागी तेरी
और न बाजू ही फड़का,
क्यों नहीं मानवता के खातिर
आज तलक पौरुष झलका ।

दोहा - सम्प्रदाय है मौत सम; जीवन होत सधर्म,
जागो जगते ही करो; मानव अपना कर्म ।। 44 ।।

कह कर जब शिष्यों ने अपनी
वाणी को विश्राम दिया,
तब आँखों से झर-झर आँसू
कम्पित बदन प्रणाम किया ।

सारी जनता मौन खड़ी थी
जैसे सूखे वृक्ष खड़े,
कहीं गहन चिन्तन में सारे
डूब गये ज्यों आश गड़े ।

आज खुली है आँखें उनकी
समझ गये इसका परिणाम,
सम्प्रदाय पथ भूल-भूलैया
है जनता का कत्लेआम ।

इससे सारी मानवता को
हमें बचाना ही होगा,
अरु आने वाली पीढ़ी को
याद दिलाना ही होगा ।

ज्योति जली जनता के मन में
जिसे साथ ले कर निकले,
गाँव-गाँव अरु शहर-शहर में
देने यह सन्देश चले ।

छंद - सम्प्रदाय कि आग जली जो यहाँ; कर दे न जला कर राख तुम्हें,
कहिं स्वार्थ तेरा इतना न बढ़े; बढ़ के कर दे असहाय तुम्हें,
कहिं जीवन ही नहिं भार बने; बन के कर देत लचार तुम्हें,
कहे चन्दर डूब न जाये धरा; करना है हरेक से प्यार तुम्हें ।। 45 ।।

।। चतुर्थ सर्ग ।।

भाषा

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

चतुर्थ सर्ग

भाषा

भाषा बिना है अपूर्ण जहाँ अरु भाषा बिना मनु मूक कहावे,
भाषा हृदय की है आह्लादता अरु भाषा सुयोग संचार सुहावे,
भाषा बिना मन की बतिया अपने मन में ही धरी रह जावे,
चन्द्र कहे हर भाषा यहाँ मनु मानवता का संदेश सुनावे ।

भाषा की कोई भी जाति नहीं, नहिं भेद, न वर्ण न वर्ग जहाँ में,
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण भाषा क होत दुलार जहाँ में,
निर्धन हो या धनी जग में इक भाषा ही होत अधार जहाँ में,
चन्द्र कहे होत प्रेम या क्रोध; करे हर भाषा प्रचार जहाँ में ।

भाषा नहिं होत कठोर कभी रसना को सदा रस देत यही,
है श्रृगांर, विभत्स, वात्सल्यमयी करुणा अरु वीर भरा रस ही,
हर भाषा अलंकृत छन्दमयी, यह जीवन का अभिलेख सही,
कहे चन्द्र बिना इसके न कभी जी सके नर-नारि व पीर मही ।

सेवा का जड़ त्याग है, त्याग जगत का मूल,
त्याग बिना जीवन नहीं, लागे नित जग शूल ।

त्याग-मूर्ति भाषा परम, सदा लुटाती आप,
सरवस अर्पण कर जगत, हरती दुख संताप ।

जिस मन भाषा मात-सम, सुख दुख एक समान,
बाँध सके नहिं कामना, ममता रहे न मान ।

मानव मानवता तभी; हर भाषा प्रति प्रेम,
भाषा बिन पशुता फले, जगत नरक नहिं नेम ।

भाषा गुण समता सदा, भाषा गुण है ज्ञान,
करती हिय पट खोल के, आत्म-ब्रह्म सम्मान ।

भाषा मोह न कीजिए, है वह सबकी आश,
वेद पुराण कुरान की, होवत भाषा साँस ।

प्रेम जहाँ होता नहीं; भाषा नित कुम्हलाय,
घुट-घुट अन्दर ही मरे; समझ न कोई पाय ।

भाषा सरस सुवासिनी; सबका मन हर लेत,
हो चाहे किस देश का, भाषा करे सचेत ।

हर भाषा के मूल में, करुणा, प्रेम, उदार,
सुख-दुख की हो भावना, पाप-पूज्य का सार ।

भोर हुआ सूरज उग आया
चिड़ियों ने मधु स्वर पाया,
मसजिद में नमाज स्वर गुँजा
मन्दिर में शिव-शिव गाया ।

गुरुद्वारे में गायन गुरु का
ईशा का गिरिजाघर में,
किया जा रहा था अराधना
एक ईश का हर मन में ।

ऊषा की हर किरण भूमि पर
स्वर्णिम चादर फैलाती,
चली आ रही थी मुसकाती
निर्मल मधुर गीत गाती ।

एक राह होती है जिस पर
मानवता बलि-बलि जाती,
एक उजाला होता जिससे
हर भाषा जीवन पाती ।

एक ईश होता है जिसको
हर पंथी ईश्वर कहते,
एक जीव होता है तन में
अगगिन भेदों के रहते ।

दोहा- भेद नहीं उस ईश में; भेद नहीं इन्सान,
अपने-अपने ढंग से; भजते सब भगवान ॥ 1 ॥

एक सूर्य अरु एक चाँद है
निश-दिन एक धरा होती,
एक पवन अरु एक गगन है
सागर एक प्रकृति मोती ।

उसी एक तत्व को जानू
और बखान करु उसका,
इसीलिए भाषा का उद्गम
है स्वरूप मानव मन का ।

नित्य निरंतर निर्विकार का
वर्णन कैसे कर पाऊँ,
अचल, सर्वगत और सनातन
का चिन्तन कैसे गाऊँ ।

जन्म रहित, शाश्वत, पुराण का
जग से नाता ना टूटे,
इसीलिए ब्रह्मा के मुख से
आदि ब्रह्म अक्षर फूटे ।

भाषा है उद्‌गार हृदय की
उस ईश्वर के प्रति अर्पण,
भावों की अभिव्यक्ति यही है
मानव के मन का दर्पण ।

दोहा - जीव जगत अरु ईश प्रति; मन का जो उद्‌गार,
भाषा उद्‌धृत नित करे; जानों इस संसार ॥ 2 ॥

हो चाहे संस्कृत का पंडित
चाहे गाँवों का भोला,
हर मानव अपनी इच्छा का
पहना है भाषा-चोला ।

चाहे हो वह हिन्दी भाषी
चाहे हो वह बंगाली,
बोल रहा हो चाहे उड़िया
अथवा हो वह मलयाली ।

संस्कृत हो या तमिल तेलगू
गुजराती, कन्नड़, अवधी,
राजस्थानी हो पंजाबी
चाहे कश्मीरी, सिंधी ।

उर्दू, अरबी, अँग्रेजी हो
चाहे रूसी, जापानी,
हो अफ्रीकी, आस्ट्रेलियन
या अमेरिकी यूनानी ।

चीनी हो चाहे फाँसीसी
हो चाहे पूर्तगाली,
चाहे अफगानी पाकी हो
चाहे हो वह नैपाली ।

दोहा - **भाषा भावभिव्यक्ति है, करता नित्य प्रणाम,**
हर भाषा संसार की, एक ईश का धाम ।। 3 ।।

चाहे वह पूरब पश्चिम की
हो चाहे उत्तर दखिनी,
हर भाषा में प्रेम भरा है
हर भाषा जीवन तरनी ।

हर भाषा का मूल मंत्र है
भाव विचारों को रखना,
मेल मिलाप और मानवता
को जग में जीवित करना ।

जन्म-दायिनी माता होती
मातृ-भूमि होती अवनी,
कर्म धर्म की इस संसृति में
भाषा कहलाती जननी ।

आँख बन्द कर जोड़ ईश को
बाल ब्रह्मचारी भजते,
अमिय प्रेम बरसाते पथ पर
चले जा रहे थे कहते ।

तुम ही मेरे मात-पिता हो
तुम ही बन्धु सखा मेरे,
तुम ही विद्या और अविद्या
तुम ही नाथ रहे मेरे ।

दोहा - ईश बिना संसार में, नहीं कहीं है ठौर,
हर प्राणी के हिय तले, बैठा वह सिरमौर ॥ 4 ॥

तुम ही हो वह किरण विश्व में
जिससे उजियाला होता
बिना तुम्हारे इस संसृति में,
एक नहीं पत्ता हिलता ।

हे गुरुदेव कृपा करना तुम
अनजाने पथ का राही,
श्रध्दा अरु विश्वास का नहीं
कभी खत्म होये स्याही ।

मन ही मन वन्दन कर गुरु का
चले कर्म पथ पर राही,
जहाँ दृष्टि जाती दिखती थी
बिछी हुई भाषा स्याही ।

सोच रहे थे इस स्याही से
गुरु को शोक हुआ होगा,
शायद इससे मर्माहत हो
आज्ञा हमें दिया होगा ।

घर-घर हमें बताना होगा
भाषा की महिमा भारी,
मुझे भगाना होगा इनके
मन की दुर्बलता सारी ।

दोहा- अपनी-अपनी कह मरे, कितने जग में लोग,
पर हर भाषा एक है, जाने हरि संयोग ।। 5 ।।

घूम रहे थे सड़क-सड़क अरु
गली-गली में घर-घर में,
देख रहे थे सूक्ष्म दृष्टि से
हर भाषा भाषी मन में ।

देख रहे थे कहीं अहम की
सुलग रही मन में ज्वाला,
कहीं मोह में पागल हो सब
झूम रहे हो मतवाला ।

ईर्ष्या की भीषण बिभीषिका
कहीं हृदय को जला रही,
कहीं क्रूरता पागल हो कर
मानवता को गला रही ।

भाषा का ले नाम कहीं पर
दीवारें बनते देखा,
कहीं उसी के नाम हृदय में
नित द्रार पड़ते देखा ।

मानव, मानवता को उसने
मरते देखा आँखों से,
देखा होते दफन मनुज को
भीगी आहत साँसो से ।

दोहा- भाषा पर कट मर रहे, सत्य न जाने कोय,
हर भाषा का लक्ष्य इक, प्रेम जगत में बोय ।। 6 ।।

कहीं खून की धारा देखे
सूनी माँग कहीं देखे,
कहीं दूध बिन नवजातों का
बिलख-बिलख मरना देखे ।

कहीं तड़प कर प्राण छोड़ते
वृद्ध भूख से नलियों में,
कहीं लाज लुटते देखे वे
उन्हीं अँधेरी गलियों में ।

भाषा पर नित दीवानों को
कुर्बानी देते देखा,
कहीं उसी के नाम देश को
खंड-खंड होते देखा ।

कहीं देश में बैठे देखा
गैरी भाषा भाषी को,
घात लगाये कहीं देखते
देखा अनगिन घाती को ।

अपनी-अपनी भाषाओं पर
पगलाते उसने देखा,
अपनी भाषा पर इठलाते
लोगों को जलते देखा ।

दोहा- भाषा तो माता जगत, है ममता की खान,
पागलपन तेरी यही, माने द्वन्द्व समान ।। 7 ।।

गाँव उजड़ते उसने देखा
देखा कुम्हलाते जन-मन
आग लगाते उसने देखा,
देखा मुरझाते जीवन ।

भाषा शास्त्री, पंडित, ज्ञानी
सब उधेड़ में लगे रहे,
मेरी भाषा में ही रस है
अलंकार अरु श्रेष्ठ कहे ।

हर भावों को उदधृत करना
मेरी भाषा की खूबी,
मेरी भाषा में ही दम है
काव्य तत्व में है डूबी ।

इससे बढ़कर धनी न कोई
भाषा जग मैने पाया,
इससे सरल, सरस काव्यात्मक
कहीं व्याकरण ना छाया ।

चाहे वह विज्ञान शास्त्र हो
हो चाहे कवि की कविता,
चाहे वह हो अर्थशास्त्र या
हो चाहे ज्ञानी - बनिता ।

दोहा - भाषा के प्रति मोह ही, पतन राह ले जाय,
औरों की भाषा सदा, जग में नीच दिखाय ॥ 8 ॥

सभी परिधि के भीतर इसके
मानव हो या मानवता,
हो चाहे वह अवनी-अम्बर
हो चाहे वह दानवता ।

सब कुछ आँचल भर सकती है
एक हमारी ही भाषा,
और आत्म में बस सकती है
केवल मेरी ही भाषा ।

विविध रूप मेरे भाषा की
नहीं कहीं मिल पायेगी,
जीवन की सारी खुशिहाली
भाषा में मिल जायेगी ।

यही मातृ भाषा है मेरी
और सभी भाषा तीखी,
यही भावना भरी हुई है
युगों-युगों से है सीखी ।

ऐसे अभिमानी से लुटते
लोगों को मिटते देखा,
पर अपनी भाषा प्रति श्रद्धा
नहीं कहीं उनमें देखा ।

दोहा - ढोंगी का मन ढोंग रत; क्या अपना क्या गैर,
ढोंग दिखाना कर्म इक; धर्म न कोई खैर ॥ 9 ॥

सूर्य अस्त हो गया राह पर
योगी थक कर बैठ गये,
और क्लान्त मन से सराय में
अति निद्रा में पैठ गये ।

देखा स्वप्न खड़े थे गुरुवर
एक हाथ ऊपर ताने,
रौद्र रूप आँखों में ज्वाला
अरु दृढ़ता मन में ठाने ।

अति कठोर उनकी वाणी थी
जैसे नभ में हो गर्जन,
करता है जैसे दहाड़ कर
सिंह गीदड़ों का मर्दन ।

अरे मूर्ख जब सोना ही था
यहाँ किसलिए तुम आये,
अपने ही आश्रम में सोते
धर्म राह क्यों अपनाए ।

याद नहीं क्या तुम्हें प्रतीज्ञा
कर में जल लेकर ली थी,
समाधान लेकर लौटूँगा
तुमने आश्वासन दी थी ।

दोहा - धर्म राह अति कठिन है; असि धारा सम जान,
निद्रा, आलस, मान, मद; छोड़ भगे सब प्रान ॥ 10 ॥

उत्तर तब तक नहीं मिलेगा
चैन नहीं क्षण भर लूँगा,
आये कितनी भी बाधाएँ
जीत तभी मैं सोऊँगा ।

पर तुम तो सो गये अभी से
आगे क्या कर पाओगे,
सोकर तुम मिट्टी में सारा
लगता धर्म मिलाओगे ।

अन्तर-ध्यान हुए सद्‌गुरु कह
योगी का तन सिहर उठा,
भीतर मन व्याकुल मर्माहत
मौन पड़ा ही कहर उठा ।

शान्त चित्त, नत मस्तक हो कर
गुरु से तुरत क्षमा माँगी,
हुआ उजाला हिय योगी के
आँखों में ज्वाला जागी ।

बढ़े राह पर अडिग, अचंचल
मन में धर अतुलित आशा,
सैयम, नियम-धरम के राही
पलटा क्षण जीवन पासा ।

दोहा - शील शान्ति संयम जहाँ; तनिक ज्योति मिल जाय,
करत उजाला राह पर; जग प्रकाश बन जाय ॥ 11 ॥

शहर-शहर अरु गावँ-गाँव में
निश-दिन वे देते फेरी,
हर भाषा प्रति एक प्रेम हो
हर भाषा माता मेरी ।

भाषा की उत्पत्ति हुई है
उसी अनामी के मुख से,
जिसको कोई अल्ला कहता
ईश कहीं ईशा सुख से ।

ईश्वरीय भाषा का आदर
करना हर मानव का धर्म,
उसे सुकोमल, सौरभ, सुन्दर
और कलात्मक करना कर्म ।

उसकी इज्जत माता के सम
होती है मेरे भाई,
उसकी उन्नति मातृ-भूमि की
उन्नति कहलाती माई ।

संसृति की कोई भाषा हो
सब होती सग्गी बहना,
आदि पिता होता है सबका
सब होती जग का गहना ।

दोहा - बोली भाषा ईश की; सुन्दर एक विधान,
पूज्यनीय ये सर्वदा; योगी संत किसान ॥ 12 ॥

बहना से जो नफरत करता
वह होगा कैसा भाई,
सदा नाम बदनाम करेगा
होगा निर्मम कस्साई ।

माता से जो नफरत करता
घृणा ईश से करता है,
वह तो अपनी भाषा से भी
नहीं प्यार कर सकता है ।

उत्तर की भाषा हो चाहे
दक्षिण की कोई भाषा,
पूरब की भाषा चाहे हो
पश्चिम की कोई भाषा ।

हर भाषा मिल निखिल विश्व की
पूरी संस्कृति कहलाती,
जिसके कारण ही संसृति में
भाषा माँ मानी जाती ।

भाषा तो आत्मा होती है
आत्मा अन्दर की वासी,
भेद नहीं कुछ उसमें होता
वह तो होती संयासी ।

दोहा - भाषा कोई चीज नहिं, दोष खोट दिखलाय,
शुद्ध चित्त की भावना, भाषा प्रगट कहाय ॥ 13 ॥

भाषा से नफरत मत करना
भाई-बहनों का श्रृंगार,
करना ही है तो आँचल में
भर कर करना उससे प्यार ।

यदि भाषा से प्यार करोगे
प्रेम तुम्हें मिल जायेगा,
प्रेम-प्रेम से सारे जग में
मानवता छा जायेगा ।

हर भाषा भाषी की संस्कृति
जीवन को तुम पहचानों,
उनके कोमल भाव जगत को
आतमीयता से जानों ।

करुणा प्रेम दया का सागर
नित होता उनका जीवन,
उनके बहते चिर ममता में
भाषा भरती संजीवन ।

ऐसी भाषा पूरब की हो
पश्चिम या दक्षिण, उत्तर,
भेद नहीं कुछ होता भाई
नहीं कहाता निम्न शिखर ।

दोहा - हर भाषा में करुण अरु, प्रेम,दया लहराय,
मानव की हर भावना, भाषा बन मुसकाय ॥ 14 ॥

श्रद्धा से तु उसे नमन कर
वह तेरी भी माता है,
तेरे ही भाई बहनों के
मन की वह अभिलाषा है ।

उसे जगह दो अपने हिय में
सीचों कोमल भावों से,
सुदृढ़ बनाओ इतनी उसको
बातें करे हवाओं से ।

हर भाषा में मातृप्रेम है
हर भाषा में करुणा है,
हर भाषा में बहती गंगा
हर भाषा में वरुणा है ।

ईश्वर वंदन हर भाषा में
मानवता का वर्णन है,
मानव की जीवन लीला है
अरु अन्दर का दर्शन है ।

भाषा बतलाती तुम क्या हो
मनो-भावना क्या तेरी,
भाव-विचारों में अन्तर क्यों
कर्म-धर्म में क्यों दूरी ।

दोहा - भाषा दर्पण हृदय की, ईश्वर की अवतार,
मानव मानवता यही, संस्कृति की आधार ।। 15 ।।

जैसी तेरी संस्कृति होगी
वैसी भाषा की रचना,
रीति-नीति मर्यादा होती
भाषा की सुन्दर गहना ।

भाषा से मत नफरत करना
भाषा आत्मा की उद्‌गार,
प्रकृति, चरा-चर की करती है
भाषा ही केवल सत्कार ।

कोई भी मानव भाषा बिन
पूर्ण कभी ना हो सकता,
भाषा बिन गूँगा होता है
भाषा बिन जीवन सुखता ।

सभी राष्ट्र की अपनी भाषा
होता भौगोलिक जीवन,
मौसम अरु जलवायु वहाँ की
होते अलग-अलग उपवन ।

यही भिन्नता हर भाषा की
रचना की जड़ होती है,
इसी ज्ञान से उस प्रदेश की
भाषा निर्मित होती है ।

दोहा - **भौगोलिक रचना कहो, मौसम या जलवायु,**
सब होते है वहाँ के, उस भाषा की वायु ॥ 16 ॥

हर भाषा वात्सल्यमयी है
हर भाषा संजीवन है,
हर भाषा में प्रेम भरा है
हर भाषा स्पंदन है ।

हर भाषा रसमय होती है
हर भाषा में धर्म भरा,
हर भाषा हिय में सागर सा
हर भाषा में कर्म भरा ।

हर भाषा मानव सपने की
झाँकी उद्धृत करती है,
हर भाषा ईश्वर स्वरूप को
जगत सामने रखती है ।

मानवता भाषा सिखलाती
राह हमें दिखलाती है,
जीव ब्रह्म में भेद न कोई
भाषा हमें बताती है ।

भाषा को तुम अलग न मानों
हो चाहे पूरब-पश्चिम,
चाहे हो वह उत्तर, दक्षिण
हो चाहे उज्ज्वल - मद्धिम ।

दोहा- जीव ब्रह्म के सत्य को; भाषा देती खोल,
पाप पूण्य क्या होत है; सदा खोलती पोल ॥ 17 ॥

महा शक्ति की भाषा चाहे
हो वह जंगल-झाड़ी की,
सभी कुसुम हैं इस संसृति के
उपवन की हो क्यारी की ।

किसी देश की भी भाषा हो
मानव की वह जननी है,
वही सिखाती समझाती है
वही ज्ञान की करनी है ।

•

पराधीनता यही हमारी
भाषा में बँध जाते हैं,
संप्रदाय की ज्वाला में जल
घर-घर आग लगाते हैं ।

सोच नहीं पाते हर भाषा
भावों की कोमल क्यारी,
सोच नहीं पाते ईश्वर की
लीला यह अद्‌भुत न्यारी ।

हर भाषा में उसी ईश को
याद कराया जाता है,
जीवन की सारी सच्चाई
शील सिखाया जाता है ।

दोहा- हम लोभी मोही महा; भाषा निर्मल शान्ति,
कामी क्रोधी मनु रहा; भाषा मधुरी क्रान्ति ॥ 18 ॥

हर भाषा संगीतमयी है
अरु साहित्य सजी होती,
हर भाषा मानव की ममता
समता का जीवन होती ।

दया धर्म अरु प्रेम भाव की
पाठ पढ़ाती हर भाषा,
दूर कराते मंदिर मसजिद
मेल कराती हर भाषा ।

भाषा से मत नफरत करना
वह मानव की है थाती,
सीख सिखाती शिशु से लेकर
मृत्यु नहीं जब तक आती ।

उसे न देना दोष कभी भी
वह तो निर्मल, निश्छल है,
वह तो निर्झरिणी सी कल-कल
अविरल बहती छल-छल है ।

वह तो हृदयोद्गार जगत की
ब्रह्म, वादिनी कहलाती,
किसी क्षेत्र की हो पर भाषा
अमृत रस ही बरसाती ।

दोहा - शिशु से लेकर वृद्ध तक; सबको देती ज्ञान,
भाषा होती जगत में; हर मानव का प्रान ।। 19 ।।

कहते हो वसुधा कुटुम्ब तो
हर भाषा अपनी होगी,
कहते हो जग एक रचइता
हर भाषा में वह जोगी ।

भाषा को लेकर मत लड़ना
यह बहना क्या पायेगी,
भाई-भाई को लड़ते यह
देख तड़प मर जायेगी ।

उसके सब श्रृंगार, आत्म-रस
मिट्टी में मिल जायेंगे,
भाषा का माधूर्य लूट कर
बोलो हम क्या पायेंगे ।

भाषा जग की गति होती है
उसकी धारा मत रोको,
वरना मानवता न रहेगी
उसे आग में मत झोको ।

भाषा मानव की संस्कृति है
भाषा मर्यादा होती,
रीति-नीति की धूरी होती
और सभ्यता की मोती ।

दोहा - रीति नीति अरु सभ्यता; संस्कृति अरु मरजाद,
भाषा बिन सब ठूँठ ज्यूँ; ईश बिना परसाद ॥ 20 ॥

मानव कर विश्वास ह्रदय में
जब-जब चाहोगे ज्योती,
तब-तब इस भाषा से तुमको
लेना ही होगा मोती ।

वाणी की शोभा भाषा है
उसको शत-शत नमन करो,
भाषा के खातिर मत लड़ना
भाषा को तुम ग्रहण करो ।

भाषा के शाश्वत स्वरूप को
मत रौंधो, मानव जागो,
वरना मानवता न बचेगी,
दानवता को मत पागो ।

भाषा तो है सरल, सुकोमल
छल-छल, कल-कल बहती है
निर्मल, शीतल, निश्छल, प्रतिपल
अति पावन हो झरती है ।

भाषा से मन निर्मल होता,
भाषा वेद सिखाती है,
भाषा ही उस ईश तत्व से
साक्षात्कार कराती है ।

दोहा - भाषा को जाने बिना; वेद ज्ञान नहिं होय,
ईश्वर की महिमा मनुज; जान सके नहिं कोय ।। 21 ।।

भाषा कर्म राह बतलाती
भाषा अर्पण होती है,
भाषा से ही इस संसृति में
ज्ञान ज्योति नित जलती है ।

भाषा बिन क्या होगा जग का
जरा सोच तू हे मानव,
शायद मानव रह जायेगा,
इस जग में बनकर दानव ।

सीमाओं में बाँध इसे क्यों
रखते हो मेरे भाई,
हर भाषा अरु बोली जग की
होती है सबकी माई ।

भाषा के चलते हम देखे
बटते गाँवों, शहरों को,
देखे कितने राज्य बिगड़ते
मरते कितने बहिरों को ।

भाषा के चलते भावों पर
अनगिन घोर प्रहार हुए,
भाषा के चलते मानव पर
कितने अत्याचार हुए ।

दोहा- भेद भाव की भावना, छोड़ होत जब एक,
भाषा सिखलाती हमें; मानवता की टेक ॥ 22 ॥

गली - गली अरु गाँव-गाँव में
नुक्कड़ अरु चौराहों पर,
ओजस्वी शिष्यों की वाणी
गूँज रही हर राहों पर ।

अरे भाइयों ! भाषा होती
मावन का जीवन दर्शन,
इसको बिन जाने नहिं होता
मानव का पूरण अर्पण ।

चारो शिष्यों की वाणी अब
गूँज रही घर आँगन में,
हर भाषा प्रति प्रेम भरा था
ज्यों रस भरता फागन में ।

भाषा के हैं विविध नाम जग
कोई भाषा है कहता,
कोई कहता माता मेरी
पर सबमें है कोमलता ।

कोई बोली कहलाती है,
अंचल स्वर कोई कहता,
कोई उन्नत भाषा कहता,
कोई उत्तम दम भरता ।

दोहा- कोई कहता मातु अरु बानी कहता कोय,
कोई उन्नत स्वर कहे, कोई कहे पिरोय ।। 23 ।।

पर हर बोली अरु भाषा का
जीवन है केवल अर्पण,
मानवता का पाठ सिखाना
भाषा का उत्तम दर्पण ।

सब भाषा मिल युगों-युगों से
मानव को बतलाती है,
मानवता ही एक राह है
जीवन दर्शन गाती है ।

बिन भाषा के ज्ञान न होता
रीति नीति खो जाती है,
जीवन की सब आकांक्षाएँ
मिट्टी में मिल जाती है ।

भाषा तो पहली सीढ़ी है
मानवता पथ जाने की,
बिन भाषा के और न कोई
पथ होता समझाने की ।

भाषा बिन कैसे सीखोगे
वेदों को, इतिहासों को,
भाषा बिन कैसे सीखोगे
राजनीति के चालों को ।

दोहा - भाषा बिन कोई नहीं, मानव जगत कहाय,
शास्त्र और इतिहास दोउ; जग नहिं कभी सुहाय।। 24 ।।

चाहे कोई भी भाषा हो
मान हमें करना होगा,
उसके शूक्ष्म नीति बचनों को
हृदय तले धरना होगा ।

भाषा से ही जान सकोगे
गीता के गुरु मंत्रों को,
भाषा में ही तुम पाओगे
अपने जीवन तंत्रों को ।

वेद, कुरान, बाइबिल, गीता
सब मानव के हैं श्रृंगार,
सबकी भाषा अलग-अलग है
पर होता है सबमें प्यार ।

जैसे जग की हर नारी को
हम अपनी माता कहते,
वैसे ही हम हर भाषा में
मातृ-स्नेह देखा करते ।

भाषा को लेकर जो लड़ता
वह पागल कहलाता है,
भाषा प्रति आस्था नहिं जिसमें
जीवन व्यर्थ गवाता है ।

दोहा - वेद, पुरान, कुरान अरु; बाइबल, गीता ज्ञान,
गुरुवाणी या धम्मपद; सब हैं एक समान ।। 25 ।।

प्यार करो तुम हर भाषा प्रति
शुद्ध हृदय गहराई से,
मन में भर आत्मीय खजाना
प्यार मिले हर भाई से ।

अंचल की बोली से पाती
राष्ट्री भाषा गहराई,
नित्य सजाती अपना आँचल
उनसे ही प्रभुता पाई ।

बोली से ही होता जग में
राष्ट्री भाषा का निर्माण,
उससे ही होती संसृति में
अलंकार, रस, छंद, प्रमाण ।

जैसे सारा अंग मिला कर
यह शरीर कहलाता है,
वैसे ही हर बोली मिल कर
मधुर भाष बन जाता है ।

भाषा में ही कृष्ण कन्हैया
ब्रह्म ज्ञान फैलाए थे,
राम जगत में मर्यादा का
सुन्दर पाठ पठाये थे ।

दोहा - सभी अंग मिल कर बने; मानव एक शरीर,
त्यों सब भाषा से बनी; मानवता गंभीर ॥ 26 ॥

भाषा में ही दया, धर्म का
पाठ सुनाया ईशा ने,
भाषा में ही राह दिखाया
आदि काल में मूसा ने ।

गौतम बुद्ध संदेशा लेकर
चले शहर में, गाँवों में,
सत्य अहिंसा को अपनाओ
भाव दिखाया राहों में ।

गुरु नानक की वाणी गुँजी
वह भी जग की भाषा है,
परम प्रेम जग पर बरसाया
वह भी मनु अभिलाषा है ।

भाषा को माता रहने दो
यही प्रार्थना है मेरी,
उसकी आँचल में बालक सा
आओ नहीं करो देरी ।

मौन हो गई वाणी उनकी
सोच रहे अपने मन में,
गुरु का आशीर्वाद रूप धर
झलक रही जनता तन में ।

दोहा- राम कृष्ण ईसा अरु; मूसा नानक ज्ञान,
भाषा के ही रूप में; सत पथ मिलत जहान ।। 27 ।।

जनता सुन-सुन आह्लादित हो
शीश झुकाई चरनों में,
आँखों में झर-झर आँसू अरु
विह्वल ममता नयनों में ।

सोच रही थी क्यों नहिं आये
पहले पाठ पढ़ाने को,
व्यर्थ बहा लोहू; आये नहिं
क्यों तब जान बचाने को ।

पर मन में ढाढ़स था इतना
देर भले आये योगी,
जीवन की खुशियाँ फैलाये
सत्य सुनाये हैं योगी ।

मन गदगद, तन रोमान्चित था
सुन भाषा की करुण कथा,
बोले लेते आज प्रतीज्ञा
होगी अब से यही प्रथा ।

हर भाषा प्रति नेह हमारा
समरस हो नित बरसेगा,
अक्षर ही है ब्रह्म रूप जो
हर भाषा को सरसेगा ।

दोहा - सत्य सदा सत होत है; कह के तो तू देख,
मिट जाती सरवस व्यथा; कितनी गहरी रेख ॥ 28 ॥

देख रहे थे मौन खड़े सब
शिष्य ज्योति की आशा में,
सोच रहे गुरु कृपा विश्व के
फैल रही तरु शाखा में ।

हाथ जोड़ कर धन्यवाद दे
चले सभी योगी पथ पर,
बहुत दूर तक जनता प्यारी
देख रही आँसू भर कर ।

छंद - मन में समता उपजे जबही तबही हर भाषा समान दिखाये,
जब विश्व बन्धुत्व का भाव उठे तब मात समान सुभाष सुहाये,
मन में नहिं द्वन्द न राग उठे तब मानव एक संगीत सुनाये,
चन्द्र कहे जब ईश चराचर भेद बता फिर क्यों मन भाये ॥ 29 ॥

॥ पंचम सर्ग ॥

कर्म

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

पंचम सर्ग

कर्म

जिनको इस जीवन में गुरु का है मिला सत-ज्ञान-प्रकाश नहीं,
पढ़ वेद, पुराण रहे अनजान बिना गुरु ज्ञान सुवास नहीं,
धन-दौलत मान बेकार सभी यदि जीवन ही मर्याद नहीं,
वह जीवन व्यर्थ गया जग में जिसको गुरु आशीर्वाद नहीं ।

कर्म कि मार सभाल सके मनु संसृति में न अभी तक कोई,
जन्म से मृत्यु, पुनर्जन्म भी सब है अवलम्बित तापर सोई,
मात-पिता पुत्र नारि मिले घर-बार मिले जस कर्म सजोई,
चन्द्र कहे इस कर्म की बात कभी भगवान सके नहिं खोई ।

कर्म-धर्म शाश्वत सदा; मिटा सके ना कोय,
अमर कर्म-योगी जगत; भोगी दलदल खोय ।

योगी भोगी ना बचें; बिना कर्म जग माहि,
एक कर्म आसक्त है; अनासक्त इक माहि।

यज्ञ, दान, तप कर्म कर; नित्य कर्म फल त्याग,
सदगुरु का उपदेश यह, मन मंदिर में जाग ।

कर्म कभी छोटा नहीं और न बड़ा सुजान,
पर हित की ही भावना; तो सब कर्म समान ।

मुक्ति और बन्धन दोऊ; कर्मों का फल मान,
स्वारथ से बन्धन मिले; परहित मुक्ति महान ।

कर्मों से ईश्वर बने; कर्मों से सैतान,
जैसा जिसका कर्म जग; वैसा उसका मान ।

जाओ गुरु की शरण में; कर्म योग ले ज्ञान,
होत न गुरु की कृपा बिन; मानव का कल्यान ।

मानव तन, धन प्रकृति का, हो उससे तू मुक्त,
क्यों अपनों के मोह में; मर जाते हो मुफ्त ।

आज किये जो कर्म तुम, होत भाग्य कल तोर,
जाग मुसाफिर आज तू, कल में कसर न कोर ।

गुरु का आशीर्वाद लिए कर
चले कर्मयोगी पथ पर,
फल की इच्छा त्याग कर्म को
करने का सम्बल मन भर ।

देख कर्मयोगी को आते
प्रकृति प्रफुल्लित नाच रही,
अंग-अंग शोभायमान था
आनन्दित हर साँस रही ।

परमात्मा की क्रिया प्रकृति है
जिसको माया कहते हैं,
जिसके बल पर ही संसृति की
नित्य माँग वह भरते हैं।

उसी ब्रह्म का अंश प्रकृति के
परवस हो मन नाच रहा,
कैसी है अद्भुत लीला यह
असत सत्य सा झाँक रहा ।

उलटी धारा सत्य नहीं है
पर उसने बहते देखा,
प्रकृति करों में कठपुतली सा
मानव को नचते देखा ।

दोहा - जीव ब्रह्म का अंश है, ब्रह्म उसे ही जान,
पड़ा प्रकृति के फेर में, कैसी अद्‌भुत शान ।। 1 ।।

पुरुष बधा है प्रकृति कर्म में
जिसका कोई साथ नहीं,
नित अनित्य अरु जड़ चेतन का
होता कभी मिलाप नहीं ।

पर यह पुरुष कर्म बन्धन में
फँसा मौज में सोता है,
ममता और अहंता में फँस
लेता निश-दिन गोता है ।

भूल गया वह प्रकृति तत्व से
ही नित कर्म हुआ करता,
पर सत रूप, अनाम, अकामी
उदासीन सरवस रहता ।

अधिष्ठान, अधिकरण व कर्ता
चेष्टा और दैव पाँचों,
मिल कर क्रिया पूर्ण होती है
बुधि विवेक से तुम जाँचो ।

अधिष्ठान में यह शरीर और,
वह स्थान लिया जाता
जहाँ हुए तुम क्रियाशील वह
स्थिति देश गिना जाता

दोहा - अधिष्ठान का मूल है, स्थिति, देश, शरीर।
जहाँ पूर्ण होती क्रिया, भू, जल, अनल समीर ॥ 2 ॥

जग की छोटी बड़ी क्रियाएँ
सदा प्रकृति पूरी करती
हो समष्टि या व्यष्टि कार्य नित
पूर्ण प्रकृति द्वारा होती

अज्ञानी मानव अपने को
कर्ता जब-जब माना है,
तब-तब अहंकार से मोहित
भेद नहीं पहचाना है

जड़ चेतन का ज्ञान न उसको
अपने को कर्ता माना
और प्रकृति के कार्यों को ही
अभिमानी अपना जाना

पाँच कर्म इन्द्रियाँ हमारी
पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ होतीं
कहलाती हैं बाह्यकरण ये
सदा क्रियारत ही रहतीं

मन, बुधि, अहंकार ये तीनों
अंतःकरण कहाते हैं
जिनके वसीभूत हो मानव
क्रियाशील हो जाते हैं।

दोहा : पाँच कर्म इन्द्रिय अरु, ज्ञान इन्द्रियाँ पाँच।
अहंकार, मन, बुद्धि सब; करण कहाते साँच ॥ 3 ॥

अन्तःकरण व बाह्य करण ही
कर्मों के साधन होते
इनके बिना कर्म कोई भी
कभी न पूरे ही होते।

हाथ, पैर, मुख, गुह्य उपस्थ
बाह्य इन्द्रियाँ कहलातीं
श्रोत्र, चक्षु, त्वक्, रसना, घ्राण
से मिल चेष्टा बन जातीं।

लेना, देना, आना जाना
और बोलना होता है
मल-मूत्रों का त्याग निरन्तर
नित्य कर्म सब रहता है।

देख रहे हैं जो कुछ जग में
नेत्रों से सब होता है
मधुर, धीर, कटु जो स्वर होता
कान सदा बनता श्रोता।

छू कर जब अनुभव होता है
वही त्वचा कहलाती है,
खट्टा, मीठा, कड़ुवाहट का
रसना स्वाद बताती है ।

दोहा - इन्द्रिय माध्यम जगत में, धर्म और कर्तव्य,
संयम से उपयोग कर, जीवन होये भव्य ।। 4 ।।

ज्ञान गंघ का घ्राण कराती
हो सुगंध, दुर्गन्ध भले,
लेना ही पड़ता है हमको
चाहे चाहत भले छले ।

सारी चेष्टायें, मन-मंथन
निश्चय हो अभिमान भले,
दबी हुई होती हैं अन्दर
अहंकार, मन, बुद्धि तले ।

यह सब होता संस्कारों के
वसीभूत मानव मानो,
जैसा हो संस्कार तुम्हारा
क्रिया तूल्य उसके जानों ।

संस्कार ही देव कहाता
शुभ अरु अशुभ रूप होता,
जैसा तेरा संसकार हो
वैसा रूप लिए बोता ।

कर्म सदा करना पड़ता है
हो कुकर्म, सतकर्म भले,
मानव छूट नहीं सकता है
प्रकृति संग जो नित्य पले ।

दोहा- कर्म करे बिन जगत में; रहे न कोई जान,
हो चाहे भोगी भले; हो जोगी इन्सान ।। 5 ।।

जिसने इसको समझ लिया है
वह ज्ञानी कहलाता है,
वही सिद्ध आत्मा होता है
वह सात्विक गुण पाता है ।

जो न समझता इसी तत्व को
वह अज्ञानी कहलाता,
वही कर्म बन्धन में बँध नित
पशुतापन को ही पाता ।

मानव फँसता जग बंधन में
तीन कर्म फल वह पाता,
इष्ट, अभीष्ट, मिश्र कोई हो
जीवन व्यर्थ गुजर जाता ।

जिसे चाहता है नित मानव
वह स्थिति पा जाये तो,
उसे इष्ट बन्धन कहते हैं
बार-बार ललचाये जो ।

जो बिन चाहे ही मिल जाये
वह अभिष्ट फल कहलाये
इसे भुगतना ही पड़ता है
चाहे भले नहीं भाये।

दोहा – तीन कर्म फल जगत में; मानव बँध बिलखाय;
इष्ट अभीष्ट व मिश्र ये; मिल नित बाँधत जाय ॥ 6 ॥

इष्ट अभिष्ट कभी दोनों ही
फल सम्मुख आ जाते हैं
इसे मिश्र कर्म-फल कहते
मनु को नित्य सताते हैं।

पर जो हैं आसक्त फलों से
वे ही बन्धन में होते
उनको ही ये फल मिलते हैं
प्रकृति गुणों में नित बँधते।

कर्म और फल इस संसृति में
सदा प्रकृति से होते हैं
वह निर्मित स्थिति कर देती
मनुज नित्य रत रहते हैं।

मानव जब भी इससे बँधता
तब खुद कर्ता बन जाता
और अहम में फस कर जीवन
व्यर्थ गवा कर मर जाता।

पर जो भी सत को पहचाना
कर्म से नहीं बँधता है,
जो जाना परिणाम प्रकृति का
वह त्यागी बन जाता है ।

दोहा - स्थिति करती प्रकृति नित, निर्मित इस संसार,
जिसमें बँध सब कर्म रत, बचा न कोई यार ॥ 7 ॥

बँध जाता जब कर्म फलों में
हित-अनहित न समझ पाता,
देख सामने सुखी-दुखी हो
आहत मानव घबराता ।

यही कर्म बंधन है मानव
आज तलक न समझ पाये,
बंधे जा रहे इसी तरह पर
गुत्थी कैसे सुलझाये ।

प्रकृति पुरुष दो ही संसृति में
दोनों का रिस्ता एकी
पर दोनों के कर्म अलग हैं
दोनों की परिणति नेकी ।

हर क्षण परिवर्तन ही गुण है
प्रकृति निरंतर चाल रही,
परिवर्तन से रहित पुरुष है
पर माया ललकार रही ।

प्रकृति क्रिया तब कर्म कहाती
पुरुष प्रकृति से जब बँधता,
प्राप्त वस्तुओं के प्रति मन में
निश दिन जब उठती ममता ।

दोहा - फल में हो आसक्ति जब; हित अनहित न दिखाय,
सुख-दुख को लख सामने; आहत मन घबराय ।। 8 ।।

पर जो नहीं मिला मानव को
आशा ले मन के अन्दर,
उसी प्यास की तृप्ति के लिए
फँसा जन्म से जन्मान्तर ।

कर तादात्म्य कामना, ममता
पुरुष प्रकृति में बँध जाता,
बँधा रहे तब तक बन्धन में
जब तक देख नहीं पाता ।

जब तक मन में रहे कामना
ममता से तादाम्य रहे,
तब तक जो कुछ क्रिया रूप है
कर्म उसे तू जान सहे ।

पर टूटे जब ममता जग से
और कामना नहीं रहे,
तब हो जाता वही कर्म सत
योगी उसे अकर्म कहे ।

चार कामना मनु की होती
धर्म, अर्थ मोक्ष, कामा,
पर सत पुरुष जगत में वह जो
इसको जान गया रामा ।

दोहा- चार कामना जगत में; अर्थ धर्म अरु काम,
मोक्ष मिले पर लोक में; नित्य लुभाए राम ।। ९ ।।

ये चारो कामना निरंतर
बढ़ती रहती है अविराम,
बढ़ते-बढ़ते आ जाती है
मानव के जीवन की शाम ।

खतम जिन्दगी हो जाती है
रह जाता है खाली हाथ,
और चला जाता है तज तन
घोर नरक में होत अनाथ ।

कर्म कई शुभ फल देते हैं
कई अशुभ फल भी देते,
अशुभ कर्म प्रतिकूल परिस्थिति
शुभ अनुकूल सदा फलते ।

केवल कर्म करो हे भाई
फल की इच्छा मत राखो,
है अधिकार कर्म में केवल
फल की चाहत मत चाखो ।

कर्म तीन हैं क्रीयमाण अरु
संचित और प्रारब्ध महा
तीनों कर्मों का प्रतिफल ही
संसृति में मनु भोग रहा।

दोहा - अशुभ कर्म से अशुभ फल; शुभ से शुभ तू जान;
सब तेरे ही हाथ में; दे जिसको सम्मान ।। 10 ।।

जो कुछ कर्म कर रहे हो तुम
वही कर्म है क्रियमाण यहाँ,
फल मिलता शुभ अशुभ इसी से
सुख दुख पाता अखिल जहाँ।

कर्मों पर अधिकार तुम्हारा
फल की आशा मत रखना,
फल देने वाला ईश्वर है
कर्म रथी केवल रहना।

पर तू कर्मविहीन बने तो
मानव ना कहलाओगे,
पशु बनकर ही रह जाओगे
जीवन व्यर्थ गवाँओगे।

अनासक्त ही इस संसृति में
कर्मयोग में लग जाओ,
समता ही है योग कहाता
उसी राह पर तुम आओ।

समता से ही पाप-पुण्य को
त्याग यहाँ कर पाओगे,
कर्मों में समता जब होगी
कुशल आप बन जाओगे।

दोहा - समता बिन संसार में; होत नहीं कल्यान,
समता से सुख-दुख मिटें; अभय रहत इन्सान ॥ 11 ॥

कर्म जन्य फल त्याग मनीषी
बन्धन मुक्त कहाते हैं
सशरीर ही निराकार पद
प्राप्त धन्य हो जाते हैं।

पर मानव तज कर्म-योग पथ
चिन्तन विषयों का करता,
हो आसक्त कामना, ममता
कामी क्रोधी ही बनता।

काम, क्रोध से सम्मोहित हो
स्मृति भ्रम हो जाता है,
स्मृति भ्रम से बुद्धि नष्ट हो
जग में पतित कहाता है।

विषयों का चिन्तन ही मानव
तुमको मूढ़ बनाता है,
कर्मयोग से विचलित करता
पतन राह ले जाता है।

हे मानव ! कर त्याग कामना
निर्मम, निरहंकार बनो,
निस्पृह हो चिर शान्ति प्राप्त कर
जीवन में इंसान बनो ।

दोहा - विष सम चिन्तन विषय का; अमृत सम भगवान,
एक जलावे नित्य जग; एक खिलावे प्रान ॥ 12 ॥

बिना कार्य आरम्भ किये नहिं
कहलाता है निष्कर्मी,
और कर्म के त्याग मात्र से
कोई होता ना धर्मी ।

कर्म त्याग से मनुज न कोई
सिद्धि प्राप्त कर सकता है,
कर्म किये बिन कोई जग में
क्षण भर ना रह सकता है ।

जीव प्रकृति के परवस होता
त्रिगुणात्मक कहलाती है,
तीनों गुण से बचा न कोई
निश-दिन कर्म कराती है ।

कर्म इन्द्रियों को हठ रोके
करे नित्य विषयी चिन्तन,
वही मूढ़ मति कहलाते हैं
मानव ! सोचो कर मंथन ।

पर जो मन पर किया नियन्त्रण
वह निष्कामी कहलाता,
अनासक्त इन्द्रिय, मन होता
वही श्रेष्ठ जग बन जाता ।

दोहा - इन्द्रिय को हठ रोक कर; करता विषय विचार,
अधम-अधम अति अधम वह; उबरत नहिं संसार ॥ 13 ॥

नहीं कर्म करता जो जग में
वह इन्सान नहीं होता,
कर्म किए बिन इस जीवन में
कभी बिहान नहीं होता ।

मानव का कर्तव्य किये जा
उससे ही होता कल्याण,
पथच्युत हो कर बँध जाओगे
कर्मों के बन्धन में; मान ।

जो स्वार्थी केवल अपने ही
लिए कर्म नित करते हैं,
वे जग में पापी कहलाते
जन्म-जन्म वे मरते हैं ।

अपने खुद में रमण किया जो
अपने में ही तृप्त रहा,
अपने में संतुष्ट सदा जो
वही कर्म से मुक्त रहा ।

उसे कभी आसक्ति कर्म से
या अकर्म से ना होती,
और किसी प्राणी से जग में
कोई आश नहीं होती ।

दोहा - अपने में संतुष्ट जो; और होत जो तृप्त,
वह योगी संसार में; कभी न होये लिप्त ।। 14 ।।

प्रकृति अधीन सभी होते हैं
बचा न कोई सकता है,
अहंकार से मोहित मानव
'मैं करतार' समझता है ।

पर सब गुण ही बरत रहा है
सभी गुणों में; जो जाना,
अनासक्त हो वही, जगत में
स्व स्वरूप को पहचाना ।

सभी कर्म अर्पित कर उसको
जो प्रकाश देता हमको,
द्वेष, कामना, ममता तज कर
अनासक्त हो भज उसको ।

काम, क्रोध ही इस संसृति में
पाप कर्म करवाता है,
वही जीव का घोर शत्रु है
मनु को अधम बनाता है ।

ढक जाता है ज्ञान काम से
जैसे दर्पण रज कण से,
ढक जाती है बुद्धि क्रोध से
जैसे अग्नि ढके धूँ से ।

दोहा - रज कण दर्पण को ढँके, धुंध ढँके ज्यों आग,
काम टँके त्यो ज्ञान को, क्रोध ढँके बुधि भाग ।। 15 ।।

जो जीवन में काम क्रोध का
वेग सहन कर लेता है,
वही सुखी होता है योगी
जग में मुक्त बिचरता है ।

कर्म, अकर्म सभी को ज्ञानी
एक समान समझते हैं,
ज्यों सब इधन अग्नि के लिए
इक समान ही होते हैं ।

ज्ञान-अग्नि संपूर्ण कर्म को
भस्म सर्वथा करती है,
और कर्म बन्धन से मनु को
मुक्त सदा कर देती है ।

कर्म फलों का त्याग जगत में
कर्म-योग कहलाता है,
संयासी फल त्याग जगत में
नित्य मुक्त हो जाता है ।

पर जो माया में फस जाता
असुर वही कहलाता है,
पाप कर्म करने वालों को
ईश्वर नहीं सुहाता है ।

दोहा - जो करता फल त्याग वह, त्यागी संत कहाय,
फल बंधन में जो बँधा, मायावी हो जाय ।। 16 ।।

हर जीवों प्रति दया, धर्म हो
मन में हो उपकार सदा,
मानव तन से परहित में ही
होता रहे उजास सदा,

कर्मों के बल पर ही मानव
कर सकता अपना उद्धार,
कर्मों के नीचे गिरते ही
बह जाता है वह मजधार ।

कर्मों से मानव कहलाता
कर्मों से दानवता जान,
सत कर्मों वाला योगी है
असत कर्म को दानव मान ।

कर्मों से ही राम कहाते
कर्मों से श्रीकृष्ण महान,
कर्मों से बन गये महात्मा
गाँधी का होता गुण-गान ।

जीवन की बगिया खिलती है
कर्मों के बल पर मानो,
सूरज की किरणें चलती हैं
कर्मों का फल पहचानों ।

दोहा- कर्म बिना संसार में; और न कोई धर्म,
राम, कृष्ण भगवान भी, त्याग सके नहिं कर्म ।। 17 ।।

अच्छा बुरा कर्म नहिं होता
मन का भाव मूल होता,
अच्छा भाव सदा सतकर्मी
बुरा सदा त्रिशूल होता ।

सतकर्मी का मन सत होता,
सत्य वचन, सत अनुरागी,
हानि-लाभ से नहीं प्रयोजन
तन-मन के प्रति वैरागी ।

कर्म सिखाता जीवन जीना,
कर्म सिखाता मानवता,
कर्म बताता धर्म एक सब
रखो नहीं मन में ममता ।

कर्म धर्म हो जाता है जब
पर सेवा में रत होता,
कर्म मर्म हो जाता है जब
फल को त्याग हृदय सजता ।

कर्म न चीन्हें संगी-साथी
कर्म न चीन्हें पर-अपना,
कर्मयोग मानव का सबसे
बढ़कर होता है गहना ।

**दोहा- होत न छोटा या बड़ा, नेक बुरा कछु कर्म,
पर हित में जो कर्म हो, वही कहावे धर्म ॥ 18 ॥**

पालन अपने कर्तव्यों का
जो भी मानव करता है,
वही जगत में अमर कहाता
वही ज्योति सम जलता है ।

निर्भय और प्रसन्न वही मन
उसका पग रुकता न कभी,
कर्मशील जो मानव होता
उसका पथ संसार सभी ।

ज्ञान,ज्ञेय अरु परिज्ञाता से
कर्म प्रेरणा मिलती है,
करण कर्म कर्ता से मिल कर
क्रिया संग्रहित होती है ।

यही कर्म संग्रह मानव को
बाँध जगत में रखता है,
जनम-मरण के चक्कर में फँस
जीवन तिल-तिल जलता है ।

कर्म त्याग का अर्थ नहीं है
कर्मों से तुम मुख मोड़ो,
और आलसी हो कर मानव
जीवन से नाता तोड़ो ।

दोहा - नित रत जो कर्तव्य में, वह मावन कहलाय,
आलस, निद्रा में फँसा, बचा नहीं वह हाय ॥ 19 ॥

यह तो मानव धर्म नहीं है
अरु अपने प्रति न्याय नहीं,
मन का ही उद्देश्य पूर्ण हो
यह तो होता राह नहीं ।

मानव जीवन पाकर ऐसा
जो सोचा वह मर जाता,
जीवन उसका शव सा होता
मानव ही नहिं रह जाता ।

उसका जीना मरना जग में
कोई अर्थ नहीं रखता,
जग बंधन में बँध जाता वह
विष समान जीवन जीता ।

पर मानव उसको कहते हैं
जो सत कर्म समझते हैं,
पर सेवा में नित रत रहते
कर्म-योग पथ चलते हैं ।

पर सेवा ही सत्य धर्म है
पर सेवा मानव धन है,
पर सेवा की राह चला जो
धन्य उसी का जीवन है ।

दोहा- पर सेवा में रत रहो, यही मानवी धर्म,
अस राही का हर कदम, होता पावन कर्म ॥ 20 ॥

पर सेवा से बढ़कर जग में
कोई कर्म नहीं होता,
पर सेवा ही ईश्वर पूजा
जीवन सरल सही होता ।

पर सेवा से राम, कृष्ण नित
जग में पूजे जाते हैं,
पर सेवा पथ पर चलने से
बुद्ध महान कहाते हैं ।

पर सेवा से गाँधी को हम
महा-आत्मा कहते हैं,
पर सेवा में रत मीरा को
योगी कह हम भजते हैं ।

जिसने पर सेवा अपनाया
वह बंदा है कहलाया,
मृत्यु न मार सकी है उसको
वही अमर पद को पाया ।

कर्म न कोई 'वाद' हुआ है
मानव की यह नियति रही,
कर्मयोग को जो अपनाया
उसका जीवन धन्य मही ।

दोहा - कर्म बिना नहिं जीव जग, नियति इसे तू जान,
कर्म करे निस्वार्थ जो, धन्य उसे तू मान ॥ 21 ॥

पर सेवा मय कर्म न बाँधे
मानव को इस संसृति में,
हो जाता वह मुक्त जगत से
शाश्वतता होती कृति में ।

हे मानव तू पर सेवी बन
यही राह तेरा अपना,
इसी राह पर चलने का नित
देखा था मुन ने सपना ।

जो भी बँधे कर्म बन्धन में
उसका जीवन नर्क हुआ,
स्वारथ में अंधे जो होते
उनका जीवन अन्त हुआ ।

वे मानव हो कर भी यारों
स्वार्थी, अधम कहाते हैं,
मानव हो कर भी संसृति में
पशु सम ही रह जाते हैं ।

जिसने अपना स्वार्थ दिखाया
वह स्वार्थी कहलाता है,
मानवता खो जाती उसकी
मानव ना रह जाता है ।

दोहा - स्वारथ से बढ़ कर नहीं; जग में अवगुण कोय,
चीन्हे गैर न आपना; जाय मनुजता खोय ॥ 22 ॥

दो धारा होती कर्मों की
अपनी तरफ एक आती,
जग की ओर एक बहती है
कर्मयोग जो कहलाती ।

अपनी ओर वही जो धारा
स्वार्थी वह कहलाती है,
जग की ओर बही जो धारा
प्रभु सेवा बन जाती है ।

अपनी ओर बही जो धारा
नर्क लोक ले जाती है,
जग की ओर बही जो प्रभु से
साक्षात्कार कराती है ।

कर्म-धार जो निज स्वारथ में
बहती है, होती माया,
वही कामना पैदा करती
लोभ, मोह में भरमाया ।

पूर्ण हुआ तो लोभ बढ़ गया
पूर्ण नहीं तो क्रोध हुआ,
क्रोध बढ़ा तो मति बौराई
मति बौराई क्षोभ हुआ ।

दोहा - इक धारा स्वारथ तरफ, एक जगत की ओर,
दो धारा है कर्म की, देख कौन सा तोर ।। 23 ।।

कर्म धार जो जग में बहती
उपकारी कहलाती है,
सेवा ही उसका स्वरूप है
पर हित ओर सुहाती है ।

जब तक मानव नहीं मानता
हर कण-कण में ईश्वर को,
जब तक भेद भरा हो मन में
रखता हो नित अन्तर को ।

तब तक जान नहीं सकता है
जग की धारा का अन्तर,
ज्ञान नहीं हो सकता तब तक
जब तक जग से विषयान्तर ।

जग सेवा में रत हो जाता
वह मानव कहलाता है,
उसे चराचर में ईश्वर का
रूप नजर नित आता है ।

उसके मन में ऊँच नीच का
भेद नहीं रह जाता है,
मूक पेड़ अरु लता कुसुम में
भेद नहीं कर पाता है ।

दोहा - जग धारा कल्यान की; पर हित ओर सुहाय,
जो बहता सँग उस लहर; परमारथ भर जाय ॥ 24 ॥

जड़-चेतन, चर-अचर सभी में
परमेश्वर देखा करता,
सबका सुख-दुख अपना सुख-दुख
ही वह नित अनुभव करता ।

पर सेवा में सदा समर्पित
मन में समता का आश्रय,
चित से कर्म समर्पित प्रभु को
जग में वह दीखे निर्भय ।

कर्म साथ रहता जन्मान्तर
उस पर ही निर्भर योनी,
उसी कर्म के इर्द-गिर्द में
होती है बरबस होनी ।

अपनी ओर वही जो धारा
ममता, मोह भरी होती,
जहाँ लोभ अरु मोह भरे हों
मानवता न वहाँ होती ।

जहाँ विवेक नहीं होता है
वहाँ नहीं कर्तव्य प्रभा,
जहाँ होत नहिं कर्म समर्पण
वहाँ नहीं आलोक विभा ।

दोहा - कर्म बिना फल को दिये; मिटे नहीं संसार,
जन्म-जन्म तक रहत सिर; इक अनजाना भार ॥ 25 ॥

पूर्ण समर्पण ही पूजा है
अहंकार मिट जाता है,
पर सेवा में रत मानव हिय
अंधकार खो जाता है ।

मानव कर्मयोग की महिमा
को इस जग में पहचानो,
कर्मों पर यह जीवन निर्भर
पूर्व-जन्म भी है मानो ।

सुन कर जनता मौन खड़ी थी
अपराधी ज्यों होता है,
मन ही मन अपनी गलती को
मान स्वयं पर रोता है ।

सन्नाटा ऐसा छाया था
मानो आयेगा तूफान,
कर जायेगा स्वच्छ जगत को
जैसा करता नित्य बिहान ।

जनता का मुखिया तब बोला
भूल हुई करता स्वीकार,
कर्मयोग की महिमा से अब
निश्चय होगा साक्षात्कार ।

**दोहा - कर्मयोग की राह में; बाधक माया जान,
जो स्वारथ में फस गया; उसका नहीं बिहान ॥ 26 ॥
मंत्रमुग्ध जनता रही; सुनती गुरु की वाणि,
क्या राजा कंगाल क्या; खड़े सभी धर पाणि ॥ 27 ॥**

नहीं पता था हमको बाबा
कर्मयोग जीवन आधार,
कर्मयोग से ही पाता जग
उस ईश्वर का सच्चा प्यार ।

मुक्ति मिलेगी कर्मयोग से
यह विवेक अब जागा है,
जीवन जीना एक नियति है
यह सारा भ्रम भागा है ।

संसृति कर्मों का गुच्छा है
यह रहस्य हम जान गये,
अधम, अघोरी, पापी मानव
कर्मयोग पहचान गये ।

बहुत कृपा है आप पधारे
धन्य हुआ मेरा जीवन,
कलयुग में ऐसे योगी का
ऋषिवर होता कब दर्शन ।

शायद पूर्व जन्म का कोई
उदय सुकर्म हुआ होगा,
इसीलिए दर्शन हम पाये
ईश प्रसन्न हुआ होगा ।

दोहा - ईश कृपा बिन जगत में, मिले न साधू संत,
जन्म-जन्म का कर्मफल, दर्शन होत महंत ॥ 28 ॥

कह कर मुखिया शान्त हुआ जब
शिष्यों का मुख चमक रहा,
पर आँखों में स्नेह अश्रु था
हिय आह्लादित दमक रहा ।

आनन्दित रोमांचित तन था
वाणी गदगद थी उनकी,
मन ही मन गुरु के चरणों में
झुकी हुई आत्मा उनकी ।

छंद - जब मानव जन्म लिया जग में तब कर्म को संग सभाल के लाया,
तीन गुणों से सुशोभित कर्म कभी इससे छुटकार न पाया,
धार बही इक स्वारथ में, परमारथ में इक खूब बहाया,
बन्धन में जो पड़ा वह गया, पर मुक्त हुआ वह संत कहाया ॥ 29 ॥

छंद - कर्म किये बिन कोई नहीं जग, हो वह संत या हो परिवारी,
संत किये पर मुक्त रहें; नहिं होत कभी फल की असवारी,
और के कर्म के संग रहे फल की इक चाह भयंकर भारी,
चन्द्र कहे जो विमुक्त रहे; उसका यह जीवन धन्य मुरारी ॥ 30 ॥

।। षष्ठ सर्ग ।।

ईश्वर एक

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

षष्ट सर्ग

ईश्वर एक

जन्म दिया जिसने मुन को उसकी करुणा लख विश्वमयी है,
बुद्धि, विवेक व ज्ञान दिया अरु प्रेम दिया जो उदारमयी है,
स्थावर जंगम जो भी दिया इस संसृति में सब ब्रह्ममयी है,
अंश दिया हिय में उसने जो निरन्तर अन्दर ज्योतिमयी है ।

आँख व घ्राण व कान व जीभ, त्वचा जो दिया उसकी करुणा है,
हाथ व पैर, उपस्थ, गुदा अरु पेट दिया उसकी वरुणा है,
वायु व अग्नि, आकाश, धरा अरु नीर दिया उसकी महिमा है,
मात-पिता, गुरु, बंधु, सखा अरु अन्न दिया उसकी गरिमा है ।

चन्द्र दिया अरु सूर्य दिया दिन-रात दिया सबको समता से,
प्रात दिया अरु शाम दिया, रक्त-मांस दिया हमको ममता से,
संसृति में नहिं भेद किया अरु तेज दिया अपनी क्षमता से,
चन्द्र कहे वह ईश लिया निज अंक में संसृति को नमता से ।

जब एक कृपा, करुणा, ममता, समता उसकी इस संसृति में,
जब एक दया, नमता, महिमा बरसी उसकी इस संसृति में,
जब एकहि आत्म बसा सबके हिय, हो जड़ चेतन संसृति में,
तब चन्द्र कहे नहिं भेद कहीं; कर प्रेम सभी इस संसृति में ।

ईश्वर अल्ला एक है; देख हृदय में झाँक,
प्रातः-संध्या, सूर्य-शशि, रात-दिवस से आँक ।

हममें तुममें सभी में; आत्म-ज्योति है एक,
नश्वर तन के फेर में; क्यों बट रहे अनेक ।

तेरा कुछ भी है नहीं; क्यों करते अभिमान,
तन के लिए न एक दिन; रह जाये परिधान ।

सब कुछ उसका है यहाँ; तेरा क्या है बोल,
तन भी तेरा है नहीं; देख आत्म तू खोल ।

एक गगन, इक धरा अरु; एक अग्नि, जल एक,
एक पवन, फिर क्यों जगत; मानत जीव अनेक ।

जो जागा जाना वही, अरु सोया नहिं ज्ञान,
हर हिय में ईश्वर बसा, है कण-कण विद्मान ।

वंदना कर प्रेम से, आशीष गुरु का सर लिए,
गगन से आकाश तक हम एक हैं, निज कर लिए,
चल दिये गुरु की कृपा से उस डगर को खोजने,
है जहाँ नित नित्य ईश्वर, उस जगह को पूजने ।

जो रचा इस श्रृष्टि को, जो नित्य कण-कण में बसा,
जो हुआ आनन्द से परिपूर्ण विह्वल नित हँसा,
जो किया ना भेद संसृति के किसी कणमें कभी,
जो लिया अपने हृदय में भर चराचर को सभी ।

वह हमारा ईश ही इस श्रृष्टि को नित पालता,
वह बसा है जीव में, वह ही बसा है मृत-चिता,
वही सबसे दूर है अरु वही सबसे पास है,
वही मालिक है जगत का वही सबका दास है ।

उसी की अनुपम कृपा है हर हमारी साँस में,
यह विराट अखिल जगत है नित्य उसकी आस में,
दुख व सुख को देखता जो सम वही भगवान है,
स्वयं से जो स्वयं में संतुष्ट जगत महान है ।

विश्व में करुणा दया के रूप में दीखे वही,
दान, तप अरु यज्ञ में परिपूर्ण हो प्रगटे वही,
अश्रुओं से पूर्ण जग को सान्त्वना देता वही,
नित निरन्तर जागता है और सोता है वही ।

दोहा - यह जग उसका रूप है; कर कण-कण से प्रेम,
बिना प्रेम प्रगटे नहीं; अस दृढ़ उसका नेम ॥ 1 ॥

वह जगत को कर्म से अरु धर्म से नित पालता,
ज्ञान,करुणा,भक्ति पथ को नित सफल वह मानता,
चहुँ दिशा में एक सा वह दे रहा उज्ज्वल किरण,
हर हृदय में नित्य निर्मल सत्य का ही स्मरण ।

ईश के मुख से निकलते शब्द को सुनते सभी,
उसी के छवि को निरन्तर देखते हैं हम सभी,
लो नहीं उसकी परीक्षा वही परम उदार है,
करो उसकी नित्य सेवा यही ईश प्रसाद है ।

शोक ग्रसितों को वही ढाढ़स दिलाता है यहाँ,
वही भूखे को दिया है, तृप्त करता है जहाँ,
वह कृपालु प्रदान करता स्वर्ग का भी दान क्षन,
वह मनुज पर नम्र इतना भर दिया है ज्योति मन ।

वह दयालू है जगत पर दया नित उसकी रही,
सत्य निर्मल आत्मा पर कृपा उसकी नित रही,
प्रेम जो करता जगत से ईश का प्यारा वही,
दुःख सहता धर्म पथ पर, नित्य दुख हरता वही ।

खंड खंडों में न बाँटो ईश की अनुपम छटा,
कभी सुन्दरता न दीखे आप में जो है बटा,
इस जगत का एक कण भी ईश का वरदान है,
श्रृष्टि का हर एक कण मिल बना जगत महान है ।

दोहा - कण-कण में ईश्वर बसा; करुणा कृपा अपार,
सुख-दुख वह सहता यहाँ; ले जग में अवतार ॥ 2 ॥

ये मनुज, ये पेड़-पौधे, यह धरा, यह गगन भी,
यह चराचर विश्व उसका सुभग, सुन्दर है सभी,
वही जग का रूप है अरु जगत उसका रूप है,
कौन है जो बोलता यह अखिल विश्व कुरूप है ।

ईश ही माता-पिता; जग उसी से पैदा हुआ,
इसलिए तू श्रृष्टि को ही प्रेम कर उसकी दुआ,
कर रहा जो प्रेम जग से ईश की सन्तान है,
जानता है वही जग को, वही श्रृष्टि महान है ।

जो न करता प्रेम जग से वह नहीं मानव यहाँ,
जानता है नहीं प्रभु को अरु न जाना यह जहाँ,
ईश ही है प्रेम अरु है प्रेम ही ईश्वरमयी,
ईश हमको प्यार करता है वही सबका जयी ।

उसी की अनुपम कृपा से सृजन संसृति का हुआ,
उसी ने पैदा किया अरु उसी ने दी है दुआ,
वही करुणा हिय लिए करता हमें नित प्यार है,
अरु हमारे पाप को धो कर किया अभिसार है ।

किया उसने प्यार तो हमको भी करना चाहिए,
दिया उसने जिन्दगी यह याद रखना चाहिए,
ईश को देखा न हमने पर कृपा है दीखती,
सरस सुन्दर प्रीति उसकी रात-दिन है रीसती ।

दोहा - ईश बिना संसार नहिं, प्रेम बिना नहिं ईश,
यह रहस्य जाने वही, हो सत संत मुनीष ।। 3 ।।

वही जग के चर अचर को आत्मा अपनी दिया,
इस तरह है वही हममें और हम उसकी क्रिया,
हम उसी में हैं विराजे जो भी इतना जानता,
वही ईश्वर अरु जगत को सत्य में पहचानता ।

है प्रथम अरु वही अंतिम जीव इतना जान ले,
उसी की अनुपम कृपा से पवन बहता मान ले,
उसी के श्रम-श्वेद-कण से भरा प्रखर समुद्र है,
उसी के ही तेज से नित सूर्य होता रुद्र है ।

उसी से दिन-रात का नित चक्र चलता जगत में,
उसी से यह अन्न उपजा श्रृष्टि जिसके शरण में,
यह धरा उसके चरण में है समर्पित भक्ति से,
यह अखिल ब्रह्मांड निर्मित देख उसकी शक्ति से ।

वही यज्ञ, वही सधा है वही औषधि, मंत्र,घृत,
वही कर्ता वहि क्रिया है, क्रतु वही है जन्म-मृत,
वही चारो वेद पावन, जानना, ओंकार है,
वही गीता में कहा,वह ही बसा संसार है ।

वही गति,भर्ता,पितामह, वही साक्षी सुहृद है,
वही आश्रय,वही माता, वही पिता प्रधान है,
प्रलय वह उत्पत्ति वह अविनाश बीज महान है,
वही विष अमृत वही जल सूर्य जगत विधान है ।

दोहा - अमृत-विष में वह कभी, करता भेद न भाव,
चर अरु अचर समान दोउ,समता सकल प्रभाव ॥ 4 ॥

वही वर्षा, वही गर्मी, सत, असत, उसने कहा,
वही तो संपूर्ण कर्मों का गोसाई नित रहा,
प्रिय नहीं कोई जगत में और अप्रिय भी नहीं,
वह निरन्तर वास करता प्राणियों में हर कहीं ।

इस धरा पर नित उसी का परम पावन स्नेह है,
अरु वही आकाश में भी भरा नित्य सनेह है,
वही देता बुद्धि हमको, वही देता ज्ञान है,
वह विवेक प्रदान करता कृपा देख महान है ।

धन्य है वह जो दिया यह आँख अपनी श्रृंखला,
कान,जिह्वा,नाक और त्वचा दिया है मेखला,
हाथ पैर गुदा उपस्थ उदर दिया उसकी कृपा,
अन्न उपजाऊ धरा दी, शक्ति दे निश-दिन तपा ।

वही भय से रहित करता, भयातीत वही सदा,
कामनाओं से विरत कर दे परम पावन प्रभा,
पैर को वह ही बचाता पत्थरों से मान लो,
हर परीक्षा में उसी का कर मनुज तुम थाम लो ।

उसी की सेवा करो नित वही सबका नाथ है,
उसी की अनुपम कृपा से हर मनुष्य सनाथ है,
वही रोटी को दिया है वही पानी दे रहा,
वही मन की भावना में सान्त्वना भी भर रहा ।

दोहा - नाथों का भी नाथ वह, बाँकों में भी बाँक,
निर्मल कर मन, हृदय तू, निज़ स्वरूप में झाँक ।। 5 ।।

हर किसी में आत्मा बन प्रभु निरन्तर साथ है,
वह पिलाता दूध हमको अरु लगाता आश है,
नित हमारे ही डगर पर चल सदा कहता रहा,
प्राणियों तुम हो हमारे और मैं तेरा सदा ।

प्रिय दयालु वही तुम्हारा, क्षमा सागर है वही,
किसी के विपरीत निर्णय वह कभी देता नहीं,
तू भले ही वैर कर पर वह भलाई ही करे,
रिक्त तुम करते जगत में वह निरन्तर ही भरे ।

सर्व मंगल भावना से कार्य हर जग में करे,
छीन लेते हो कफन तुम पर वही तुमको तरे,
माँगते तुम जो कभी हो वही देता ईश वर,
तुम्हें प्रतिदिन वह सवारे तो खड़े हो बन-सवर ।

दूसरों से चाहते हो प्यार तू अपने लिए,
वही वह व्यवहार करता साथ नित तेरे लिए,
अरु बचाता है वही संसार को करता क्षमा,
क्योंकि जग का जीव होता है उसी की आत्मा ।

मनोबल से हृदय से तू और अपनी भक्ति से,
बुद्धि से तू प्यार कर नित उस प्रभु को शक्ति से,
कर हमेशा प्यार सबको मन तुम्हारा शुद्ध हो,
प्यार का तेरा खजाना अस लबालब बुद्ध हो ।

दोहा - निश दिन तेरे साथ वह; मानव तू पहचान,
जन्म-मृत्यु के बीच में, पल भर नहीं विरान ॥ 6 ॥

सदा उसके पास रहती है सरलता, मधुरता,
कौन उसके भुजबलों के सामने है ठहरता,
विश्व सारा है उसी के सामने पासंग सा,
ज्यों उदधि के सामने हो ओस कण तिल अंश सा ।

वह दया-सागर हमारा अरु कृपा-आकाश है,
प्यार इतना वह करे ज्यों भरी ममता मात है,
श्रृष्टि की रक्षा करे वह यही उसकी ज्योति है,
सभी में वह है अनाशी शुद्ध आत्मा भक्ति है ।

ले रहा हर क्षण परीक्षा यही गुरु का काम है,
दे रहा हर जीव को वह अति सरलतम ज्ञान है,
वही गिरते को संभाले शक्ति दाता जगत का,
दोषियों का वही ईश्वर अरु वही निर्दोष का ।

वही नित सबके हृदय में मन्द-मन्द पुकारता,
वही कानों में मधुर स्वर भरे नित्य उदारता,
वही जल देता धरा को और जग को सींचता,
शान्ति देता है दुखी को, दीन को नित प्रीयता ।

मृदुलता से दीन दुखियों का वही रक्षा करे,
वह सबल आशा हमारी न्याय दे रक्षा करे,
धन्य है वह जो मनुज पर छोड़ देता कर्म हर,
झुका सकता कौन उसको जो चला है धर्म धर ।

दोहा - **ज्योति वही संसार का, देता गुरु सम ज्ञान,**
मन्द-मन्द मुसकान दे, और हृदय में प्रान ।। 7 ।।

वही सबको मारता अरु पालता भी वही है,
आपदाओं में सदा सहयोग देता वही है,
वही जगत विनाश अरु उत्पत्ति करता वही है,
अभय देता वही है अरु ताड़ता भी वही है ।

जो रहे निर्दोष उसका त्याग वह नाहीं करे,
अरु अधर्मी राह को वह नित्य काँटों से भरे,
वह पहाड़ों को तनिक में रौंध सकता धरा पर,
और पृथ्वी को गगन में फेंक सकता पलक भर ।

सूर्य भी उसके बिना ना ताप दे सकता कभी,
चाँद-शीतलता तनिक में छीन सकता है अभी,
वह अकेला ही उदधि को सोख सकता मूल में,
और सारे विश्व को ही मिला सकता धूल में ।

नित्य रहता है हमारे पास ना पहचानते,
जब कभी झकझोर देता तभी तो हम जागते,
ले गया यदि वह कभी तो रोक सकता कौन है,
वही है ईश्वर हमारा सर्वव्यापी मौन है ।

न्याय उसके हाथ में है, न्याय ही वह चाहता,
जीव - ईश्वर बीच में ना और कोई झाँकता,
वही मिट्टी से बनाता अरु मिटाता जगत को,
मांस, हड्डी से सजांता विश्व के हर चित्त को ।

दोहा - क्षण भर में संसार को; भूतल में दे फेक,
वह मेरा ईश्वर सदा; रहे जगत में एक ॥ 8 ॥

शब्द संसृति का वही है अर्थ वह ही जगत का,
वही उद्धारक हमारा, वही होता भगत का,
आग में जिस तरह भूसा भस्म हो जाता मनुज,
उस तरह उसकी कृपा से काम जल जाता अनुज ।

वह जगत अपराध को भी देख कर अनदेख है,
क्रोध के बदले दया ही नित्य उसमें शेष है,
वह सभी अपराध तेरे उदधि में नित फेकता,
प्रेम की बौछार अविरल श्रृष्टि पर है बरसता ।

वह न कोई कष्ट देता ना कभी आराम ही,
वह सदा ही मुक्त करता, दासताँ नाकाम ही,
समय आने पर वही इक पथ प्रदर्शक भेजता,
अरु असीमित राज का कुछ दृष्य उससे खोलता ।

हर नियम पालन उसी का धर्म कहलाता यहाँ,
जो नियम को नहीं माने वह अधर्मी है जहाँ,
जो किया स्वीकार अपना पाप उसके सामने,
कर दिया वह क्षमा उसको; चल पड़ा है थामने ।

बह रहा है वह निरन्तर शुद्ध जल सा जगत में,
रुक गया तो सूख जाता जगत होता विपति में,
वही है सामर्थ्य अरु विजयी उसी का नाम है,
मृत्यु को आनन्दमय जो कर सके वह राम है ।

दोहा - ज्यूँ भूसा क्षण में जले; मिलत अग्नि के संग,
त्यों ईश्वर की कृपा से ; काम, क्रोध हो भंग ॥ 9 ॥

मानवों के हर गुनाहों को मिटा सकता वहीं
राग- द्वेषों को मिटा कर शान्ति दे सकता वहीं,
क्रोध के बदले दया का भाव भर सकता वही,
सत्यता की राह पर नित ही चल सकता वही ।

तुम पुकारो तो कहीं से दौड़ आयेगा वही,
धर्मियों में धर्म धारण शक्ति देता है वही,
वही हर बेकार की सब चाह को माटी करे,
वहीं ऊँचे पर्वतों को रौंध कर घाटी करे ।

जिस तरह जल से समुन्दर भरा है इस धरा पर,
जिस तरह आकाश में है नित्य छाया प्रभाकर,
उस तरह महिमा प्रभू की विश्व के कण-कण भरा,
वहीं हर मन में बसा है वही मंदिर में धरा ।

तेज फैला है उसी का सत प्रकाश स्वरूप में,
भेद करता है न हिन्दू और मुसलिम रूप में,
भरा है विश्वास उसमें और श्रद्धा खास है,
अंक में हर जीव हो, सामर्थ उसके पास है ।

वही गति है, वही मति है, वही रति, यति भी वही,
वह रुका तो चाँद सूरज रह नहीं पाये कहीं,
ज्ञान की गंगा बहाता साथ सब ले चल रहा,
प्रेम का संगीत गाता रात दिन वह जग रहा ।

दोहा - उसकी शक्ति अनंत है, निगल सके रवि चाँद,
प्रेम ज्ञान से भर सके, हर कण-कण की माँद ॥ 10 ॥

वह अनामी चाह कर भी कुछ न चाहे विश्व से,
फूल की कलियाँ तुम्हें दे, नित महकता नेह से,
वही बल है, वही छल है, वही कल अरु आज है,
वही संध्या, सुबह होता, वही दिन अरु रात है ।

वह अथाह समुद्र से नित जल लिए अम्बर छिपा,
वही बादल रूप में हो कर रहा वर्षा कृपा,
वही अन्तःकरण में अरु वही बाहर दीखता,
वह बिना फल के निरन्तर कार्यरत सबका पिता ।

वही नभ को साफ करता नित्य संसृति के लिए,
वही जग को अग्नि देता नित्य जीने के लिए,
बिना उसके पवन भी ना चल सके क्षण भी कहीं,
बूँद पानी भी न मिल सकता बिना उसके मही ।

जीव के ऊपर उसी का प्रेम दीपक चमकता,
ज्योति में जीता उसी के ज्योति में ही महकता,
वही वाणी मौन रखता और वह ही बोलता,
वह बिछुड़ता और मिलता वही संसृति सोधता ।

आँख की वह रोशनी है, पैर की ताकत वही,
वह दरिद्रों का पिता है, मौत दुष्टों का वही,
जड़ों में जल श्रोत सा वह, डालियों पर ओस सा,
वादियों में रस वही है, खाइयों में श्रोत सा ।

दोहा - करुणा से कलियाँ खिली; महके कृपा अपार,
झर-झर झरना नित झरे; बहे सरस अंबार ॥ 11 ॥

वही ऋतुओं में बसंती रूप सा मुसकान है,
अंग में वह आँख होता और हिय में वास है,
हवा में मलया अनिल सा, पत्थरों में हीर है,
पक्षियों में बाँझ वह है, जानवर में सिंह है ।

वही सत है, आत्मा है प्राणधारा है वही,
वही मिट्टी, वही जल है, गगन अरु तारा वही,
वही पावन शुद्ध निर्मल प्रेम सा प्यारा वही,
वही जागृति, स्वप्न, मुर्छा है प्रभा सारा वही ।

जीभ में वह स्वाद जैसा, कान में प्रिय मधुर स्वर,
कष्ट में आराम सा है, भरा दुख में स्वयं वर,
वह गरीबी अरु अमीरी में अभेद सदय रहा,
वह भविष्य व भूत है नित वर्तमान वही बहा ।

बने को वह ही बिगाड़े, महल को कर खंडहर,
और बिगड़े को बनाये पुनः वह निर्माण कर,
वही हल हलवाह वह है वही बोता बीज भी,
वही अंकुर, वही पौधा; वही है फल-फूल भी ।

वह कटीली झाड़ियों में, वृक्ष और कुसुम लता,
जंगली हो, पालतू हो; है सभी का वह पिता,
नारि-नर, पशु और पक्षी, कीट और पतंग में,
वही ईश्वर है प्रतिष्ठित चर-अचर इस विश्व में ।

दोहा - सत-चित अरु आनन्द मय, लिया हृदय में जीव,
प्रकृति नचावे ना नचे, ऐसा निर्मल शीव ॥ 12 ॥

कर्म वह है और फल भी, आचरण व्यवहार भी,
ध्यान वह अरु ज्ञान भी है,सत्व, रज, तम गुण सभी
निबल वह है औ सबल भी, बैर वह बैरी वही,
न्याय वह अन्याय भी है, साँच औ झूठा वही ।

वही कृति है औ अकृति भी आदि वह है अन्त भी,
मौन वह बाचाल वह है दोष अरु निर्दोष भी,
वह छुपा है अरु उजागर इस जहाँ में नित वही,
देखना, अनदेखना है बाह्य भीतर भी वही ।

मीठ वह कडुवा वही है शीत गर्मी है वही,
जीत भी वह हार भी है, कर्म कर्मी भी वही,
लाभ उसको नहीं तेरे सत्य कर्मों से कभी,
हानि उसको भी नहीं है नित कुकर्मों से कभी ।

वही उत्तर प्रश्न वह है, वही प्रार्थी प्रार्थ है,
श्रृष्टि और विनाश का कारण वही नित साथ है,
मार्ग वह है, लक्ष्य वह है पहुँचता चलता वही,
है सभी आधीन उसके और सबके है वही ।

वही बन्धन मुक्ति भी वह, वही राग-विराग है,
वही बालक,वृद्ध, यौवन वह किशोर, युवान है,
वही भोजन, वही भक्षक, अरु वही उपवास है,
वही भूतल, वही जलधर वही शान्ति निवास है ।

दोहा - बालक,वृद्ध, युवान में, वह ही बैठा एक,
हिन्दू, मुसलिम हो कोई, एक उसी की टेक ॥ 13 ॥

मिल रहा है वही पत्नी और पति के रूप में,
रज वही है, वीर्य भी वह हाड़ माँस स्वरूप में,
दौड़ता है पिता बन कर पुत्र, पुत्री के लिए,
प्रेम करता है वही प्रेमी बना सबके लिए ।

भोर उसने ही दिया है और ऊषा लालिमा,
विश्व के हर छोर से वह ही मिटाता कालिमा,
शत्रु का संघार वह है, मित्र का प्यारा वही,
वही कण-कण का उजाला और अधियारा वही ।

कड़क कर बरसात बिजली वह जगाता जगत को,
शक्ति औ सामर्थ की सीमा बताता जगत को,
वही है स्थान जिससे निकलती है बिजलियाँ,
पवन का उद्गम वही है, वही तीतर, तितलियाँ ।

वही बादल वही वर्षा और हरियाली वही,
ओस की हर बूँद वह है बर्फ़ की प्याली वही,
गर्भ वह अरु गर्भ में वह, गर्भ के बाहर वही,
लेत वह दाता वही स्थिर वही स्थिति वही ।

गूँथ डाला तारिकाओं को गगन में है वही,
सप्तऋषि का पथ पदर्शक बना है नभ में वही,
सौर मंडल नियम वह ही है रचा निज हाथ से,
बादलों औ बिजलियों को नित सजाता बात से ।

दोहा - भू से लेकर नभ तलक, ईश बिना नहिं कोय,
हो चाहे वह जीव या हो निर्जीव सजोय ॥ 14 ॥

प्रसव क्षण में पीर भी, आनन्द भी वह ही रहे,
मात के मातृत्व से नित दूध बन कर वह बहे,
वही सहता है अंधेरे में प्रसव के काल को,
वहीं ममता, वही समता, देखता निज हाल को ।

अस्त्र वह है, शस्त्र वह है और वह ही युद्ध है,
वही हाथी, वही घोड़ा, शान्ति वह ही क्रुद्ध है,
हिंन-हिनाता वही रण में और वह ललकारता,
काम भी, परिणाम भी वह जीत, वह ही हारता ।

वही हैं निर्माण वह ही ध्वंस संसृति के लिए,
वही बनता, अरु बिगड़ता जीव जीवन के लिए,
वही आँधी अरु बवंडर वही आफ़त अरु विपत,
वही बाधा, वही साधा, वही जीवन का सपत ।

वही योगी वही भोगी और साधक भी वही,
लिप्त माया में करे, निर्लिप्त भी करता वही,
वही रति है वही गति है और मायामय वही,
वही है सबकी कृपा अरु अकृपा सबका वही ।

उसे उसके त्रीगुणों से बाँधना बेकार है,
वह गुणों के पिता का भी पिता अरु ओंकार है,
शुद्ध है, अति सूक्ष्म है वह सूक्ष्मतर अति सूक्ष्मतम,
वह हिमालय सा बड़ा है और राई से अधम ।

दोहा - त्रिगुणी प्रकृति न बाँधती, ऐसा पिता हमार,
शूक्ष्म शूक्ष्मतर शूक्ष्मतम; अति पावन ओंकार ।। 15 ।।

कौन टिक सकता उसी के सामने है एक पल,
कौन साहस जुटा सकता पूछने का एक फल,
आग की लपटें व बिजली बन निरन्तर वह जरे,
वही आँखों में प्रभा से पुतलियों को नित भरे ।

उसी से मनु साँस लेता उसी से धड़कन चली,
वही है पाषाण जैसा वही कोमल सी कली,
नीर को वह ही उबाले अरु रखे वह होठ में,
वह रहे निश-दिन हमारे सामने अरु ओट में ।

वही चिन्तन, वही चिन्ता, वह अचल, चल नित्य है,
वही चंचल है अचंचल वही जीवन मुक्त है,
वही संकट अरु निवारक, वह दया सागर धरा,
वही कारण अरु अकारण, न्याय से वह नित भरा ।

वही है निर्दोष, दोषी, थाह और अथाह है,
वह गुणी है निर्गुणी है गुणातीत प्रवाह है,
उल्लषित हो कर वही आनन्द में नित नाचता,
सत्य के अतिरिक्त स्तुति - गान वह ना चाहता ।

कभी हाथी को नदी में बहा देता है वही,
और धारा में मछलियों को बचाता है वही,
वही आर्द्र पुकार पर दौड़े चला आता महीं,
छोड़ कर तुमको कहीं वह, कभी भी जाता नहीं ।

दोहा - हे मनु उसके पुत्र तुम, पिता वही संसार,
छोड़ कभी जाता नहीं, उसकी कृपा अपार ॥ 16 ॥

पद-दलित का वही आश्रय, दीन का है शान्ति थल,
है वही कमजोर का संसार में आसक्ति, बल,
दीन दुखियों का वही आशा-किरण है, जान लो,
वह कभी भुला न, भूलेगा जगत को मान लो ।

राज्य उसका नित बना रहता हमारे हृदय में,
जब पुकारो वह चला आता सहर्षित प्रलय में,
न्याय ही है दंड अरु निष्पक्षता ही ध्वजा है,
वह परम आनन्दमय नित आत्म में ही सजा है ।

हम शरण वह शरण दाता आँख हम वह ज्योति है,
वही जागृति, वही निद्रा, वही सुप्ता-शक्ति है,
वही दुख सागर जगत में, वही सुख आनन्द है,
वही है आराधना, आराध्य अरु स्वच्छन्द है ।

नभ उसी ईश्वरी महिमा को बखानें रात-दिन,
दिखता सामर्थ उसकी गगन में नक्षत्र गिन,
दिवस संध्या भी सुनाये नित्य उसकी प्रखरता,
शाम, ऊषा भी बताये उसी की कमनीयता ।

नहीं कोई शब्द, स्वर वाणी निकलती है कहीं,
गूँजती फिर भी उसी आवाज की प्रति ध्वनि मही,
वही है विश्वास सच्चा और हृदयंगम वही
सरल सीधा मधुर कोमल शुद्ध निर्मल है वही ।

दोहा - ईश्वर बिना न श्रृष्टि है, कर विचार तू देख,
निश-दिन बरसे प्रभु कृपा, हो पंडित या शेख ।। 17 ।।

हर्ष वह है और हर्षी, वही प्रेरक प्रेरणा,
अति प्रतापी स्वर उसी की चर अचर में घोषणा,
स्वास्थ्य देता निर्बलों को, निडर करता शत्रु से,
प्राण देता जिन्दगी को, गीत लेता मित्र से ।

सौप देता जो उसी की आत्मा उसके लिए,
ज्ञान जाता है वही, वह एक है सबके लिए,
वही उद्धारक व साधक, त्याग और ग्रहण वही,
वही मिथ्याचारियों को दंड देता है मही ।

वही श्रद्धा का निवासी वही आदर रूप है,
वह त्रिकाली नेत्र वाला और आत्म स्वरूप है,
आयु वह है, मृत्यु भी वह और वह ही है अगम,
उसी के बल का भरोसा, उसीका है एक दम ।

इसलिए इस विश्व को ईश्वर समझ कर पूजिए,
जीव कोई हो, कहीं का मान उसको दीजिए,
जीभ को उसकी बुराई तुम न करने दो कभी,
होठ को तू कपट पूर्वक खोलने ना दो कभी ।

वही है आत्मीय सबका, भेद उसमें है नहीं,
व्यर्थ ही भ्रम है जगत में ईश अल्ला है कहीं,
वह हमारे पास जैसे माँ हमारे पास है.
जब कभी ठोकर लगी तो वह हमारा साँस है ।

दोहा - दूर नहीं रहता कभी, ऐसा करे कमाल,
गिरते मानव को सदा, लेता वही सभाल ॥ 18 ॥

वही है उद्धार करता हर विपति से श्रृष्टि का,
दया की बरसात करना गुण उसी की दृष्टि का,
जिस हृदय में ईश के प्रति भरी है श्रद्धा नहीं,
वह सदा ही स्वयं को धोखा दिया, जिन्दा नहीं ।

है असीमित सत्य उसका नित्य ही वर्षा करे,
जीव को नित ही जगत में शरण दे, हरषा करे,
वही उत्तम व्यंजनों से तृप्त करता जगत को,
वही सुख की नींद देता अरु जगाता भगत को ।

वह न धर्मी अरु कुकर्मी से कभी ईर्ष्या करे,
पर सभी षडयंत्र को वह दूर से देखा करे,
धर्म को हिय में उगाता सुबह ऊषा की तरह,
अरु जगाता प्रेम को नित प्रभा किरणों की तरह ।

उसे है मालूम कल क्या घटित होगा श्रृष्टि में,
कौन बिगड़ेगा, बनेगा लिखा उसकी दृष्टि में,
वही क्षणभंगुर जगत को नित बनाता, मेटता,
जीव का हर साँस वह ही लीलता अरु खीचता ।

वही जीवन का उजाला अरु अंधेरा भी वही,
वही संध्या वही प्रातः रात्रि-दिन भी है वही,
सिवा उसके श्रृष्टि में जड़ और चेतन कुछ नहीं,
दीखता जो सब वही है, ना दिखा वह भी वही ।

दोहा- दीखे जो संसार में, ना दीखे वह जान,
सब उस ईश्वर की कृपा, मानव तू पहचान ।। 19 ।।

पत्थरों के लिए पत्थर मोम को वह मोम का,
साँस वह ही जीव का है प्राण वह हर रोम का,
वही सबका ढाल है वह ही कवच इस श्रृष्टि का,
वह न स्तुति का पियासा औ न कटुमय दृष्टि का ।

वही जीवन की कला है, वही जीवन की प्रभा,
वही है माधूर्य, शीतल, नित उजासी की विभा,
वह समय है अरु प्रतीक्षा भी वही अपना करें,
वह बुलाता और सुनता भी वही जीवन तरे ।

वही दल-दल में गिराये अरु निकाले नित जयी,
वही है दृढ़ भाव वह ही शान्ति जीवन की नई,
धन्य हैं वे लोग करते नित भरोसा उसी पर,
वही ज्ञानी, वही ध्यानी, ध्यान जिसका उसी पर ।

जा उसी प्रभु के शरण में एक अपना है वही,
दीखता है हर जगह वह आदि से अन्तिम वही,
पर तुम्हारी आत्मा को नित तड़पनी चाहिए
मीन जल बिन तड़पती है, वह तड़प हिय लाइये ।

आत्मा है अंश उसका उसी का प्यासा सदा,
आँख से आँसू गिरे तो ईश पर ही सर्वदा,
याद आये तो निरन्तर ईश की ही याद हो
भाव विह्वल हो हृदय तो ईश का ही वास हो ।

दोहा - जल बिन तड़पत मीन ज्यूं, तड़पत प्रभु बिन जीव,
तब प्रगटे प्रभु आत्म में; ज्यू माखन में धीव ॥ 20 ॥

वही हिन्दू वही मुसलिम सिख इसाई एकदिल,
है कुरान , सबद व गीता वही गाता बाइबिल,
सभी में है एक रस जिससे रसीला जगत है,
सभी में उस ब्रह्म की नित सत्य सत्ता निहित है ।

जड़ वही चेतन वही है, सभी उसके रूप हैं,
दीखते जो भेद वे सब दृष्टि के अनुरूप हैं,
स्वर्ण आभूषण अलग पर स्वर्ण सब में एक है,
लहर ऊपर अलग पर सागर अतल में एक है ।

ज़ंग लग जाये अगर तो लौह दिखता है कहीं,
गुणों से है ढंका मानव सत्य दिखता है नहीं,
भेद तो है प्रकृति में, अनभेद वह ही ब्रह्म है,
भेद माया जाल है पर मुक्ति तो आनन्द है ।

धर्म से अनजान हो, किस धर्म में तू बंध गये,
सम्प्रदायी भेद में बँध कर तुम्हीं क्यों ढह गये,
ऊँच-नीचों का विभाजन, वर्ग का मतभेद क्यों ?
क्यों बंटे हो धनी-निर्धन आप में है खेद क्यों ?

खीच डाली है लकीरें सरल जीवन शान्ति में,
क्यों पड़े हो भेद भावों में लगे हो भ्रान्ति में,
पेड़ के भीतर वही बैठा हुआ ब्रह्मत्व है,
कौन हिन्दू, कौन मुसलिम एक सबमें तत्व है।

दोहा - गीता, वेद, कुरान अरु, सबद बाइबिल जान,
करते सब मिल कर जगत, एक ईश गुणगान ।। 21 ।।

जानना तू चाहता सत, तो अलग हो आप से,
सब दिखेंगे एक जैसा तौल ले तू माप से,
हर जगह ईश्वर दिखेगा झाँक सबकी आँख में,
भेद कर सकता कभी तू क्या किसी की साँस में।

विश्व कण-कण रूप उसका, सूर्य वन्दना नित करे,
चन्द्रमा निशि में उसी प्रभु पर अमिय वर्षा करे,
ढके हो अज्ञानता से वह खुदा कैसे दिखे,
नित तुम्हारे रूप में खुद ही खुदा संसृति लिखे।

ईश ही है, नित्य आश्रय, मार्गदर्शक जगत का,
जन्म दाता भी वही है, मृत्यु भी है जगत का,
बील में जो कीट रहते साँस भी है उसी का,
आँख से अंधे जनों की ज्योति है वह नित्य का।

उसी से नित शान्ति मिलती वही उद्धारक रहा,
वही देता बल हृदय में रक्त संचारक रहा,
श्रृष्टि को उसने बसाया वही संहारक रहा,
फूल से उसने सजाया, अरु प्रकाशक भी रहा ।

कहो चाहे ईश चाहे खुदा दोनो एक हैं,
शब्द का है फेर लेकिन अर्थ दोनों एक हैं,
आदि ऋषियों ने यहीं पर ईश उच्चारण किया,
अरु कहीं पर उस सचेतन को खुदा कहकर लिया ।

दोहा - नाम भेद में जो पड़ा, उलझ मरें वह जान,
ईश्वर अल्ला एक है, कहलाये भगवान ।। 22 ।।

उसी अन्तर आतमा को 'गाड' कह कुछ धन्य हैं,
वही नानक, वही ईशा, नहीं कोई अन्य हैं,
ब्रन्द कर आँखें लगाओ ध्यान उसका तो दिखे,
एक ही ईश्वर जगत में प्रस्फुटित सब में लिखे ।

उसी ईश्वर ने कहा कण-कण हमारा वास है,
जीव मेरा अंश है जीवन हमारे साथ है,
ज्ञान से देखो जगत को ईश दीखेगा तुम्हें,
विश्व का हर आदमी ईश्वर दिखाई दे तुम्हें ।

ज्ञान की उस परम सीमा तक तुम्हें जाना पड़े,
तो न पीछे पैर रखना, मोह को तजना पड़े,
मोह ही वह आवरण जो ढका तेरे ज्ञान को,
आत्मा स्वच्छंद है पर मन भरा अभिमान को ।

मोह माया छोड़ कर आसक्ति का कर त्याग तू,
कामना को तज हृदय में भक्ति का भर भाव तू,
मान जीवन है नहीं, जीवन सरल अरु शुद्ध है,
क्रोध से तो बुद्धि घटती, हो रहा क्यों क्रुद्ध है ?

इन्द्रियों का दास बन कर जी रहे संसार में,
चीन्हते ना स्वयं को जो बह रहा मजधार में,
सामने जो खड़ा जीवन वह न कोई और है,
ध्यान से देखो वही तो नित तुम्हारा ठौर है ।

दोहा - तजो मोह माया जगत, ममता अरु आसक्ति,
भर हिय में उस ईश प्रति, श्रृद्धा, निर्मल भक्ति ।। 23 ।।

कर अलग कितना स्वयं से पर अलग वह है नहीं,
खीच ले कितनी लकीरें सत बदल सकता नहीं,
साँस लेते लड़ रहे हो छोड़ देगा साथ तब,
क्या बचेगा, तू चलेगा इस जगत को त्याग जब ।

त्यागने से पूर्व ही तुम जागते क्यों हो नहीं,
सभी प्राणी ईश ही हैं, मानते तुम क्यों नहीं,
देख उनमें ही तुम्हारा रूप दीखेगा यहाँ,
हर हृदय में ईश की करुणा दिखेगा नित जहाँ ।

फर्क कुछ पड़ता नहीं आये यहाँ किस राह से,
पूर्व, पश्चिम दिशा दक्षिण या कि उत्तर द्वार से,
बैल गाड़ी, रेल गाड़ी, पाँव से या कार से,
किस तरह आये यहाँ, पर आ गये मजधार से ।

तत्व तक उस पहुँचने के तो अनेको राह हैं,
बाइबिल, गीता, सबद अरु वेद और कुरान हैं,
राह तो होता नहीं है लक्ष्य जीवन में कभी,
लक्ष्य तो वह सत्य है जो है बसा अन्तर सभी ।

हो किसी भी राह के राही यही तू जान ले,
राह सब मिल कर हुए हैं एक यह पहचान ले,
गूढ़तम इस सत्य को तू जान तेरा धर्म है,
जानता जो वही ज्ञानी, मानता जग मर्म है ।

दोहा - प्राण पखेरू उड़ चले, पहले ही तू जाग,
वरना पछतावा रहे, गुजर जाय ऋतु फाग ॥ 24 ॥

ज्ञान की गंगा बही तो हिय कमल खिल जायगा,
पूर्ण संसृति हृदय तेरे आप से भर जायगा,
भेद ना तू कर सकोगे हिन्दु मुसलिम में कभी,
जीव क्या निर्जीव भी हो जाँय जग अपने सभी ।

वही ऊँचाई भरा है हिय तले इंसान में,
वही प्रभुता भी भरी है हर मनुज के ज्ञान में,
मनु तुम्हें जगना पड़ेगा समय की आवाज है,
ज्ञान की गंगा बहा दो यही सच्चा राज है ।

मानवों ! तुम जाग जाओ सर तुम्हारे काल है,
द्वेष, ईर्ष्या से भरा जीवन तुम्हारी चाल है,
मौन तू बैठे हुए चिन्तन करो निज हाल पर,
तरस आयेगा तुम्हें तब तुम हँसोगे ख्याल कर ।

किस तरह से घृणा ने तुमको अलग है कर दिया,
किस तरह से लोभ ईर्ष्या ने स्वयं को हर लिया,
किस तरह तू स्वार्थ के ही युद्ध में आबद्ध हो;
किस तरह अपने पराये परिधि में तू बद्ध हो ।

दौड़ते हो जिन्दगी भर तू क्षणिक सुख के लिए,
दूसरे के कर्म को ना मानते अपने लिए,
कब जगोगे मानवों जब जल मरोगे आग में
कब जगोगे तुम यहाँ, ईश्वर मिलन की आस में ।

दोहा - मानव तन मनु पाइके, करते ईर्ष्या युद्ध;
गवा रहे क्यों व्यर्थ तू, निज जीवन भर क्रुद्ध ।। 25 ।।

मान कर प्रभु की कृपा क्यों भर लिए ना अंक तुम,
आँख पलकों में बिठा कर मारते क्यों डंक तुम,
दे रहे धोखा स्वयं को रो पड़ी आत्मा न क्यों,
दुष्ट सा व्यवहार करते मानते तुम हो न क्यों ?

देख मानव में तुम्हें वह ईश निश-दिन ही दिखे,
ईश है इंसान कह कर मत उसे छोटा लिखे,
झाँक उसके हृदय में करुणा दिखेगी छलकती;
प्रेम की सरिता निरन्तर बह रही है किलकती ।

देखने की शक्ति हो संसार सारा स्वर्ग है;
उसी में अणु है प्रतिष्ठित उसी में सत सर्ग है,
भावना सुन्दर अगर तो शान्ति संसृति में मिले,
शान्ति के बिन दुखद जीवन भ्रान्ति में मन मित पिले।

मोह के परवश तु ईश्वर को नहीं पहचानता,
लोभ में तू पागलों सा रात-दिन ही भागता,
सभी हर इक दूसरे को पशु समझते हैं यहाँ,
जगत सारा मुर्ख है यह मानते हैं सब जहाँ ।

कामना के बन्ध में बँध स्वार्थ में आलिप्त हो,
और ममता में बँधे तुम श्राप से अभिसप्त हो,
चाहते हो तुम उठा कर पृथ्वी को फेंकना,
क्रोध के आवेग में विक्षिप्त हो कर देखना ।

दोहा - नित्य कामना में फसे, ममता में आलिप्त,
कैसे हो ईश्वर कृपा, जब हो मन विक्षिप्त ।। 26 ।।

दूर करता वह अंधेरा अरु उजाला नित भरे,
दुष्ट को वह मारता है अरु धरा से नित हरे,
भले हो आकाश से ऊँचा प' उसके सामने,
मनुज तुम जब गिर रहे तब दौड़ता वह थामने ।

आखिरी चक्कर तुम्हारा लाख चौरासी लिए,
अब न जागे तो भला इस राह, कब तक तू जिए,
भूल मत जाना अभागे एक दिन वह आयगा,
जब तुम्हारा कर्म तेरे सामने आ जायगा ।

उस समय असहाय इतना तू न कुछ कर पायगा,
दीन दृग आँसू बहाता देखता रह जायगा,
स्मरण होगा उसी की जो तुम्हारा एक है,
कहोगे मजबूर हो कर ईश अल्ला एक है ।

उस समय तुमको न कोई रोक सकता जगत में,
जिन्दगी के कर्म सारे आ घुमेंगे नेत्र में,
तब न धन कुछ कर सकेगा, पुत्र सुख ना दे सके,
कामना, ममता न कोई काम तेरे आ सके ।

उस समय असहाय शिशु सा रो पड़ेगा देख कर,
क्या दशा थी हो गई क्या,लाभ क्या अफसोस कर,
व्यर्थ ही जीवन लुटाया सार कुछ पाया नहीं,
किस लिए आया यहाँ था कर न कुछ पाया सही ।

दोहा - चौरासी-लख तन तजे, मिला मनुज तन आज,
जागो प्यारे बंधुओं, गिरे न सिर फिर गाज ॥ 27 ॥

भरा है परिवार तेरा भरा है धन - धान्य से,
कुछ नहीं तो मन तले तू भरा है अभिमान से,
मान में अंधा न दीखे सामने वह कौन है
जो गढ़ा तुमको उसी का रूप दीखे मौन है ।

बाँट डाले स्वयं को अभिमान से तू जाति में,
बाँट डाले ऊँच नीचों में स्वयं को ख्याति में,
सम्प्रदायों में बटे, अरु बट गये तुम क्षेत्र में,
बाँट डाले धनी-निर्धन और दुश्मन मित्र में ।

बट गया तू राष्ट्र में अनगिन लकीरें जोड़ कर,
बट गया इन्सान यह इन्सानियत को छोड़ कर,
बट गया मानव जगत में शास्त्र पथ को तोड़कर,
बट गया है जीव अपने जीव से मुख मोड़ कर ।

बाँट डाले मन्दिरों को, मसजिदों को, चर्च को,
बाँट डाले तू पुजारी, मौलवी निष्कर्ष को,
बाँट डाले प्रार्थनाओं को अनेकों अर्थ में,
बाँट डाले ईश को अनगिन नुकीले शर्त में ।

बट गये तू इस तरह, ईश्वर हमारा बट गया,
बट गये तू इस तरह अल्ला हमारा कट गया,
मार डाले प्रेम को तुम जो कभी मरता नहीं,
काट डाले आत्मा को जो कभी कटता नहीं ।

दोहा - ईश्वर अल्ला बाँटते; शरम न आई यार,
क्या अपने को आप से; बाँट सका संसार ॥ 28 ॥

मान में वह कर गये तुम जो न करना था तुम्हें,
मृत्यु को भी जीतने का शौक कितना है तुम्हें,
इस तरह अभिमान से भर सत्य को ठुकरा दिया,
सत्य-शिव सुन्दर जनम को नर्क में पहुँचा दिया ।

जान कर अनजान सा ही कर्म तुम करते रहे,
सत्य को झुठला असत के संग तुम चलते रहे,
श्रृष्टि के कण-कण बसा वह ईश तुमको है पता,
जीव उसका अंश, क्यों हो जीव का बैरी बता ।

उस कृपा से ही तुम्हें है अन्न, जल मिलता यहाँ,
वही देता रोशनी औ अमा देता नित जहाँ,
हवा संसृति को मिली है अग्नि भी उसने दिया,
उसी की अनुपम कृपा जो गोद में तुमको लिया ।

छीन सकता है तुम्हारी आँख से वह रोशनी,
तोड़ सकता है तुम्हारे बाजुओं की अग-जनी,
पलक झपते फेंक सकता है धरा को नभ तले,
सिंधु को वह सोख सकता तेज इतना नित जले ।

दया उसकी मान पगले जो तुम्हें जीवन दिया,
साँस देकर मौत से तुमको अभय वह कर दिया,
वही कहता विश्व में हर जीव मेरा रूप है,
विश्व की हर विविधता में एक सत्य स्वरूप है ।

दोहा - अभय वही जिसके लिए; साँस रहे, चल जाय,
काम, क्रोध, मद, मोह, अरु ममता पास न आय ।।29।।

भावना ही सत्य होती और वह ही मित्र है,
भावना को बदल दो यदि सत्य से अनभिज्ञ है,
भावना हो स्वार्थ लोलुप तो हृदय मल युक्त है,
भावना निस्वार्थ तो मन बन्धनों से मुक्त है ।

भावना ऊपर उठाती अरु गिराती मनुज को,
भावना से युद्ध होता जो जलाता दनुज को,
भावना शान्तिर्मयी है तो बुझाती प्रलय को,
भावना ज्योतिर्मयी है तो जगाती हृदय को ।

भावना निर्मल नहीं तो बुद्धि स्थिर हो नहीं,
बुद्धि स्थिर है नहीं तो भ्रष्ट मानव हो मही,
बुद्धि बिन मन क्रोध, कामी अरु भरा आसक्ति से,
विषय में आबद्ध हो नित रिक्त होगा भक्ति से ।

स्वार्थ से यदि भरा मन तो जगत स्वार्थी रूप है,
स्वार्थ से सुन्दर, मनोहर श्रष्टि देख कुरूप है,
स्वार्थ से स्वार्थी तुम्हारा मन तुम्हें ही नोच ले,
स्वार्थ से आलिप्त मन को ईश दर्शन ना मिले ।

स्वार्थ से हो भरे, तुमको मनुज तो दिखते नहीं,
फिर तुम्हें मनु रूप में ईश्वर दिखे कैसे कहीं,
स्वार्थ का परदा हटा दो ईश होगा सामने,
गिर रहे तो दौड़ता वह तुरत आये थामने ।

दोहा - स्वारथ में पागल सकल; मानव यह संसार,
देख न पाया ईश का; करुणा कृपा अपार ॥ 30 ॥

धर्म की दीवार बुझ-दिल ने बनाया है कभी,
आत्मबल की कमी होगी मानते हैं हम सभी,
धर्म का सम्बन्ध होता अन्तरात्मा से सदा,
अन्तरात्मा अंश उसका नित्य, शाश्वत, सर्वदा ।

द्वन्द या निर्द्वन्द आत्मा में रहे कुछ भी नहीं,
वही हिन्दू में वही है बसा मुसलिम में सही,
वही सिख में अरु इसाई में बसा प्रभु नित्य है,
वही जड़ में और चेतन में बसा प्रभु सत्य है ।

सत्य, शाश्वत, नित्य आत्मा में न कोई भेद है,
किस तरह हिन्दू व मुसलिम भिन्न हैं, क्या छेद है ?
है सदा वह ही, उसे ईश्वर कहो, अल्ला कहो,
वही ईशा है उसे कृष्णा कहो नानक कहो ।

वही मानस का पियासा वही आत्म प्रधान है,
सभी तन नश्वर, अनित पर ईश नित विद्यमान है,
मानवों से घृणा करना ईश का अपमान है,
जो करे ईर्ष्या, घृणा उस हिय भरा अभिमान है ।

जीव से जो द्वेष करता ईश का द्वेषी वही,
जीव से जो प्रेम करता ईश का प्रेमी वही,
प्रेम ही आधार वह जिसमें गुथा संसार है,
प्रेम ही संसार-सागर के लिए पतवार है ।

दोहा - किसने कब कैसे चुनी, धर्म-धर्म दीवार,
क्या उसकी सत आत्मा; कर न सकी प्रतिकार ।। 31 ।।

प्रेम से बिगड़ी बने अरु प्रेम से ईश्वर मिले,
प्रेम से हर हृदय में नित नव मधुर किसलय खिले,
प्रेम बिन है निरस जीवन टिक नहीं क्षण भर सके,
प्रेम जब जब कम हुआ है, प्रलय संसृति को ढके ।

प्रेम की मूरति बनाओ, ईश का वह रूप है,
प्रेम प्रति विश्वास ही आत्मा कहाता भूप है,
मन भरी आस्था तुम्हारे ईश का निर्मल हृदय,
भरा हो विश्वास श्रद्धा है कृपा, उसकी सदय ।

रो रहे इन्सान के प्रति घृणा तेरे मन घुसे,
तो भले सैतान मानव सहन भी कर ले उसे,
पर न ईश्वर घृणा करता, सहे नहिं अन्याय को,
सामने वह शीघ्र रखता घृणा प्रति प्रतिकार को ।

आज संसृति में घृणा की बाढ़ देखो आ रही,
वह हमारे ही घृणा का रूप नित दिखला रही,
आज मानव स्वार्थ में कुछ इस तरह उलझा हुआ,
मानवों को मानवों प्रति साँप जैसे है छुआ ।

क्रोध में पागल जगत है, दीखता नहिं ईश है,
जानता नहिं जीव के ही रूप में जगदीश है,
विश्व की सद्भावना यह जगत उसका रूप है,
स्वार्थ के बन्धन तले दब मनुज कितना नीच है ।

दोहा - घृणा से मानव हृदय टूटे; मन भर द्वन्द,
ईर्ष्या, द्वेष तहाँ बसे; निकले नहिं मृदु छन्द ॥ 32 ॥

कर रहा है युद्ध घर में, गाँव में अरु शहर में,
कर रहा है युद्ध मानव राष्ट्र में हर प्रहर में,
चल रहा है युद्ध मन में, बुद्धि में अरु दृष्टि में,
हो रहा है नाश सबका व्यष्टि और समष्टि में ।

देश की सीमा व अनगिन वीर कुर्बा हो रहे,
रात-दिन लोहू बहाते और लाशें बो रहे,
जानता हूँ इस धरा को बाँट कोई ना सका,
श्रृष्टि के आरम्भ से अब तक न कोई पा सका ।

अनगिनत नृप इस धरा पर युद्ध कर कर लड़ मरे,
आँख ना अब तक खुली है लड़ रहे देखो डरे,
यह धरा जैसी रही तब; आज भी वैसी रही,
बदलता मानव गया पर खून की नदियाँ बही ।

आज सीमाएँ पटी हैं लाश से पर क्यों भला,
दीखता है क्यों नहीं इस आँख से मानव कला,
क्यों नहीं समझे मरा जो ईश का वह रूप है,
ईश को तू मारता जो खड़ा मानव रूप है ।

ज्ञान हो जाता तुम्हें तो ईश मानव दीखता,
शस्त्र के बदले उसे हिय में लिए नित जीतता,
तब न सीमा बाँध सकती थी कभी तुमको यहाँ,
मुक्त इस आकाश में खग सा विचरते नित जहाँ ।

दोहा - अनगिन लाशें पड़ी हैं; देख घृणा परिणाम,
कब खोलोगे आँख तुम; बन पाओगे राम ।। 33 ।।

भेद ना होता कभी सीमा नहीं होती जहाँ,
सम्प्रदायों में बटे होते नहीं मानव यहाँ,
इस जहाँ में धर्म भी बटता न सीमा में कभी,
एक मानव धर्म में आबद्ध हो रहते सभी ।

फँस नहीं जाती कभी भाषा विवादी जाल में,
बट नहीं जाता मनुज गोरे व काले हाल में,
मिट नहीं पाती मनुजता बुझ नहीं पाती दिया,
बट नहीं पाते कभी पूरब व पश्मिच में किया ।

इक अनाशी दीखता इस लोक के हर जीव में,
तब न मनु बटता कभी भी जाति,धर्म व नींव में,
ज्ञान जब तक हो न पाये तब तलक सम्भव नहीं,
आत्मज्ञानी के ह्रदय में दोष का उद्‌भव नहीं ।

ज्ञान होना चाहिए कर्त्तव्य,अकर्त्तव्य का,
ज्ञान होना चाहिए नित योग का अरु ध्यान का,
ज्ञान होना चाहिए आवृत्ति और निवृत्ति का,
ज्ञान होना चाहिए आसक्ति का अरु मुक्ति का ।

नभ धरा अरु जीव में है व्याप्त समरस देख ले,
वायु बिन जीवन नहीं यह तुम प्रकृति से सीख ले,
अग्नि से हर जीव जग में शीव शक्ति प्रधान है,
ज्ञान से हर मनुज में नित फूटता विज्ञान है ।

दोहा - बिना ज्ञान के सत्य का; होत नहीं पहचान,
अज्ञानी को यह जगत; लागे सत्य समान ।। 34 ।।

इस तरह माटी गगन जल अरु पवन, दावाग्नि ही,
व्याप्त है हर जीव में यह वेद कहता है सही,
फिर भला संसार में तुम भेद कैसे कर रहे,
उस अभेदी चेतना में छेद कैसे कर रहे ।

जाति ना बनती कभी मतभेद भी होता नहीं,
ऊँच- नीचों में बटा मानव कभी रोता नहीं,
नहीं ब्राह्मण, नहीं क्षत्रिय, वैश्य भी होते नहीं,
बटे वर्गों में झगड़ते धनी, निर्धन भी नहीं ।

धर्म पर प्रतिघात ना होता कभी आघात का,
व्यर्थ की व्याख्या न होती धर्म पर विश्वास का,
बट नहीं जाती मनुजता कभी धर्मी नाम पर,
खून की धारा न बहती इस धरा के आन पर ।

आदमी भी आदमी से जानवर होता नहीं,
खून का प्यासा बना वह रात-दिन रोता नहीं,
शुद्ध पावन मन तले ना क्रोध-ज्वाला दीखती,
मनुज के निर्मल हृदय में घृणा जाल न बीजती ।

विश्व के कण-कण बसा है ईश इतना जानते,
तो न ठोकर मार कर तू आदमी को मारते,
गिर रहे को दृढ़ सहारा मागना पड़ता नहीं,
एक भी भूखा भिखारी श्रृष्टि में होता नहीं ।

दोहा - भू,जल, पावक, गगन अरु; बना वायु से देह,
इतना मनु यदि जान ले; तो मन मिटे न नेह ॥ 35 ॥

श्रृष्टि शत्रु विहीन होता, शस्त्र भी बनता नहीं,
देश रक्षा में न योद्धा मृत्यु को वरता कहीं,
औ न वादों में फसा मनु पागलों सा घूमता,
नित्य अनगिन कामना में जिन्दगी ना भूनता ।

भटकता नहिं जीव अनगिन योनियों में जन्मता,
तृप्त होता हर मनुज यदि असत को वह जानता,
वासना अरु कामना आबद्ध कर पाती नहीं,
राग में आबद्ध हो कर आतमा रोती नहीं ।

ईश को पहचानता तो झूठ में जीता नहीं,
क्रोध, माया-मोह के दलदल तले फसता नहीं,
मुक्त हो आनन्द में, उस ईश से अभिसार कर,
वह सदा रहता जगत में ब्रह्म संग विहार कर ।

शान्त चित एकान्त में धर ध्यान सत्य स्वरूप का,
बैठ कर तू कर मनन उस ईश के गुण धर्म का,
कौन देता गर्भ में शिशु को सहज जीवन प्रभा,
कौन देता स्वाँस, जल अरु अन्न की निर्मल अभा।

विश्व को सुन्दर हरितिमा से भरा किसने यहाँ,
वायु शीतल मंद सुरभित को बहाया इस जहाँ,
कौन जल अरु अन्न से परिपूर्ण संसृति को किया,
अग्नि को किसने बनाया; मनुज तन किसने दिया ।

दोहा - मानव तू धर ध्यान हिय; निज स्वरूप को देख,
वहीं मिलेगी शान्ति अरु; वही मिटेगी रेख ।। 36 ।।

मात्र उसकी ही कृपा से मनुज तन मिलता यहाँ,
कृपा उसकी ही रहे सत-संग मिलता है जहाँ,
जब तलक बरसे नहीं उसकी अपार उदारता,
तब तलक ना योग मिलता इस जहाँ में साधुता ।

बिना करुणा के जगत का पत्र हिल सकता नहीं,
भृगुटि उसकी तन गई तो प्रलय रुक सकता नहीं,
वह भरा आनन्द से तब श्रृष्टि का निर्माण है,
बिना उसकी सहज करुणा के नहीं कल्याण है ।

कौन किरणों में भरा नित तेज और प्रकाश है,
कौन शशि में अमिय भरता और नित्य उजास है,
अग्नि में किसने तपन अरु, नीर में ठंढक भरी,
डूब ना जाये जगत निज, अंक में किसने धरी ।

रात दिन का जगत में निर्माण कर्ता कौन है,
अखिल चेतन और जड़ का बता भर्ता कौन है,
कौन फूलों को खिलाता नीर की बरसात कर,
कौन सुख-दुख को बिछाया योग-माया हाथ भर ।

मृत्यु को किसने बनाया जन्म देता कौन है,
कंठ में संगीतमय आवाज भरता कौन है,
आँख में भर रोशनी को जग दिखाता कौन है,
कौन माया में फसाता, मुक्त करता कौन है ।

दोहा - बिना ईश की कृपा के; पत्ता हिले न जान,
उसकी करुणा से जगत; का सब होत विधान ।। 37 ।।

बुद्धि को किसने दिया है अरु विवेक प्रधान को,
ज्ञान इन्द्रिय, कर्म इन्द्रिय अरु बताया ध्यान को,
हृदय में समता भरी अरु कौन रस से भर दिया,
कौन डाला नर्क में अरु स्वर्ग किसने है दिया ।

सब उसी प्रभु ने दिया है जो बसा कण नित नया,
वह दया सागर विधाता कर रहा पथ पर दया,
वेदना, करुणा, हृदयता, शीलता देता वही,
क्षमा श्रद्धा शान्ति देता मान हरता भी वही ।

क्यों नहीं उसकी हृदयता मूढ़ तुम पहचानते,
क्यों न अमिय विशालता की श्रेष्ठता को मानते,
है वही हर क्षण तुम्हारे संग नित तेरे लिए,
क्यों नहीं आभाष होता जो खड़ा तेरे लिए ।

सुबह में वह ही उठाता अरु सुलाता शाम को,
नींद में वह ही डराता अरु हँसाता आम को,
जिन्दगी कब दे उठा ले जानता केवल वही,
क्या गलत क्या सही होता नित बताता वह मही ।

रोज वह ही शक्ति देता तृप्त करता क्षुधा को,
शीत गरमी से बचाता मुक्त करता बधा को,
और आँचल दूध भरता, शीत-छाया पथिक को,
जड़ी-बूटी कर समर्पित स्वस्थ रखता मनुज को ।

दोहा - सोते जगते रात - दिन, बरसे करुणा धार,
आँख खोल वह देखता, तब चलता संसार ।। 38 ।।

सब जगह सम रूप से स्थित वही ईश्वर रहा,
श्रृष्टि में वह ठौर देता आप खुद दुख है सहा,
परम श्रद्धा,भक्ति अविरल नित निरन्तर वह भरे,
जीव प्रति सेवार्थ भावो को वही हिय में धरे ।

मृत्यु रूपी श्रृष्टि सागर से वही उद्धारता,
कामनाओं से रहित कर वह हमें नित तारता,
वह बनाता त्याग का पर्याय इस संसार में,
गोद में ले नित सुलाता भावमय अभिसार में ।

कुछ नहीं वह चाहता, हर्षित अद्वेषी वह सदा,
मान अरु अपमान में,दुख-सुख में सम रहता खुदा,
कर्ण वह है पैर जग का, वही सबकी नाक है,
नेत्र,त्वक,रसना,गुदा वह अरु उपस्थ सपाक है।

वही पोषण-भरण करता और भोक्ता भी वही,
ज्ञान देता, ज्योति देता और हिय में है वही,
संग गुण के प्रकृति को जो जानता वह मीत है,
हर क्रियाओं में अकर्ता बना रहता ईश है ।

श्रृष्टि को ही मान ईश्वर कर्म अर्पण कर उसे,
है समर्पण श्रेष्ठ पूजा हृदय से तू वर उसे,
नित्य पर-सेवा कहाती ईश की ही बंदगी,
मिट सदा जाता हृदय से वैरता की गंदगी ।

दोहा - आँख, कान, रसना, त्वचा, नाक उसी का धर्म,
हाथ, पैर, मुख, गुदा अरु कर उपस्थ से कर्म ।। 39 ।।

जिस तरह तन अंग के हर सुख-दुखों में संग है,
जिस तरह माता निरन्तर रँगी ममता रंग है,
खोल कर हिय देख वैसी ही दिखेगी यह मही,
प्रेम उपजेगा हृदय में भेद ना होगा कही ।

मान, धन, परिवार जग से सुख न मिल सकता कभी,
क्यों कि जड़ से चेतना की पूर्ति ना होती कभी,
विश्व की संपूर्ण प्रभुता कभी मानव को मिले,
और पाने की प्रबल इच्छा जगेगी मन तले ।

तृप्ति ना होगी कभी मन शान्त होगा ना कभी,
प्यास ले मानव वरण करते मरण को नित सभी,
नित्य की न अनित्य से होगी कभी भी एकता,
नित्य की जब नित्य से होगी मिलन तब पूर्णता ।

जीव-आत्मा नित्य चेतन क्यों अचेतन से मिले,
तब तलक वह है अधुरा परम आत्मा ना मिले,
सुख अगर चाहे तुम्हें तो मन तले तू ढूँढ ले,
सुख न नश्वर श्रृष्टि में है, सुख न नश्वर तन तले ।

पूर्णता है आत्म में परमात्म में अरु ज्ञान में,
पूर्णता है योग में सहयोग में अरू ध्यान में,
कामना, आसक्ति से तो मन रमें इस श्रृष्टि में,
मृत्यु जिसको कर सके ना कम कभी भी दृष्टि में ।

दोहा - योगी कर नित ध्यान तू, जागे तब सत ज्ञान,
बिना ज्ञान के आत्म की, होत नहीं पहचान ।। 40 ।।

तन तुम्हारा है नहीं, मन भी तुम्हारा है नहीं,
जग तुम्हारा है नहीं जग जन तुम्हारे हैं नहीं,
सभी से तुम हो अलग आत्मा तुम्हारा नाम है,
एक परमात्मा तुम्हारा और वह ही धाम है ।

दिया है तुमको जनम उसमें उसी की है कृपा,
प्रेममय अमृत भरा है, हिय तले उसकी कृपा,
रूप देता इस हृदय को एक सुन्दर बाग सा,
विश्व अमृत पान कर झूमें जहाँ नित फाग सा ।

विश्व को भर लो हृदय में यही जीवन लक्ष्य है,
यही पूजा, प्रार्थना अरु यही सुन्दर सत्य है,
प्रेम कर ले इस जहाँ को उस जहाँ की जीत है,
प्रेम से बढ़ कर न तेरा और कोई मीत है ।

वह खुदा, वह गाड, ईश्वर चाहता है प्रेम कर,
विश्व कण-कण में निरन्तर ईश्वरी तू प्रेम भर,
प्रेम ही है रूप उसका श्रृष्टि रचना प्रेम है,
प्रेम के अतिरिक्त संसृति में न कोई नेम है ।

प्रेम है वह, प्रेम हैं हम, प्रेममय संसार है,
प्रेम बिन कुछ भी नहीं जग प्रेम का उद्धार है,
इसलिए संसार को तू प्रेम कर नफरत नहीं,
प्रेम नित्य स्वभाव तेरा, प्रेम में गफलत नहीं ।

दोहा - तन, मन, जीवन व्यर्थ है, हो न ह्रदय में प्रेम,
प्रेम बिना संसार नहिं, प्रेम बिना नहिं नेम ॥ 41 ॥

प्रेम को जो जानता है ईश को वह मानता,
वही मानवता-पुजारी विश्व अपना मानता,
प्रेममय वह एक ईश्वर जगत उसका अंश है,
धर ह्रदय में अखिल संसृति एक मानव बंश है ।

डोर में ज्यूँ गाँठ होती, गाँठ में ज्यूँ डोर है,
पर जहाँ है गाँठ उसका नाम कैसे डोर है,
डोर बिन इस गाँठ का अस्तित्व कुछ होता नहीं
डोर कह उस गाँठ को सूचित किया जाता नहीं ।

गाँठ मद से भूल अपने को हि सरवस मानता,
सत्य तो यह है कि गाँठी गाँठ को पहचानता,
डोर के बिन बोल पगले गाँठ यह कैसे बने,
गाँठ खुल जाये अगर तो गाँठ फिर कैसे तने ।

गाँठ रूपी तन मिला यह डोर रूपी आतमा,
आत्म के बिन तन नहीं है जिन्दगी केवल अमा,
मूढ़ हम तन को कहें 'मैं' और 'मेरा' मोह में,
और आत्मा भूल, पड़ते सुख दुखों के खोह में ।

तन हुआ सँग मनः, इन्द्रिय और मद में चूर है,
अरु अहंकारी बना आसक्त संसृति नूर है,
पर बता क्या, आत्म के बिन यहाँ क्या अस्तित्व है,
एक क्षण भी जीव का जीना न स्थायित्व है ।

दोहा - गाँठ बनी ज्यों डोर से; आत्मा से तन माहि,
बिना डोर के गाँठ नहिं; बिना आत्म तन नाहिं ॥ 42 ॥

आत्म के बिन कल्पना करना हमारी भूल है,
तन हुआ है आतमा से, आतमा ही मूल है,
तन कहे 'मै' और 'मेरा' आत्मा नहिं जानता,
तन को अपनी आत्मा का है नहीं कुछ भी पता ।

जब तलक 'मैं' और 'मेरा' मन तले मानव भरा,
तब तलक मनु मूढ़ अंधा सत्य नहिं जाने जरा,
'मैं' मरा तो सत्य जागृत और जागे आत्मा,
पूर्णता की स्थिति यह, दूर मन होती अमा ।

जिस दिवस 'मैं' कह दिया की मैं नहीं बस आत्मा,
उस दिवश है मुक्ति मानव और जग परमात्मा,
काम तेरे योग होंगे अरु पराया जग नहीं,
सभी का सुख-दुख हृदय में जाय भर अपने कहीं ।

इस तरह संसार यह परमात्म है अपने लिए,
द्वन्द से हो मुक्त सब ही मित्र हो सबके लिए,
बैर ना होगा कहीं मन में कभी मनु के लिए,
हर मनुज में ईश दीखे, अंक लेने के लिए ।

दोहा - मैं मेरा के फेर में; मानव फँसा बिमूढ़,
जब तक मैं मरता नहीं; तब तक संसृति गूढ़ ॥ 43 ॥

वह हृदय में और स्मृति, ज्ञान में सबके बसा,
वेद को वह जानता अरु वेद उसकी ही दशा,
जीव नित संसार में उसका सनातन अंश है,
तेज से उसके भरा जो नित्य उसका वंश है ।

धरा में धारण वही है, चन्द्र में रस काम है,
वही वैश्वानल पचाता अन्न प्राण-अपान है,
वही पोषण भरण करता लोक में आविष्ट हो,
भेद वह करता नहीं; तेरी प' कैसी दृष्टि हो ।

क्षर व अक्षर से सदा उत्तम व पुरुषोत्तम वही,
उसी की करुणा निरन्तर बह रही है इस मही,
जान कर उसकी कृपा इस विश्व प्रति तू नेम कर,
एक है वह, एक है वह, एकता से प्रेम कर ।

दोहा - उपजे हिय में प्रेम जब, जग दीखे भगवान,
एक सत्य के प्रति हृदय, तड़प उठे इन्सान ॥ 44 ॥

शान्त हो गये कहकर बालक, मौन खड़ी सारी जनता,
सबके मन में कही ना कहीं उमड़ रही प्यारी ममता,
झाँक रहे थे सब आत्मा में, जो सारे जग का अपना,
देख रहे थे बाहर पर था दीख रहा अन्दर सपना ।

गदगद मन था रोमांचित तन, आँखों में आँसू धारा,
जीवन की सच्चाई सुन कर हिय विह्वल था बेचारा,
सबके हम हैं, सब मेरे हैं, बात समझ में अब आई,
आज तलक क्यों मन पर अनगिन परतों की छाई काई।

चेहरे पर पछतावा दीखा, मन अन्दर छटपटा रहा,
सब कुछ एक तत्व से निर्मित फिर क्यों मन से बटा रहा,
आत्मग्लानि से व्यथित हृदय था वाणी फूट नहीं पाई,
आँखों से आँसू की धारा निकल रही लख सच्चाई ।

देखा जनता को शिष्यों ने अन्तर मन से पछताते,
बोले पछताने से होता कुछ नहिं भाई पित-माते,
गले लगा लो एक दूसरे को जग की यह सच्चाई,
हिन्दू, मुसलिम,सिक्ख, इसाई सब होते भाई-भाई ।

गुरुवर का घर ध्यान चरण रज शीश झुकाया शिष्यों ने,
जनता के हिय प्रेम बिछाया,फूल खिलाया शिष्यों ने,
जीवन की सारी सच्चाई आज सुनाया शिष्यों ने,
वसुधा एक कुटुम्ब ईश का राज बताया शिष्यों ने ।

दोहा - धन्य धन्य है धन्य वह; जिसको सत का ज्ञान,
वह सपूत भगवान का; है अवतार जहान ॥ 45 ॥

॥ सप्तम सर्ग ॥

संसार

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

सप्तम सर्ग

संसार

ब्रह्म रचा इस संसृति को अति उज्ज्वल निर्मल आस लगाये,
योगी व जोगी रमें दिन- रात प' आदि से अन्त बता नहिं पाये,
ज्ञानी थके, अभिमानी थके वह भी सुलझा पर जाल न पाये,
चन्द्र कहे नहिं जान सके यदि ईश धरा पर ही क्यों न आये ।

कोई कहे जग सार है ज्ञान तो कर्म का कोई बखान करे,
अरु कोई इसे भक्ति धाम कहे तो कई अभिमान गुमान करे,
कह कोई असार व सार जगत कहके सबही गुणागान करे,
पर चन्द्र कहे जग ईश थली जिनके दर्शन नित ध्यान धरे ।

संसार न सार- असार रहे जिस भाव तु देख दिखे वह वैसा;
दानव को यह सत्य दिखे पर मानव को तो असत्य ही जैसा,
एक भी वस्तु टिके न यहाँ प्रभु ने इसको क्यों बनाया है ऐसा,
चन्द्र कहे जो स्वभाव तेरा जग को क्या नहीं तू बताया है तैसा ।

संसार पियार लगे उसको जिसके मन काम कै प्यास रहे,
है उंदास भरा मन में जिसके समझो मन में नहिं आस रहे,
जो उजास लिए मन में रहते उसको चहुँओर प्रकाश रहे,
जग-मुक्त जो दूर रहे इससे, जो बँधे समझो वह पास रहे ।

नित नूतन श्रृष्टि लगे उनको जिनके हिय आत्म प्रकाश भरा है,
जग को समझे नित शाश्वत जो समझो मन में अधियार घिरा है,
जग ईश्वर की अनुपम कृति है जिस पर न कहीं अधिकार तेरा है,
कह चन्दर कौन सी चीज बता जो रहा सत, शाश्वत, नित्य धरा है ।

संसृति ही ईश्वर रे प्यारे, कर ले प्रेम सुहाई,
प्रेम बिना नहिं पाये कोई, उस प्रभु की प्रभुताई ।

जग से राग-द्वेष जो करते,जाने नहिं सच्चाई,
जीवन सरवस यूँ ही बीते, अधम नरक गति पाई ।

मन में काम, क्रोध, मद , ममता तो जग माया लागे,
हो निश्छल हिय तो सारा जग, प्रेम रूप रस पागे ।

बहुत कर चुके ममता जग से, अब कर प्रेम पियारे,
अन्त समय तुम मिल पाओगे, प्रभु से प्रेम सहारे ।

जगत पियारा, ईश्वर प्यारा, धन्य वही कहलाये,
जग की सेवा में रत चन्दर, वही अमर पद पाये ।

दोहा - पृथ्वी पानी अग्नि नभ, वायु मिले आभार,
ब्रह्म अंश आ मिले तब, कहलाये संसार ।

जग ईश्वर का रूप है, जग से मिले शरीर,
जग से ही भोजन मिले, कटे जगत-जंजीर ।

लोग कहे संसार है, माया का जंजाल,
मैं कहता यह द्वार है, मिले ईश हर काल ।

तुम चाहे माया कहो, चाहे कहो असार,
रोओ चाहे तुम हँसो, जीना है संसार ।

जग में उलझा वह फसा, जग से सुलझा पार,
कण-कण में दरिया यहाँ, कण-कण में पतवार ।

नाता तोड़ो अहम से, जोड़ो इस संसार,
पाओगे जग-सत्य को, यहीं होत उद्धार ।

जग से नाता कब छुटे, जान न पाये कोय,
मत कर इतना प्यार तू, जात समय दुख होय ।

धर ध्यान गुरु चरण का, वंदन किया हृदय में,
प्रभु शक्ति आज देना, बोले उदार स्वर में,
परमात्म व्याप्त मन में, संसार, आत्मा में,
है ईश प्राप्ति जीवन का लक्ष्य इस जहाँ में ।

गुरु की कृपा से देखा संसार को बदलते,
क्षण जीव को जनमते, क्षण में किसी को मरते,
संसार भाव-क्षर है, ज्ञानी तो जानते हैं,
पर मूढ़ इस जहाँ को अक्षर ही मानते हैं।

संसार सत्य होता, स्थाई है कीर्ति ज्ञग में,
यह प्यास मूढ़ता का आसक्ति मान मद में,
निज मोह में पड़े वे ईश्वर को क़ोसते हैं,
अपने मनुष्य तन को ही व्यर्थ पोसते हैं ।

संसार में मिला है दुख, शोक और चिन्ता,
संसार मृत्यु, नश्वर कण-कण में होत भिनता,
संसार सत-असत है, संसार नित-अनित है,
संसार में शरीरी होता शरीर रत है ।

जग यह प्रभव से पहले; अस्तित्व में नहीं था,
क्षण-क्षण बदल रहा था, स्थिर भी कुछ नहीं था,
तब भी बदल रहा था; अब भी बदल रहा है,
हर क्षण घड़ी व निश-दिन; कण कण बदल रहा है ।

दोहा- सरक रहा जो रात-दिन, कहलाता संसार,
क्षण-क्षण परिवर्तन यहाँ, बदलत भाव विचार ॥ 1 ॥

संसार भीत नश्वर के नीव पर खड़ा है,
कुछ भी नहीं बचेगा जो दिख यहाँ रहा है,
संसार जब नहीं था परमात्म तत्व ही था,
वह नित्य, सत्य, शाश्वत, सुन्दर, सरल, सरस था ।

वह आज भी यहाँ है, कल भी यहाँ रहेगा,
उसके बिना न संसृति का काम चल सकेगा,
कण-कण में वह बसा है, नित ही बसा रहेगा,
उसकी अंपार करुणा नित बरसता रहेगा ।

संसार बदलता है गति कौन यार जाने,
इकबार दिख गया जो फिर सामने न आने,
मन बुद्धि इन्द्रियों से संसार दीखता है,
ये सब करण जगत के, कारण न दीखता है ।

संसार के हि सँग से हमको प्रतीति होती,
संसृति हि काटती है, संसृति हि नित्य बोती,
नित-सत्य का न कोई बन्धन रहा जगत में,
पर जग सदा ही बन्धन के संग रत असत में ।

जग है पदार्थ संग्रह, होता क्रिया निरन्तर,
आत्मा उजास, उज्ज्वल है अचल, अभय अन्दर,
संसार दीखता जो 'मेरा' व 'मैं' न होता,
मैं नित्य तत्व 'मेरा' कण-कण में व्याप्त सोता ।

दोहा- कारण, कर्ता, उपकरण से चलता संसार,
नित्य तत्व अति सूक्ष्मतर, चेतन व्याप्त अधार ॥ 2 ॥

संसार में बसा जो है अन्त काल उसका,
शिशु एक दिन का होये बूढ़ा हो सौ बरस का,
क्षण-क्षण में मृत्यु होती, होती हि नित रहेगी,
संसार-देह से नित अमरत्व प्राप्त होगी ।

जग की हरेक चीजें प्रतिक्षण बदल रही है,
इक रूप छोड़ दूजा वह वरण कर रही है,
बदलाव ही मरण है, बस रूप छोड़ना है,
पर-रूप ग्रहण करना ही जन्म जोड़ना है ।

संसार दीखता जो वह काल मध्यमा है,
जो नित बदलता रहता वह प्रकृति की समाँ है,
जो पूर्व में न दीखे, अरु बाद में न दीखे,
पर मध्य में दिखे जो वह ही तो नाशवाँ है ।

संसार पाँच भूतों का योग है अचेतन,
स्थूल यह धरा है जो नित स्वरूप का तन,
देता समीर मानव को प्राण-वायु बन कर,
पावक जला निरन्तर तन में प्रकाश हो कर ।

बिन वायु कहीं जीवन संसार में नहीं है,
होता न शुद्ध लोहू बिन वायु के कहीं है,
जब तलक स्वास चलता नहिं मृत्यु पास आती,
जब वायु छोड़ता सँग तब मृत्यु वह कहाती ।

दोहा- एक रूप का बदलना; जगत मृत्यु कहलाय,
अन्य रूप की प्राप्ति ही, जनम जगत में पाय ॥ 3 ॥
वायु बिना संसार में, जीवन दुर्लभ होय,
क्या मानव क्या पशु सभी, प्राण तनिक में खोय ॥ 4 ॥

जग जीव के लिए जल अनिवार्य तत्व होता,
जल बिन न जीव कोई, संसार भी न रहता,
निर्माण जीव का तो जल से हुआ जगत में,
जल अग्नि से मिला तो उर्जा बनी भगत में ।

पृथ्वी ही अस्ति-पंजर, पृथ्वी ही मांस-मज्जा,
मावन शरीर निर्मित, पृथ्वी से साज सज्जा,
पृथ्वी में जल पवन अरु यह अग्नि जब मिले तो,
इक रूप बन है जाता संसार में खिले जो ।

फिर पंच भूत स्वामी आकाश तत्व आता,
जो सूक्ष्म इस तरह का नहिं आँख से दिखाता,
निर्मित इसी से वाणी, होता है जीव-चेतन,
जिससे प्रकृति प्रमाणित करती है नित्य मंथन ।

आकाश तत्व से ही है भेद जड़ व चेतन,
जड़ में नहीं है वाणी चेतन में है गहन-मन,
वाणी, विवेक, बुद्धी अरु मन गगन से निर्मित,
जो सूक्ष्म-सूक्ष्मतम है उस प्रकृति पर समर्पित ।

हर जीव पंच भूतों से ही बना जगत में,
नर-नारि कीट पशु या पक्षी लता बिटप में,
ये स्थूल-सूक्ष्म जितने अवयव शरीर में हैं,
सब एक सम तरंगित, सब एक सम प्रणित हैं ।

दोहा - पंचभूत से तन बना, और बना संसार,
मन विवेक बुधि भी बनी, ईश्वर कृपा अपार ॥ 5 ॥

सिख, पादरी या जैनी, हिन्दू या मुसलमाँ हो,
चेतन हो या हो जड़ वह पर्वत हो खाईयाँ हो,
लेते सभी हवा से नित साँस एक सँग है,
जल से भरी शिरायें, सब में ही एक ढँग है ।

सबमें स्वसन क्रिया है, सब ही विसर्ज करते,
प्रजनन समान होता सब जन्म प्राप्त होते,
बूढ़ा, जवान, बचपन से जिन्दगी गुजरती,
अन्तिम समय सभी को सत शान्ति मृत्यु वरती ।

पूरब का हो निवासी पश्चिम का चाहे वासी,
वासी है उत्तरी या वह दक्षिणी निवासी,
सबमें न भेद कोई, है रक्त एक बहता,
सब में हि ईश के प्रति आदर्श प्रेम झरता ।

सबके लिए उदित है ऊषा लिए दिवाकर,
सबके हृदय उजागर भरता अपार सागर,
जिसमें भरी है उष्मा जिसमें भरे किरण हैं,
जिसमें प्रभात की हर नव ज्योति संवरण हैं ।

पूरब से ज्योति आती ममता भरी हृदय में,
हर जीव के लिए ही आँचल बिछाये नभ में,
भर-प्रेम- अंक में ले संसार को जगाती,
अपने हृदय कभी ना क्षण भेद वह बसाती ।

दोहा - स्वसन, विसर्जन, जन्म, मृत, प्रजनन, रक्त समान,
रात दिवस सबके लिए, फिर क्यों भेद सुजान ॥ 6 ॥

शशि चाँदनी बिछाता सबके लिए गगन में,
हर घर सुधा बहाता, आता सहर्ष मन में,
औषधि को पुष्ट करता पर भेद कुछ न रखता,
हो हिन्दु या मुसलमाँ सबका हि रोग हरता ।

ऊषा किरण उजाला हर घर में नित्य लाती,
हर जीव के हृदय में नवनीत भर समाती,
होती क्षुधा की तृप्ती सबको हि अन्न जल से,
सबके लिए उजाला होती है इक किरण से ।

श्री कृष्ण ने कहा है संसार मूल ऊपर,
नीचे असंख्य फैली शाखां अपार बन कर,
जा कर न लौटते हैं वह धाम नित्य ऊपर,
उस परमधाम जाते पर जीव मुक्त हो कर ।

ब्रह्मा प्रधान शाखा संसार वृक्ष के हैं,
जो मूल से प्रथम में पैदा हुए पुरुष हैं,
संसार मूल में सत-ईश्वर प्रधान होता,
जो उर्ध्व में है बैठा, करुणा अपार करता ।

ज्यों मूल से तना अरु शाखा सदा निंकलती,
शाखा में कोपलें औ फल-फूल वास करती,
वैसे हि ईश से यह अवतरित जगत सारा,
विस्त्रित उसी में होता, स्थित उसी में प्यारा ।

दोहा- जगत मूल ऊपर सदा, फैली नीचे शाख,
बहती धारा उर्ध्व में, देखत अचरज आँख ॥ 7 ॥

उससे सशक्ति पा कर चेष्टा जगत में होती,
उसकी कृपा निरन्तर संसार पर बरसती,
संसार वृक्ष सत, रज अरु तमस पिंड मानो,
जो विषय कोपलों से भरपूर असत जानों ।

वह मध्य, नीच, ऊपर फैला चतुर्दिशा में,
ब्रह्मा, मनुष्य होते अरु देवता जहाँ में,
संसार वृक्ष के ही शाखा महान होते,
पर प्रकृति के गुणों से हो कर्म-बद्ध रोते ।

जैसे समस्त पौधे पानी से सीचने पर,
नित फैलते धरा पर अरु झूमते स्वयं पर,
वैसे गुणों से सिंचित आसक्त इस जगत में,
संसार वृक्ष फलता अरु झूमता गगन में ।

हो देश, वस्तु, मानव या परिस्थिति जगत में,
सब प्रकृति से ससिंचित कुछ भी न रिक्त इसमें,
गुण संग से हि संसृति में नित्य विविधता है,
अरु ऊँच नीच योनी में जीव जनमता है ।

जब तक गुणों से किंचित सम्बन्ध मनु रहेगा,
संसार वृक्ष शाखा तब तक निरत बढ़ेगा,
मानव सभाल हर पल, दलदल इसी जहाँ में,
अंधा समूढ़ मानव फसता इसी अमा में ।

दोहा - त्रिगुणी माया जाल मनु; फैला जग चहुँओर,
लख-लख कोमल कोपलें, फस जाता मन तोर ॥ 8 ॥

शाखा अनन्त पत्तों को जन्म नित्य देती,
त्यो इस जगत से निश-दिन ही कोपलें निकलती,
पर त्रिगुण इस जगत में मानव बँधा निरन्तर,
संसार से न होता उसका वियोग अन्तर ।

कमनीय कामनी ज्यों मन को मलीन करती,
वैसे सभी विषय भी करते मलीन जगती,
आकृष्ट मूढ़ होते पर वेदं विद समझते,
सब नाशवान, कोई स्थिर न जग में होते ।

सुन्दर लगे विषय तो आसक्त मन उलझता,
विषयों में रागपन ही है बंध हेतु बनता,
जो त्याग, बुद्धि, चिन्तन, सेवन को साधता है,
वह राग त्याग करता मनु होत साधुता है ।

मनु योनि रूप शाखा ही मूल जगत होती,
जो कर्म नये करता बोता है नित्य मोती,
अरु अन्य जीव भोगी आते हैं इस जगत में,
वे पूर्व कर्म फल को पाते हैं इस जगत में ।

मानव है मुख्य शाखा जाता है उर्ध्व-नीचे,
मुन में विवेक है जो ऊपर की ओर खीचे,
खेकर विवेक नैया संसार पार करता,
अरु परम धाम जाकर मानव महान बनता ।

दोहा - बुधि, विवेक मानव तुम्हें, मिला करो उपयोग,
बिन इसके नैया तेरी, डूबेगी मत भोग ॥ 9 ॥

पर विषय संग मूरख नित लिप्त लोभ करता,
अरु कामना के पीछे संसार में उतरता,
गहरे में डूब उसमें सत भूल मनुज जाता,
मपणोपरान्त नरकों में घोर दुःख पाता ।

'मैं ही शरीर हूँ' है तादात्म्य घोर ममता,
तन और वस्तु को ही देता मनुष्य प्रभुता,
नर-नारि, लोक तीनों ही काम में फसाएँ,
परिवार, मान, धन ये मन को सभी लुभाएँ ।

तादात्म्य कामना से ममता की डाल फैली,
है उर्ध्व और नीचे, चारो दिशा में वेली,
जो भोग भावना से इस जाल में फँसा है,
वह रूप का दिवाना, जग-नर्क में धसा है ।

संसार आदि नाहीं, ना अन्त स्थिति ही,
जो रूप दीखता है वैसी प्रतीति ना है,
अतएव कृष्ण कहते जग अरु स्वरूप बाँटो,
लेकर असंग शस्त्रः संसार- वृक्ष काटो ।

नित देश काल से ही होता है वस्तु परिचय,
संसार कब से निर्मित है मध्य और कब लय,
अरु चला है कहाँ से है अन्त कहाँ जाकर,
है मध्य कब कहाँ पर कोई न जानता नर ।

दोहा- पड़ो नहीं तू फेर में, कैसा जगत स्वरूप,
झाँको अन्दर आप में, वही मिले सतरूप ॥ 10 ॥

ज्यों मुग्ध कामिनी पर कामी पुरुष निरन्तर,
हो मुग्ध कुछ न जाने क्या छिपा भाव अन्दर,
वैसे हि इस जहाँ में मानव फसा निरन्तर,
वह जानता नहीं कुछ क्या आदि, अन्त, अन्तर ।

जब तक न दृष्य जग को द्रष्टा समान देखे,
तब तक न जानता मनु संसार के झरोखे,
आसक्ति पास में बँध वह ना निकल सके रे,
सत औ असत्य रूपों को भी न पा सके रे ।

जाना असत्य जग को, जागा वही जहाँ में,
सम्बन्ध त्यागता जब अवलोकता हृदय में,
मन, बुद्धि, इन्द्रियों अरु तन, धन, जगत का माने,
सेवा करे जगत की ईश्वर स्वरूप जाने ।

तन से विमोह है तो संसार में फँसोगे,
मन से वियोग है तो संसार में सजोगे,
आसक्ति त्यागना ही ईश्वर को जानना है,
आसक्ति युक्त जो है नहिं शुद्ध भावना है ।

बैठा हो साँप जैसे ले कुंडली जहर का,
वैसे हि मन के अन्दर है कामना विषय का,
तादात्म्य, कामना औ ममता शरीर, मन में,
दीमक सदृश लगे नित जो रत है वासना में ।

**दोहा - जंग में हो आसक्ति तो, बन्धन इसको जान,
हो विरक्त वह जगत में, रहे मुक्त जस प्रान ॥ 11 ॥**

संसार-भोग इच्छा जब प्रस्फुटित हृदय में,
तब बाँधती हमारी ही कामना प्रणय में,
बंधते समोह में हम बाहर न देखते हैं,
घिर कर अपार माया में नित्य टूटते हैं ।

जो छोड़ता अहंता त्यागी वही कहाता,
धन,मान औ प्रतिष्ठा मन में ठहर न पाता,
ममता न नाम की हो, यश चाह नहीं होती,
इर्ष्या न जागती है, जलती हृदय में ज्योती ।

तब ज्ञान उदित होता मैं हूँ शरीर नाहीं,
ना है शरीर मेरा लगता है स्वप्न सा ही,
जड़ मोह नष्ट होता, तन, बुद्धि, इन्द्रियों का,
अपना न कुछ भी रहता, लगता सभी जगत का ।

दृष्टा न दृष्य होता, 'यह' 'मैं' नहीं कहाता,
संसृति, शरीर, नश्वर, मैं नित्य सत्य भाता,
'मैं' का न नाश होता, जन, जगत नष्ट होता,
तन तो स्वरूप नाहीं, क्षण-क्षण रहा बदलता ।

संसार भोग, संग्रह का पिंड एक होता,
सुख-दुख मयी जलाशय, नश्वर अथाह स्रोता,
होता यहाँ न शाश्वत कुछ भी, अनित्य जग है,
नश्वर असत्य कण-कण रहता न साथ तन है ।

दोहा - मैं, मेरे में फँस मरा, बोल अधम क्या होय,
मैं के भीतर 'मैं' रहा; खोज सके कोइ कोय ॥ 12 ॥

फल कर्म का मिले जो वह भोग भोगना है,
दुख-सुख मिले उसे भी हँस के अगोरना है,
औ काम, क्रोध मन से जब तक न मोह जाये,
तब तक जनम मरण से वह दूर हो न पाये ।

संसार में मिले जो संसार में बहा दो,
संग्रह की चाह मन से मानव सतत मिटा दो,
संग्रह किया जो पर की, वह चोर ही कहाता,
मानव की ज़िन्दगी तो वह व्यर्थ ही गवाता ।

संसार त्यागता है लोभी व संग्रही को,
उसकी विशुद्ध आत्मा धिक्कारती, स्वयं को,
हक छीन दूसरों का संग्रह अपार करता,
अनगिनत जन्म ले कर भी पाप भर न सकता ।

सुख कामना कुबंधन, संसार ही जहर है,
जो मोह से परे हैं उनके लिए अमिय है,
संसार भोग, संग्रह का सार कौन कहता,
यह त्याग की समूरत मृदु मंद-मंद बहता ।

संसार धर्मशाला, आश्रय नहीं स्थाई,
जिसने असत्य जाना उसकी ही वाहवाही,
सच है समस्त संसृति क्षण-क्षण बदल रही है,
जैसे किशोर, यौवन, वृद्धा सरक रही है ।

दोहा - जगत कर्मशाला मनुज, कर दरिया में डाल,
बँधे कर्म से जो नहीं; करे पार वह काल ॥ 13 ॥

ज्यों सुबह धर्मशाला को पथिक छोड़ देता,
ज्यों निरस जिन्दगी को यति देख योग लेता,
त्यों छोड़ इस जहाँ को है एक दिवस जाना,
मत मोह तू लगा रे इसका नहीं ठिकाना ।

जो सत्य जानता वह संसार जानता है,
वह तो सराय संसृति को एक मानता है,
आश्रय नहीं जगत का, ले ईश का सहारा,
मेरे लिए तुम्हीं हो, हूँ ईश मैं तुम्हारा ।

संसार अंश उसका उसमें हि लीन होता,
उससे विमुख हुआ तो केवल प्रलय ही होता,
पर प्रेम जो जगाया वह लीन ब्रह्म में है,
संसार के प्रभव अरु विप्लव में प्रेम ही है ।

संसार नाश-चीजों का एक स्वप्न सुन्दर,
जब तलक मनु है सोया अनभिज्ञ रहा अन्दर,
जब ज्ञान हुआ जागा, संसार है छलावा,
कुछ भी न यहाँ अपना, सब व्यर्थ है, भुलावा ।

कुछ भी न साथ आया, कुछ भी नहीं है जाना,
जिस तन प ऐंठ इतना, इक दिन है जल हि जाना,
भू,पवन,तेज, जल अरु नभ मिलन होत सपना,
हर मिलन का जगत में है अन्त ही बिछुड़ना ।

दोहा- नश्वर है संसार यह; मत कर इससे मोह,
आज मिला कल जायगा; प्रेम करो या कोह ॥ 14 ॥

रहना है सब यहीं पर कुछ संग नहीं जाना,
मत व्यर्थ मनुज रमना, केवल समय गवाना,
सोना हीरा, मोती हैं सब ढेर पत्थरों के,
क्यों व्यर्थ जिन्दगी को करते हो संग इसके ।

संसार, भोग, संग्रह क्यों नित्य प्रीय लागे,
क्यों चाह नई उपजे, क्यों आज तक न जागे,
जो है उसी में मानव क्यों तृप्त नहीं होता,
क्यों और-और चाहत में जिन्दगी को खोता ।

तन और यह जगत भी होते अनित्य नश्वर,
संसार बदलता है, होता शरीर जर-जर,
तन बाल,वृद्ध, यौवन, रोगी सुखी-दुखी है,
मर-मर के मर रहा है अनभिज्ञ नित्य से है ।

मन,बुद्धि,इन्द्रियों से संसार देखते हैं,
नित-नित नवीन रस को जीवन में घोलते हैं,
है सत्य जग के ऊपर कैसे उसे हम जाने,
आनन्द-सत्त-चित का कैसे स्वरूप माने ।

है आत्म कर्म, बुद्धि, मन, अरु इन्द्रियों का त्यागी,
जड़ता को त्यागता है अरु चेतना का रागी,
जो स्वयं आतमा को ईश्वर ही नित माने,
साधक वही है सच्चा जो परम सत्य जाने ।

दोहा- और-और की चाह में; बीता जीवन तोर,
अन्त काल लख मनुज क्यों, पछताता कर सोर ॥ 15 ॥

संसार कर्म शाला फल रहित कर्म करना,
होता है इस जग का अति श्रेष्ठ लक्ष्य गहना,
बिन कर्म जग में कोई, मानव न जी सका है,
पर कर्म से न बँधता वह मुक्त देवता है ।

संसार प्रेम स्थल अपने को जगने का,
है सत्य-तत्व सब में इसको हि मानने का,
जब भेद रह न जाये अपने पराये घर में,
वह नित्य तत्व दीखे सबके अन्तस्थल में ।

सुख - दुख में सब होंगे नित ही सुखी-दुखी तब,
संग्रह व चाहना का भूखे न होगे तुम तब,
निश्वार्थ हृदय होगा करने लगोगे सेवा,
जो धार वह चलेगी पहुँचेगी नित्य देवा ।

संसार सरल होता झर-झर झरे ज्यूँ सरिता,
बहती है नित हवा ज्यूँ, होती सरस ज्यूँ कविता,
जीवन से ले मरण तक नित प्रेम बह रहा है,
जिसको जगत में कोई नहिं रोक ही सका है ।

दोहा - पावन निर्मल सरल अति, यह सुन्दर संसार,
ज्यों निर्मल कविता बहे, झर-झर झरना धार ॥ 16 ॥

तू सार प्रेम को ही, इस संसृति का जानो,
बिन प्रेम नहीं जग में, कुछ होत सत्य मानो,
जीवन है प्रेम-दायी, यह प्रकृति है बताती,
यह जन्म प्रेम से है, अरु मृत्यु है सुहाती ।

जब प्रेम धार सूखे तो प्रलय भयंकर है,
यह उतना ही सत है, जितना नभ रविकर है,
ज्यों सूखी सरिता में जल-बूँद नहीं रहता,
प्यासे की प्यास बता क्या तृप्त कभी होता ।

बालू रह जाता है; रस हीन उड़ा करता,
जिससे न किसी घर का दीवार कभी बनता,
वैसे ही प्रेम बिना संसार नहीं चलता,
मानव का मानव से व्यापार नहीं सजता ।

जीवन रह जाता है सूखी इक डाली सा,
जिस पर न किसी खग का होता न कभी वासा,
मानव मानवता से नीचे गिर जाता है,
कामी, क्रोधी जीवन बन कर रह जाता है ।

जब प्रेम नहीं मन में मानव दानव होता,
विद्या पा कर लेता नित ही विवाद गोता,
धन पा मद में पागल, अभिमान भरा रहता,
जब शक्ति मिली उसको पीड़ित ही नित करता ।

दोहा - प्रेम बिना जीवन निरस, ज्यों बालू का ढेर,
नहीं मिले पानी तहाँ; नहीं बने गृह, डेर ॥ 17 ॥

प्रेमी विद्या पा कर ज्ञानी है बन जाता,
बिन प्रेम भक्ति बोलो कब ईश्वर को भाता,
प्रेमी धन पाया तो दानी बन जाता है,
पर रक्षा में अपनी निज शक्ति लुटाता है ।

संसार प्रेमियों का इक सुन्दर बगिया है,
जिसमें गुण ही गुण है, कमियाँ ही कमियाँ हैं,
शीतल अरु शुद्ध पवन कोने-कोने बहता,
निर्मल जल पीने को जग में वह नित भरता ।

उत्पन्न अन्न होता धरती की महिमा है,
जिस पर आश्रित सारे जग की ही गरिमा है,
गर्मी, शर्दी, वर्षा, ऋतुएँ आती जाती,
है धूप कभी छाया, सुख-दुख सा बरसाती ।

नित कर्मों के संग ही सुख-दुख आते जाते,
जो कर्म किया हमने सुख-दुख वैसा पाते,
होता है कर्म यहाँ हर सुख-दुख का कारण,
कुछ कर्म नर्क देते कुछ होते हैं तारण ।

संसृति में हलचल है, तो कर्म उसे कहते,
हर पुनर्जन्म निर्भर ही कर्मों पर रहते,
कर्मों से भावों का निर्माण सघन होता,
भावों पर आकृति अरु निर्भर योनी होता ।

दोहा - कर्मों का फल सुख-दुखः; स्वर्ग नरक मिल जाय,
जैसी तेरी भावना, योनी आकृति पाय ।। 18 ।।

जैसा है भाव रहा वैसी योनी मिलती,
वैसा ही रूप मिले; क्यों करते हो मिनती,
सब कर्मों का फल है, इतना विश्वास करो,
है कर्म सत्य जग में कर्मों पर आस करो ।

शुभ अशुभ कर्म से ही है यह संसार बना,
संसृति कोने-कोने छाया है कर्म घना,
जो चाहे सो ले लो, तेरे पर निर्भर है,
शुभ अशुभ कर्म का तो जग एक समुन्दर है ।

कर्मों से ही कोई ऊँचा मानव बनता,
कर्मों से ही जग में नीचा मानव होता,
यह तुम पर निर्भर है किस पथ के राही हो,
सुख-दुख को कोस रहे, भरते मन स्याही हो ।

जो भीतर रंग तेरा वैसा ही दीखेगा,
रँगने वाले पर क्यो; दोषी तुम; चीखेगा,
वह तो तेरे रंग से तुमको ही रँगता है,
तेरे ही सम्मुख वह तुमको नित रखता है ।

जो चाहे सो लिख लो तेरा मन कोरा है,
देखो मन-गागर में क्या सागर घोरा है,
काला पाला, नीला या लाल गुलाबी है,
या कोरा का कोरा रख कर सैलाबी है ।

दोहा - मन मेरा स्वच्छन्द है, जो चाहे लिख चन्द,
काला, पीला, नील या कोरा रख निर्द्वन्द ।। 19 ।।

या ऊषा के रंग में रंग लाल हो गये हो,
या ईश्वर में रंग कर ओंकार हो गये हो,
सब कुछ तुम पर निर्भर अपने को पहचानो,
संसार बसा तुममें तुम संसृति को मानो ।

अन्दर की ऊर्जा ही संसार बना सकती,
यदि आत्म योग हो तो ईश्वर प्रगटा सकती,
तू आत्मा में झाँको सारी संसृति दीखे,
ना गैर और अपने में भेद कहीं दीखे ।

ना जीव-जीव में भी अन्तर रह जायेगा,
तरु पौधों में जीवन का रंग दिखायेगा,
संसार सिमट छोटा सा हिय बन जायेगा,
संसृति सरवस हिय में लहरा लहरायेगा ।

हर धर्म, कर्म, जीवन तेरा अपना होगा,
हर सुख-दुख का साथी तेरा सपना होगा, ।
माधुर्य और ममता से जग श्रृँगार करे,
कण-कण में प्रेम रहे, प्यारा संसार फरे ।

मन में तू झाँक जरा संसृति कोना-कोना,
कण-कण दीखे तुमको प्रेमी तू, मत खोना,
बिन प्रेम नहीं भक्ति, भक्ति बिन ईश नहीं,
ईश्वर बिन संसृति में कोई भी तृप्त नहीं ।

दोहा - **प्रेम बिना नहिं भक्ति हो, भक्ति बिना नहिं ईश,**
ईश बिना सुख शान्ति नहिं; होता केवल टीस ॥ 20 ॥

तेरा मन निर्मल है तो जग तेरे भीतर,
हर जीव ईश दीखे, गदगद होता अन्तर,
हर प्राणी का सुख-दुख हो जाता है अपना,
हर जीवन में ईश्वर का छा जाता सपना ।

मन सुन्दर भावों से संसार बनाता है,
हर जीवों को हिय में ले ज्योति जगाता है,
जैसे विस्त्रित सागर हर लहरों का प्यारा,
वैसे ही निर्मल मन को भाये जग सारा ।

कोई न यहाँ छोटा; होता कोई न बड़ा,
हर जीव ब्रह्ममय है फिर कैसा है झगड़ा,
हर प्राणी से ममता अरु समता का नाता,
ना है कोई आता, ना है कोई जाता ।

मन है तेरा निर्मल, निर्मल तू रहने दो,
मन बगिया को सुन्दर भावों से भरने दो,
माधूर्यमयी भावों से बगिया महकेगी,
सुन्दरता तो नित ही अन्तस्थल चमकेगी ।

मन को इतना निर्मल तू कर दे जैसे जल,
पी कर हो तृप्त स्वयं, गैरों का अन्तस्थल,
मन से संसार बना, मन से विचार निर्मित,
मन से ही मानवता, मन से संसृति हर्षित ।

दोहा- मन निर्मल हो जग दिखे, जैसे गंगा नीर,
डुबकी लो, पीओ, तरो, बैठ मनुज तू तीर ॥ 21 ॥

मन से ही सुख-दुख का निर्माण सदा होता,
मन से अपने-पर का संचार सदा होता,
मन से ही नीक-बुरे का नित पहचान हुआ,
मन से ही परमात्मा का हमको ज्ञान हुआ ।

मन में निवास करता है काम क्रोध प्रतिपल,
हर कर्मों का होता है वह उद्गम स्थल,
नित अच्छे और बुरे हर भाव यहीं उठते,
मन एक समुन्दर है, मनु डुबते अरु तरते ।

मन का निर्मल होना ही मानव सद्गुण है,
मन का कोमल होना ही मानवता क्षण है,
माधूर्य भरा मन हो तो जग आँगन होता,
मन में छाई समता जो हिय में ले गोता ।

मन ही इन्द्रिय दासी, मन ही स्वामी होता,
मन होता निष्कामी, मन ही कामी होता,
मन नित्य सारथी है, मन को बस में कर लो,
जग यात्रा शुभ होगी मन को निर्मल कर लो ।

तू मन की बगिया को खुशबू से यूँ भर दे,
सुरभित सारा जग हो, मोहित सबको कर दे,
हर जड़-चेतन सारा अपना ही प्रिय लागे,
मद, मोह, लोभ, कामी, क्रोधी जीवन भागे ।

दोहा - सागर सम संसार है, मन डूबत उतरात,
समता-बुधि पतवार कर, पार उतर वह जात ॥ 22 ॥

निर्मल मन होगा तो मानवता भी होगी,
होगे तू इस जग में संसृति तुममें होगी,
हर रोम-रोम तेरा जग पर अर्पित होगा,
तेरे खुश होते ही जग भी हर्षित होगा ।

तू मन के आँगन को इतना विशाल कर लो,
संसार-सार को ही हँसते-हँसते भर लो,
निर्मान, अक्रोधीपन, निष्काम युक्त जीवन,
निर्द्वन्द तुम्हारा मन, होगा ही नन्दन-वन ।

ईश्वर आ जायेगा तेरे शुभ कर्मों में,
तेरे हर वाणी में, तेरे हर धर्मों में,
मन नित्य रहे योगा, तू ईश्वर मय होगा,
संसृति का सुख-दुख ही तेरा सुख-दुख होगा ।

आँखों में तुम भर लो इस सारी संसृति को,
ज्यों ममता भरती है अपने हर संतति को,
कुछ भेद नहीं रखती, कैसा भी रंग रहे,
कैसा भी कर्म रहे, कैसा भी धर्म रहे ।

वैसे गुण-दोषों को बिन देखे अपना लो,
शिशु सा सब भूखे हैं, आँचल में तुम भर लो,
संसार सिमट तेरे आँचल में आयेगा,
तेरा मन गंगा सा पावन हो जायेगा ।

दोहा- माता सम तू कर हृदय, ता में जगत समाय,
हो कोई भी धर्म, पथ, भेद नहीं रह जाय ।। 23 ।।

जो सर-सर-सर सरके, संसार उसे कहते,
सब सरक रहा अविरल, तुम रोक नहीं सकते,
कोई भी घटना हो या स्थिति हो कोई,
कोई भी वस्तु भले मिटते हैं सब कोई ।

इसलिए मोह मत कर, संसार नहीं तेरा,
सब मिटने वाला है, क्यों माया है घेरा,
अविनाशी है आत्मा, जो सबका है अपना,
वह अंश ब्रह्म का है, बाकी सब है सपना ।

कह कर संसृति की सच्चाई शिष्यों के हिय में शान्ति हुई,
सुन जनता के मन मंदिर में लहरात अलौकिक क्रान्ति हुई,
संसृति की सुन जीवन गाथा, मन अन्दर मानवता जागी,
अपना हो कोई गैर यहाँ, सबके प्रति निर्मलता जागी ।

गुरु का धर ध्यान प्रणाम किये, मन ही मन चरणों में झुक कर,
हे नाथ कृपा इतनी करना, बढ़ता जाये यह पग पथ पर,
जीवन की सार्थकता गाऊँ, गुण-गान निरन्तर ईश्वर की,
गुरु के ही आशीर्वादों से दर्शन हो जाये हरि हर की ।

दोहा- शत-शत तुम्हें प्रणाम है, हे सद्गुरु भगवान,
कृपा करो संसार पर, होये नित्य बिहान ।। 24 ।।

।। अष्टम सर्ग ।।

धर्म

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

अष्टम सर्ग

धर्म

जब मानव-मानव के हिय में कछु भेद न भाव का नाम रहे,
चित निर्मल, उज्ज्वल, पावन हो अरु, कर्म स्वभाव में आम रहे,
जब चित्त स्वभाव हि कर्म बने जग में नित कर्म का मान रहे,
तब संसृति में वह धर्म बने कवि, संत, महंत व चन्द्र कहे ।

जब मानव के मन धर्म जगे तब शान्ति रहे इस संसृति में,
जब स्वार्थ नहीं परमार्थ जगे तब ईश निवास करे हिय में,
जब ऊँच न नीच न हिन्दु कोई इसलाम न सिक्ख रहे जग में,
तब चन्द्र कहे हर मानव में इक मानवता ही रहे सब में ।

जब शीतल मंद सुगन्ध बहे तो उसे ही हवा दुनियाँ कहती,
मृदु मंथर-मंथर नीर बहे तो वही दरिया कहला सकती,
जिसके मन धर्म भरा ही नहीं, हिय में नहिं मानवता बसती,
कह चन्द्र वहाँ न दया रहती, उसको दुनियाँ पशुता कहती ।

शुद्ध चित्त का आचरण; होता मानव धर्म,
धारण करना मनुज का; है स्वभाव सतकर्म ।

पर सेवा से बड़ा नहिं; धर्म जगत में कोय,
अपने को सुख होत है; गैरों को सुख होय ।

स्वयं अंश है ईश का, तन है जग का अंश,
धर्म ब्रह्म प्रति प्रेम है, जगत प्रेम विध्वंश ।

दान, तीर्थ, तप, ध्यान, व्रत, चिन्तन और समाधि,
पर-हित हेतु स्वधर्म है, निज-हित होवत बाधि ।

त्याग, तपस्या प्रेम ये; तीनों होते धर्म,
इनकी सिद्धि स्वभाव है, इनकी गति है कर्म ।

धर्म न चीन्हें जाति को, ऊँच-नीच, नर-नार,
धर्म मनुज के चित्त का सुन्दर शुद्ध विचार ।

मानव ! मानवता जहाँ, वहीं धर्म का ठाँव,
हो मन्दिर मसजिद चरच, अथवा हो वह गाँव ।

प्रेम दया का मूल है, प्रेममयी संसार,
जितना करते प्यार तुम, उतना हो विस्तार ।

जिस मन में उपजे नहीं, दया जीव प्रति जान,
वह मानव, मानव नहीं, होता है सैतान ।

दया मनुज का धर्म है, सब धर्मों का छोर,
जो नहिं जाता पथ उधर, जाय नरक की ओर ।

हिन्दू मुसलिम से जले, हिन्दू से मुसमान,
जलन सुहाये जिस हृदय; उस हिय नहिं भगवान।

जिस मन उपजे प्रेम नहिं; उस मन घृणा समाय,
जिस मन सेवा भाव है, उस मन दया सुहाय ।

मैं,मेरा दरिया जहाँ, और स्वार्थ लहराय,
रहती ममता, कामना, दया नहीं रह जाय ।

दया करो हर जीव पर, मानवता कहलाय,
दया सहारे आपना; ईश्वर भी हो जाय ।

सत-गुरु का जब आशीष मिले,
जब शिष्य कर्म पथ अपनाये,
जब कर्म धर्म बन जाये तब,
संसार स्वर्ग यह कहलाये ।

जब जनता मन जागृत होता,
जब युवा वर्ग ले अँगड़ाई,
जब वृद्ध हृदय खिलखिला उठे,
तब मानों बासंती छाई ।

जब ईश्वर, अल्ला स्वर गूँजे,
मन्दिर, मसजिद आबाद रहे,
जब गुरूओं का सम्मान बढ़े,
तब ही मानों इन्सान रहे ।

जब वर्ग भेद ना रह जाये,
नहिं सम्प्रदाय का नाम रहे,
आतंक नहीं मन में छाये,
हर मन में धर्म समान रहे ।

जब मानव मानवता समझे,
भाई-भाई को अपनाये,
नारी की इज्जत के खातिर,
शासन समाज आगे आये ।

दोहा - गुरु का हो आदर जहाँ, शिष्य होय गुणवान,
उस समाज का विश्व में, होता नित सम्मान ॥ 1 ॥
नारी की इज्जत रहे, भेद भाव नहिं होय,
अस विचार इस विश्व में, मानवता ही बोय ॥ 2 ॥

जब मात-पिता पूजे जायें,
जब बालक ध्रुव बनकर आयें,
जब संसृति के हित के खातिर,
साधू दधीचि बन जग छाये ।

जब कदम मिला कर साथ-साथ
नर नारी बढ़ने लगते हैं,
जब भेद भाव को एक मंच
पर बैठ समझने लगते हैं ।

जब मातृ भूमि की सेवा का
सदभाव हृदय में आ जाता,
जब कानों में नित बैरी का
ललकार समझ में आ जाता ।

दोहा - करो शुद्ध चित आचरण; सब मत भेद मिटाय,
मिला कदम से कदम तुम; हो जा जगत सहाय ॥ 3 ॥

तब मानो कर्म प्रवाह बढ़ा,
जीवन में सच्चा प्यार चढ़ा,
तब मातृ-भूमि के प्रति हिय में,
जीवन अर्पण का भाव-बढ़ा ।

मानव मन में जब ज्योति जले,
हर जीवन के प्रति भाव बढ़े,
पेड़ों पौधों के प्रति मन में,
अपनेपन का मृदु भाव बढ़े ।

हर हृदय प्रेम से भरा रहे,
हर जीव ईश सम मन भाये,
जग में न विरोध कहीं दीखे,
अरु नहीं शत्रु कोई आये ।

जब होता ऐसा पावन हिय,
जिसमें सारा जग भर जाये,
तब शत्रु मित्र में भेद नहीं
अपनों सा संसृति मन भाये ।

तब अमिय प्रेम धारा बहती
तब दया मधुर गुंजन करती,
हर मानव की सेवा करना,
मानवता सीख-सिखा जाती ।

दोहा - प्रेम भरा हो हृदय में; तो जग दीखे प्रेम,
अरु सारा संसार यह; दीखे रत निज नेम ॥ 4 ॥

तब मानव मानव कहलाता,
तब स्नेह हृदय में भरता है,
तब मिलने पर मानव मन में
आनन्द फूल सा खिलता है ।

भर जाये मन में मानवता
सारा जग अपना ही दीखे,
हर जीवन के प्रति दया, धर्म
अरु स्नेह भरा यह जग दीखे ।

जब तक नहिं मानव मान रहित
जब तक न आत्म मंथन होगा,
हो द्वेष रहित जब तक, नहिं मनु
पर सेवा में नहिं रत होगा ।

जब तक नहिं जाने अपने को,
ना जाने जग की गहराई,
जब तक आत्मा-परमात्मा की
जाने नहिं अद्‌भुत सच्चाई ।

तब तक नहिं धर्म जगे मन में
तब तक न कर्म ले अगड़ाई,
तब तक नहिं आत्म परीक्षण हो
तब तक नहिं जाने सच्चाई ।

दोहा - जानो अपने आप को; जानोगे संसार,
एक सचाई है यही, अन्दर ही भरतार ।। 5 ।।

जब मानव में सत भाव बढ़े,
जब हरिश्चन्द्र अवतार बढ़े,
जब गुरु की सेवा करने की
मानव मन में सद्‌भाव बढ़े ।

तब जानों मानवता छाई,
संसृति मर्यादा मन भाई,
जब सदाचार मानव मन में
तब मानों जग प्रभुता आई ।

जब सीता सवित्री भू पर,
फिर संसृति में पूजे जाये,
जब नारी का नारीत्व जगे
मानवता मन में, छा जाये ।

जब नारी मर्यादा खातिर,
लालों को अर्पित करती हो,
धरती की रक्षा करने को
कर में ले खड़्ग उमड़ती हो ।

तब जानों धर्म धरा छाई,
प्रभुता मानव मन में आई,
जीवन आनन्द विभोर हुआ,
चहुओर सत्य ले अगड़ाई ।

दोहा - मानव मन जब शुद्ध हो; नारी का सम्मान,
तब जानो संसार में;धर्म होत उत्थान ।। 6 ।।

तब दिग-दिगन्त में स्वर गूँजे,
तब मानवता ले अगड़ाई,
जो कल तक सिसक रही धरती
वह आज उच्च स्वर में गाई ।

जागो हे मानव फिर जागो
अब सोने का है समय नहीं,
सोना तम गुण है फैलाता
जो दे सकता है अभय नहीं ।

यह काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ
हिंसा, आतंक स्वभाव नहीं,
यह बात-बात में टकराना
मानव तेरा है भाव नहीं ।

जैसे जल का गुण शीतलता,
पावक का नित्य जलाना है,
जैसे नदियों का कल-कल कर
बहना गुण और बहाना है ।

ज्यों मेघ बरसने में पाता
सार्थकता अपने जीवन की,
ज्यों पवन निरन्तर बह-बह कर
एहसास दिलाता होने की ।

दोहा - निज स्वभाव में जो जिआ, वह ही हुआ महान,
चाहे हो वह दैत्य या देव मनुज तू जान ।। 7 ।।

जैसे हर बीज नष्ट हो कर
नव अंकुर को जीवन देता,
गुण ही तो है उस शावक में
यौवन हो शेर सबल होता ।

जैसे सागर में गहराई,
उत्ताल तरंगों का होना,
नित मेघ रूप में धरती पर
बरसा - बरसा जीवन देना ।

संसृति की नदियों को लेना,
फिर भी नित अचल, अटल रहना,
यह मर्यादा होती उसकी,
कहते हैं सागर का होना ।

ज्यों महा प्रलय का गुण होता,
धरती पर जल प्लावन करना,
जब महा प्रभव क्षण आता है,
तब जीवन का उद्भव होना ।

ज्यों प्रकृति निरंतर मर्यादित
निज गुण से नित्य प्रशासित है,
त्यों मानव अपनी मानवता
के गुण से नित अनुशासित है ।

दोहा - सबका अपना धर्म गुण; इस संसृति में होय,
मर्यादित प्लावन प्रभव, अनुशासित सब कोय ॥ 8 ॥

मानव स्वभाव चिर-निर्मलता,
जब तक निर्मल है धर्म यही,
करुणा अरु प्यार रहे चित में,
है मानवता का कर्म यही ।

जब शुद्ध चित्त इस जीवन का
नित शुद्ध आचरण बन जाए,
तो धर्म इसी को कहते हैं
मन, वाणी निर्मल हो जाये ।

मानव स्वभाव हो शुद्ध चित्त,
तो कर्म शुद्ध बन जाता है,
अपने स्वभाव को पहचानो
गुण आप प्रगट हो जाता है ।

निर्मल चित सत्य, अहिंसा का
करुणा, ममता का सागर है,
माधूर्यमयी उज्ज्वल पावन
अरु दया धर्म का गागर है ।

चित को मैला मत होने दो
वरना मन में नित द्वन्द रहे,
अरू काम, क्रोध, ईष्या, ममता,
आसक्ति हृदय में बंद रहे ।

दोहा- तब चित मैला होत है; द्वन्द-राग भर जाय,
काम, क्रोध, आसक्ति अरु ईष्या भीतर छाय ॥ 9 ॥

मन में विकार जब नहीं रहे,
तब शुद्ध शान्ति रह जाती है,
मन शुद्ध शान्त तो वाणी अरु
आचरण शुद्ध हो जाती है ।

मन मैला जिसका होता है,
फल मैला उसको मिलता है,
यह नियम सभी पर लगता है,
हिन्दू, मुसलिम क्यों कहता है ?

चित को विकार से मुक्त करो
यह आज सत्य है कल भी था,
अरु हर आने वाले कल में
यह सत्य रहेगी आत्म कथा ।

इसका न कभी भी आदि रहा,
इसका न कभी भी अन्त रहा,
यह धर्म सनातन कहलाता
इसलिए अनादि, अनन्त रहा ।

हे मनु तू धर्म करो धारण,
है यह जीवन का अर्थ सही,
बिन धर्म धारण के किसका
कब हुआ बता उत्थान मही ।

दोहा - शुद्ध चित्त, सम आचरण; साधो जब हो जाय,
धर्म इसी का नाम है, मनुज स्वभाव कहाय ।। 10 ।।

परखो अपने को अपने में
क्या धर्म ग्रहणकर लिया हृदय,
वाणी, कर्मों से पहचानो
हो रहा आचरण क्या मनुमय ।

वाणी कठोर तो नहीं हुई,
पर-निन्दा में आसक्ति कहीं,
कहिं स्वार्थ नहिं तो कर्मों में,
आहत जो करता नहीं कहीं ।

ठगता हूँ क्या मैं वाणी से
अनजान अनर्गल बातें कर,
चुगली करता तो कहीं नहीं
मन में मैं अभिमानी बन कर ।

क्या कर्म हमारे हिंसक हैं,
क्या कर्म हमारे कामी हैं,
क्या कर्म हमारा चोरों सा,
क्या कर्म हमारे मानी हैं ।

हो रहा आचरण क्या दूषित
क्या पथ मेरा अभिमानी है,
औरों को दुख देकर अपना
क्या चाह रहा फल नामी है ।

दोहा - बुधि विवेक से स्वयं को, अपने आप निहार,
और नहीं औषधि कहीं; परखन को संसार ॥ 11 ॥

कर्मों से अपना पहचानों,
वाणी से चित को तुम जानों,
जब शुद्ध चित्त होगा तो फिर
सब कर्म सहज होगा मानो ।

यदि चित तेरा मैला होगा
वाणी भी मैली ही होगी,
यदि कर्म तुम्हारा मैला है
तो भाव कुचैली ही होगी ।

यह धर्म तर्क का विषय नहीं
यह तो जीने की शैली है,
जिसमें करुणा अरु प्रेम, दया
जिससे मानवता फैली है ।

हिन्दू, मुसलिम तो धर्म नहीं
नहिं सिक्ख धर्म, नहिं ईसाई,
नहिं बौद्ध जैन है धर्म यहाँ
है धर्म चित्त सुन्दरताई ।

कैसे पहचानोगे जग में
क्या सत है अरु क्या सुन्दर है,
पहले मन को स्थिर कर लो
फिर हिय को देख समुन्दर है ।

दोहा - हिन्दू मुसलिम आदि नहिं, मानव धर्म कहाय,
धरम शान्ति की राह है, सुन्दर एक उपाय ।। 12 ।।

झाँकों अपने हर कर्मों पर
क्या पर को वह सुख है देता,
क्या नित्य धर्म के पथ पर चल
मानव के मन को हर लेता ।

है कर्म तुम्हारे सत कर्मी
तो चित्त तुम्हारा शुभ होगा,
चित शुद्ध तुम्हारा होगा तो
आचरण शुद्ध भी नित होगा ।

तुमको नित यह लखना होगा
हो जाये शुष्क न कर्म कहीं,
तुम मन के मालिक हो प्यारे
हो जाये मालिक मन न कहीं ।

जब तुम मन के मालिक होगे
तो शुद्ध बुद्धि तेरी होगी,
चित करुणा से भर जायेगा
आत्मा में सत्य शान्ति होगी ।

जब स्वाभाविक गुण शक्ति बने,
तो मानव शोभा बढ़ जाती,
जीवन के सुन्दर राहों पर
चल कर नित सुषमा फैलाती ।

दोहा - प्रेम बिना संसार में; मिले न सुख अरु शान्ति,
मिलत शक्ति आनन्द की; फूटे अनहद कांति ॥ 13 ॥

धर्म त्याग है, धर्म प्रेम है,
धर्म बोध है, धर्म नेम है,
धर्म राह सत-स्वाभाविक है,
धर्म कर्म है, धर्म मर्म है ।

केवल तुम छोड़ अधर्म चलो
जो शेष रहे है धर्म वही,
हिंसा छोड़ो जो शेष रहे
है सत्य-अहिंसा कर्म मही ।

निष्कामी बन, त्यागी जीवन,
तुम बनो अनामी अरु ज्ञानी,
परिग्रह को त्याग बढ़ो, आगे
हो जाओ अपरिग्रह गामी ।

जो छोड़ चला है चोरी को
जग में अचौर्य कहलाता है,
तो तजा प्रमादी जीवन को
वह अप्रमाद हो जाता है ।

जो सेवी, निर्लिप्ती, प्रेमी
निष्कामी, निर्मम, धर्मी है,
उसका जीवन निर्मल उज्ज्वल
उसका पथ सुन्दर कर्मी है ।

दोहा - अप्रमाद, अचौर्य अरु; अपरिग्रही सुजान,
सत्य-अहिंसा जिस हृदय; मानव वही महान ॥ 14 ॥

आसक्ति और कामी रागी
स्वार्थी, द्वन्दी अभिमानी हैं,
वे छोड़ चले अपना स्वभाव
ऐसे नास्तिक पाखंडी हैं ।

मानव स्वभाव मानवता है
हे मानव तुम तो देख जरा,
जिसमें मन, बुधि इन्द्रिय विवेक
होते सहयोगी और खरा ।

यह कर्म योग अरु ज्ञानयोग
मानव का धर्म कहाता है,
इस भक्तियोग अरु प्रेमयोग
से मानव ऊपर जाता है ।

कारण तन से या शूक्ष्म, स्थूल
जितने भी ब्रत अरु तीर्थ किये,
सब दान, ध्यान, तप अरु समाधि
यदि तुम पर हित के लिए किये ।

तो होता वह निष्कर्म धर्म,
अति परम शान्ति देने वाला,
अरु संसृति में रहते-रहते
भव मुक्त तुम्हें करने वाला ।

दोहा - जप, तप, ध्यान व दान, व्रत; है स्वभाव मन प्रान,
जो मानव इस पथ चला; मुक्त हुआ वह जान ।। 15 ।।

पर स्वार्थ भाव से प्रेरित जो
अपने हित पर ही दृढ़ होते,
शुभ कर्मों की राहों से हट
वे बीज स्वार्थ का ही बोते ।

मत बढ़ो स्वार्थ राही बन कर
वरना तुम भटकोगे पथ पर,
चौरासी में पड़ बार-बार
तुम दुख भोगोगे जन्मान्तर ।

इसलिए शुद्ध चित में आओ
व्यवहार तुम्हारा शुद्ध बने,
धारण करना है धर्म तुम्हें
आचरण तुम्हारा शुद्ध बने ।

दोहा - सत, सुचि, सुन्दर चित बिना; मानव नहिं कल्यान,
बिना धर्म धारण किये; होत न जगत महान ।। 16 ।।

तू सर्व प्रथम कर चिन्तन मन
फिर आत्म जगाओ मनु अपना,
फिर चलो आत्म निर्माण राह
फिर आत्म विकास करो अपना ।

जब तक न करोगे तुम चिन्तन
तब तक गहराई क्या जानो,
तेरा आत्मा से क्या नाता
सच्चाई कैसे पहचानो ।

क्या जानो सबके हृदय तले
करुणा का भाव पनपता है,
जो आनन्दित हो कर पर की
सेवा में प्रफुलित होता है ।

उसको ही जग प्रेमी कहता
संसृति को जो अपना माने,
जो निज स्वरूप को जान रहा,
जो परमात्मा को पहचाने ।

जब प्रेम जगे तो दया जगे,
जब दया जगे तब हृदय खिले,
जब हृदय खिले जग अपना हो
चाहे कितना हो गैर भले ।

दोहा - प्रेम जगे जब हृदय तल, जग अपना हो जाय,
रहे न कोई गैर तब, ईश समान दिखाय ॥ 17 ॥

वह सभी जगह अरु कण-कण में
ईश्वर विधान को ही देखे,
उसमें ही वह अन्तर मुख हो
सुन्दर जीवन जीना सीखे ।

ईश्वर विधान सत चित्त सदा
मंगलमय होता है सबको,
सुख देता है, दुख देता है,
पर समता से भरता हमको ।

जिसका मन निर्मल होता है
दुखियों के प्रति करुणा होती,
उसकी आत्मा पुण्यात्मा है
हर जीवन प्रति आस्था होती ।

दुष्टों प्रति उदासीन रहता
पापी प्रति भी निर्मल होता,
ऐसा जब भाव उमड़ता है
तब दया फूल सा मन खिलता ।

जब मन में पश्चाताप उठे
तब लज्जा लेती अगड़ाई,
जब आत्म ग्लानि से भर जाए
तब मान दया मन में आई ।

दोहा- दया धर्म का मूल है, दया हृदय श्रृंगार,
ऊँच नीच सबके लिए, उमड़े हिय धर प्यार ॥ 18 ॥

तब पापी भी करुणामय हो
धर देता खोल हृदय अपना,
छल कपट नहीं रह जाता है
मन हो जाता निर्मल इतना ।

तब मनु को अपना दोष दिखे
जग दीखे निर्दोषी सारा,
अति प्रेमातुर विह्वल होकर
बहता नित स्वच्छ अमिय धारा ।

तब पापी अपने पापों को
पहचान स्वयं ही लेता है,
वह जा कर ईश्वर के समक्ष
हिय खोल मुक्त स्वर रोता है ।

मैं इतना लज्जित हूँ ईश्वर
कि दृष्टि नहीं उठ पाती है,
मैं पाप उदधि में डूब रहा
देखो आत्मा सरमाती है ।

तब अपनी छोटी सी त्रुटि भी
पर्वत समान लगने लगता,
तब बुरे भाव मिट जाते हैं
निर्मल आत्मा होने लगता ।

दोहा - आते ही हिय दया के; मान सभी जर जाय,
निर्मल होये आतमा; करुणा नित बरसाय ॥ 19 ॥

तब निर्मल, पावन, स्वच्छ कुसुम
खिल जाता हृदय कमल उज्ज्वल
जिससे सारा जग सुरभित हो
भर जाता चहुदिश गंगा-जल ।

हर मानव का सुख-दुख अपना,
नहिं भेद-भाव मन रहता है,
चहु ओर ईश छाया दीखे
हिय में आनन्द झलकता है ।

पर भी सेवा में मन लगता
अतिशय उत्साह उमड़ता है,
अपना सारा जीवन अर्पित
करने को नित्य तरसता है ।

तब कोई छोटा नहीं रहे
हर जीवन प्रति आभार बढ़े,
पेड़ों, पौधों, पशु पक्षी प्रति
हिय में आदर सत्कार बढ़े ।

सारी संसृति अपना दीखे
हिय अमिय प्रेम उद्गार लिए,
नहिं शत्रु मित्र कोई अपना
मनु हृदय दया अवतार लिए ।

दोहा - चाहे कीट पतंग हो; पशु पक्षी या पेड़,
सबके प्रति उमड़े दया, रहे नहीं हिय मेड़ ॥ 20 ॥

जब दया हृदय में आती है
तब मानवता मन गाती है,
दुख दर्द जगत का अपना हो
ऐसी करुणा भर जाती है ।

दिन रात नहीं तब दिखता है
मन सेवा हेतु तरसता है,
निज आत्म ज्योति से आलोकित
सारे संसृति को करता है ।

पर की सेवा में सुख पाता
अरु आत्म शान्ति हिय में मिलती,
जीवन जीने की सार्थकता
उसकी आत्मा में नित खिलती ।

जग के सारे पापों को वह
अपना ही पाप समझता है,
जग के सारे दुस्कर्मों को
पावन करने में रमता है ।

सुख-दुख जो भी आता उस पर
माने ईश्वर आशीष उसे,
सह जाता वह हँसते-हँसते,
जैसे आत्मीय मिला उससे ।

दोहा - दया संग श्रद्धा रहे; और रहे विश्वास,
तो सब सुख-दुख ईश के, लागे सुन्दर दास ।। 21 ।।

उसको करुणा ही याद रहे,
दुर्भाव नहीं आये मन में,
जग प्रति न कभी हो घृणा उसे
नित श्रृजन कार्य मन में जनमें ।

कहता हे दयामयी ईश्वर
संसृति का शोक हमें दे दो,
सारी खुशियाँ न्यौछावर तू
मेरे प्यारे जग पर कर दो ।

संसृति के आफ़त, विपदा का
मैं ही केवल अपराधी हूँ,
मेरा अपराध क्षमा कर दो
मैं ही वादी प्रतिवादी हूँ ।

जब ऐसी मानवता आती
जब दया भाव मन में आता,
तब ईर्ष्या और घृणा, निन्दा
लज्जा, भय शरण नहीं पाता ।

सब भाषा हो जाती अपनी
सब में रस मिलने लगता है,
सब में उस ईश्वर की गाथा
आँखों से दिखने लगता है ।

दोहा - घृणा न भाये मन तले; भय न तनिक रह जाय,
निन्दा स्तुति से नहीं, मानव कभी लुभाय ॥ 22 ॥

सारी संसृति अपनी होती,
सीमा न कहीं भी रह पाता,
यह क्षेत्रवाद, यह राष्ट्रवाद
सब मिट निर्वादी बन जाता ।

सब धर्म एक हो जाते हैं
कुछ भेद नहीं दिखता उनमें,
हर धर्म-कर्म एकी होता
उनको दिखने लगता सबमें ।

हर धर्म ग्रंथ पावन होता
ईश्वर वाणी सबमें होती,
चाहे गीता, चाहे बाबिल
चाहे कुरान जीवन मोती ।

हर पथ का लक्ष्य एक होता,
उस परम शान्ति को अपनाना,
सब आ कर एक जगह मिलते
ईश्वर के सब हैं परवाना ।

जब हो जाता यह आत्म बोध
जीवन निर्मल हो जाता है,
अपने स्वरूप का ज्ञान तभी
मानव यथार्थ में पाता है ।

दोहा - सीमा में बँधते नहीं, साधू, संत, दयालु,
सब धर्मों में देखते, ईश्वर एक कृपालु ॥ 23 ॥

तब सम्प्रदाय झूठा लगता
अपना या गैर तुम्हारा हो,
आडम्बर देख घृणा होती,
मंगलमय यह संसारा हो ।

मानव समाज निर्मल पावन
हो एक राह मानव वादी,
हों एक सत्य के सब खोजी
हो संसृति शिव-सुन्दर वादी ।

ना लड़े कहीं हिन्दू बन कर
ना लड़ें, मुसलमाँ मसजिद पर,
है एक यहाँ, दूजा न कोई
मंदिर-मसजिद, अल्ला-ईश्वर ।

समता का हो साम्राज्य जगत
सब गले मिलें सौहार्द हृदय,
हो भाई - भाई का रिस्ता
भर जाता है मन नम्र सदय ।

तब सम्प्रदाय दीवार ध्वस्त
मैत्री, करुणा भर जाती है ।
कल-कल करती निर्मल धारा
दिन रात दया बरसाती है ।

दोहा - सत की हो पहचान जब, समता मन भर जाय,
मैत्री करुणा एकता, शिव सुन्दर हिय भाय ॥ 24 ॥

हर कर्म उसे पूजा लगता
हर कर्म धर्म बन जाता है,
छोटा हो या हो व्यक्ति बड़ा
सबमें ईश्वर दिखलाता है ।

तब अशुभ कर्म चुभने लगते
मन में दृढ़ता आ ज़ाती है,
हिय कोमल हो जाता उसका
तब केवल शान्ति सुहाती है ।

वह अत्याचार नहीं सहता,
चाहे फिर मृत्यु वरण कर ले,
निर्मल चित से निर्मल पथ पर
निर्मल ही भाव पसार चले ।

मन में उत्साह अपार भरे
ममता न रहे मन में कोई,
हर भाव कामना से ऊपर
अरु कहीं वासना है खोई ।

पर पीड़ा से पीड़ित होता
सेवा सतकर्म उसे भाये,
मन में बस एक दुआ होती
सारा जग प्रफुलित हो जाये ।

दोहा - निज स्वरूप ही धर्म है, मानव तू पहचान,
काम,क्रोध,मन मोह का; तनिक न होत निशान ।। 25 ।।

हर कर्म समर्पित संसृति को,
हर अंग जगत पर न्यौछावर,
बस एक भाव उठता मन में
कब हो जाये ईश्वर भाँवर ।

इतना विशाल मन हो जाता
जिसमें भर जाती है वसुधा,
वाणी निर्मल, निर्झर बहती
बन जाती है संसार सुधा ।

सरवस जीवन आनन्द मयी
उसका हो जाता है यारों,
इस संसृति पर अपना सारा
अर्पित कर जाता है यारों ।

ईश्वर अल्ला का भेद नहीं,
उसके मन में रह जाता है,
ईशा, नानक की वाणी से
स्वर एक़ सदैव सुनाता है ।

ना भेद रखो मानव मन में
सबको मेरी मूरति मानो,
संसार हमारा अंश और
जग को मेरी सूरति जानो ।

दोहा - निज स्वरूप में भेद नहिं समता का सहवास,
देखे जग को ईश सम, और आप को दास ॥ 26 ॥

इक पंथ बना अविनाशी को
कैसे नित पहचाना जाये,
कैसे सत-शिव-सुन्दर जग से
आनन्द नित्य पाया जाये ।

कैसे मन में नित फूल खिले
मानवता अपनाया जाये,
कैसे नश्वर तन से जग में
अविनाशी तक जाया जाये ।

हर धर्म एक स्वर में गाता
संसृति में कर्म अमर होता,
नश्वर तन मिटने वाला पर
कर्मों से पुनः जनम होता ।

बन्धन कर्मों से ही होता
कर्मों से मुक्ति यहाँ मिलती,
कर्मों से ही इस जीवन की
सच मानो अन्तिम गति होती ।

यह नाम रूप का झगड़ा तो
केवल मन की उत्श्रृंखलता,
यह ऊँच नीच का भेद भाव
केवल मन की है कामुकता ।

दोहा - मन्त्र एक हर धर्म का, मुक्ति कर्म से होत,
कर्मों से ही अमरता, कर्मों से ही ज्योत ॥ 27 ॥

केवल अपने कर्तव्यों का
जब सोच हृदय में रह जाये,
दूजा मानव है क्या करता
जब ध्यान नहीं मन में आये ।

पूजा बन जाता कर्म सभी
तब पूज्यनीय मानव भाये,
तब कर्मयोग बन जाता है
चित निर्मल पावन हो जाये ।

तब जग का हर स्थल हिय सा
प्यारा पावन लगने लगता,
हर थल मंदिर मसजिद होता
हर जल गंगा जल सा बहता ।

चाहे मंदिर समजिद, गिरजा
चाहे वह होये गुरुद्वारा,
सब जगह दिखे वह एक ईश
सब जगह बहे एकी धारा ।

कुछ भेद नहीं रह जाता है
वन, उपवन, काबा, काशी में,
घर में मंदिर में, कब्रिस्तां
मगहर प्रयाग के वासी में ।

दोहा- धर्म जगे ईश्वर दिखे; जड़ चेतन में जान,
भेद नहीं वन बाग में; घर या कब्रिस्तान ।। 28 ।।

तब जाति, धर्म का भेद नहीं
ना ऊँच - नीच का भेद रहे,
मानव हो या पशु पक्षी हो
तरु ना काहू में भेद रहे ।

ईश्वर, अल्ला, ईशा, नानक
सब में बस एक ब्रह्म दीखे,
सबकी वाणी में एक सत्य
अरु एक तत्व सबमें दीखे ।

तब वेद, बाइबिल, गीता अरु
गुरु ग्रंथ, कुरान अभेद दिखे,
हर पंक्ति संदेशा ईश्वर की
अरु निज स्वरूप सबमें दीखे ।

तब प्रकृति अजानी नहीं रहे
हर भेद प्रगट हो जाता है,
तब भावी सारी ही बातें
निज आँखों में छा जाता है ।

कब हुई प्रगट है यह धरती
कब दुख - सुख है आने वाला,
कब महा प्रलय होगा संसृति
कब ब्रह्म प्रगट होने वाला ।

दोहा- धर्म राह में भेद नहिं; जाति नहीं रह जाय,
एक ब्रह्म की भावना; हृदय तले लहराय ॥ 29 ॥

जब आत्म बोध हो जाता है
तब ब्रह्ममयी संसृति दीखे,
कब क्या घटना घटने वाली
नहिं रहे अदृष्य बिना दीखे ।

व्याख्यान दिये; दे मौन हुए
अवलोक रहे सब शिष्य हृदय,
जनता व्याकुल आतुर बैठी
सुन रही धर्म व्याख्यान विनय ।

सुन हतप्रभ थी सारी जनता
जब सुनी धर्म है राह सही,
हिन्दू - मुसलिम मंदिर-समजिद
में भेद भाव ना राज कहीं ।

हम व्यर्थ लड़ रहे अंधे हैं
लड़ना है अपने से लड़ लो,
घुसना है तो अन्तस्थल में
घुस कर प्रकाश हिय में भर लो ।

हिय में प्रकाश जब होगा तो
सत कर्म सदा होंगे, सच है,
सतकर्म धर्म का प्रगट रूप
हर मानव का जीवन रस है ।

दोहा - जो पहचाना धर्म को; भेद-भाव को त्याग,
चला आत्म की खोज में; चन्दर जग से भाग ॥ 30 ॥

यह सोच-सोच सारी जनता
कर फैलाये व्याकुल दौड़ी,
हे धर्म प्रचारक शिष्य गणों
सुन लो मेरी विनती थोड़ी ।

हम अज्ञानी हैं क्या जाने
इन गूढ़ रहस्यों की भाषा,
हमको तो जग की मायावी
जंजालों ने कसकर फाँसा ।

बस आप कृपा इतनी करना
इक बार यहाँ पर आ जाना,
हम लोगों की डुबती नैया
को फिर से पार लगा जाना ।

हिय में तुम ज्योति जलाये हो
तू बारम्बार जला जाना,
बुझ जाये कहीं न यह दीपक
तू कृपा और बरसा जाना ।

दोहा - जागी जनता हृदय में; अमिट अटल विश्वास,
श्रद्धा करुणा खिल उठी; चारो ओर सुवास ॥ 31 ॥

हम इतना ही बस जान सके
संसार हमारा अपना है
हर हिय में बैठा एक ब्रह्म
जग उसका सुन्दर सपना है ।

हो विह्वल सब योगी बोले
मैं एक सार यह बलताऊँ,
तू भूल नहीं जाना इसको
बस दान यही तूमसे चाहूँ ।

जो कर्म तुम्हारे ईश्वर प्रति
सब धर्म कहाते हैं मानव !
पर हित में लग जाने वाला
सब कर्म कहाता है मानव ।

संसृति को आज जरूरत है
तू कर्मयोग पथ अपनाना,
जीवन की सारी सच्चाई
इस पथ पर है तुमको पाना ।

यह कह कर योगी चले गये
अनजाने पथ पर दीवाने,
औरों को इस संसार तले
सत धर्म कर्म को बतलाने ।

दोहा- प्रेम बिना संसार में; फूले फले न धर्म,
ज्यों सदगुरु बिन ज्ञान का; जान सके नहिं मर्म ।। 32 ।।

॥ नवम सर्ग ॥

प्रेम

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

नवम सर्ग

प्रेम

प्रेम ही ब्रह्म व प्रेम ही जीव है, प्रेम ही योग, वियोग कहावे,
प्रेम ही पंच महाभूत है अरु प्रेम ही इन्द्रिय प्राण सुहावे,
प्रेम ही आश्रम है जग का अरु प्रेम से देह, मही बन जावे,
चन्द्र कहे नहिं शेष कहीं जहँ प्रेम प्रभा दिन-रात न छावे ।

कृत-कृत्य वही, पूजनीय वही अरु प्रेम ही भाव समर्पण जानों,
प्रेम ही इन्द्रिय, बुद्धि, विवेक व प्रेम को ज्ञान का रूप बखानों,
दान,दया,जप,ध्यान, समाधि औ योग व भक्ति को प्रेम ही मानों,
चन्द्र कहे प्रेम मुक्ति, विराग औ साधन साध्य को प्रेम ही जानों ।

कीर्ति वही, अपकीर्ति वही अरु भाग्य सुभाग्य है प्रेम जहाँ में,
पुत्र वही, पति-पत्नि वही अरु मात-पिता, गुरु प्रेम जहाँ में,
प्रेम ही भूत, वही वर्तमान, वही है भविष्य की खान जहाँ में,
चन्द्र कहे है प्रतीति वही अरु प्रेम को प्राप्ति भी जान जहाँ में ।

नदियाँ बहती जल प्रेम लिये औ बयार बहे मधु गीत सुनाये,
झरना झर-झर बहता ही रहे अरु पर्वत प्रेम से शीश झुकाये,
भोर में ऊषा गुलाल लिए नित प्रेम ही संसृति पे बरसाये,
चन्द्र कहे निज आँचल में भर प्रेम निरंतर रात्रि सुहाये ।

प्रेम जगत में सत्य है, बाकी सब है झूठ,
जो पहचाने प्रेम को, उससे ईश न रूठ ।

ईश प्रेम ही होत है, प्रेम ईश ही होत,
जिसके हिय सत-प्रेम यह, उसके हिय में ज्योत ।

पूर्ण समर्पण प्रेम है, पूर्ण ध्यान विस्तार,
पूर्ण ज्ञान श्रृंगार है, पूर्ण ब्रह्म आकार ।

जैसे सारे नद-नदी, चाहें सिंधु समाय,
वैसे प्रेमी चाहता, ब्रह्म लीन हो जाय ।

प्रेम बढ़े कर्त्तव्य से, स्वारथ से घट जाय,
ज्यों पानी से तुरु बढ़े, छाँछ निरन्तर खाय ।

पर सेवा में जब लगे, पर उपकार कहाय,
फँस जाये संसार में, प्रेम काम बन जाये ।

गुणातीत है प्रेम रस, डूबे जो तर जाय,
ना डूबे कामी वही, क्रोध निरन्तर खाय ।

कृपा करो गुरुदेव प्रेम का गीत सुनाऊँ,
जीवन है इक प्रेम, यही जग को बतलाऊँ,
स्थावर-जंगम, जड़-चेतन सब प्रेममयी हैं,
प्रेम बिना यह सारी संसृति रस विहीन है ।

आत्मा-परमात्मा है, यह साधो तुम जानों,
प्रेम बिना सूरज, चन्दा को सूखा मानों,
प्रेम न होता तो यह जग भी ना होता रे,
होता चारो ओर अग्नि का ही स्त्रोता रे ।

उठती कहीं महा-सागर उत्ताली रपटें,
कहीं रौंधती ज्वालामुख की अनगिन लपटे,
प्रबल प्रचंड हवा बहती सारी दुनियाँ में,
प्रेम बिना नहिं मात-पिता होते दुनियाँ में ।

होती कहीं न वर्षा संसृति सूखी होती,
हिमगिरि से गंगा जमुना तब कभी न बहती,
होता नहिं मैदान, नहीं भव सागर होता,
नहीं बीज अंकुरित कहीं पृथ्वी पर होता ।

होता तब मरुभूमिः न रस की बूंदें होती,
और पपीही पीव-पीव कह निशि-दिन रोती,
जन्म नहीं होता बालक का प्रेम बिना रे,
कैसी होती यह संसृति तू यही बता रे ।

ईश्वर की लीला सब धरी-धरी रह जाती,
फिर कैसे खँडहर ईश्वर को बोलो भाती,
इसीलिए दो धन्यवाद ईश्वर को प्यारे,
प्रेममयी धर रूप जगत में वही पधारे ।

दोहा- कृपा ईश की जगत पर; प्रगटे प्रेम स्वरूप,
विविध रंग रस से भरे, भू सागर नदि कूप ॥ 1 ॥

ईश्वर ही है प्रेम, प्रेम को ईश्वर मानो,
प्रेम नहीं है काम तनिक इसको पहचानो,
काम एक है मन विकार जो अंधा करता,
सारे जग के बुद्धि-तत्व को वह नित हरता ।

काम क्रोध को पैदा करता मनु के मन में,
अनायास हर लेता उर्जा उसका क्षण में,
क्रोध नाश करता है मनु के बुधि विवेक को,
बुद्धि-नाश ही नाश करे मानव जीवन को ।

काम न पूरा होता तो जग दुस्मन होता,
राग-द्वेष में फसा मनुज निश-दिन ही रोता,
फसे चला जाता है पथ पर रोते-रोते,
छोड़ न पाता पर कामी पथ दम के होते ।

क्या अच्छा है और बुरा क्या, ज्ञान न होता,
यही ईश की माया जिसमें फँस जग रोता,
प्रेम नहीं यह तो माया है जो दुख देती,
भ्रम में सारे संसृति को पागल कर देती ।

मृग मरीच सा सारा जग ढूँढा करता है,
सच्चा प्रेम कहीं भी जग में ना मिलता है,
जैसे मृग नाभी में कस्तूरी रहता है,
वैसे ही यह प्रेम हृदय में नित बहता है ।

प्रेम नहीं होता बाहर तुम अन्दर ढूँढो,
वहीं प्रेम का बीज अंकुरित, पुष्पित सूँघो,
प्रेममयी वह ईश तुम्हें आँचल भर लेगा,
वहीं मिलेगी शान्ति प्रेम का फूल खिलेगा ।

दोहा - प्रेम बने नहिं जगत में; प्रेम मिले न बजार,
प्रेम हृदय की भावना; हिय में प्रगटत यार ॥ 2 ॥

करो जगत से प्रेम प होये निश्छल, निर्मल,
संसृति ईश्वर रूप सदा है सुन्दर उज्ज्वल,
यह सारी ही संसृति ईश्वर की माया है,
वही मात अरु वही पिता वह ही काया है ।

सबको एक दृष्टि से देखे; भेद न करता,
सबको छोड़ दिया है जग में; सबका भरता,
बुधि, विवेक से जो चाहो कर लो तुम नाटक,
खुला हुआ है कर्मों के फल का हर फाटक ।

उसी प्रेम में जाते राजा, रंक, भिखारी,
उसी प्रेम में बालक, वृद्ध, युवा, नर-नारी,
ब्रह्म-प्रेम में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य न होई,
और नहीं कहलाता शूद्र यहाँ पर कोई ।

प्रेम राज्य में केवल जीव; जीव होते हैं,
मानव दानव तो गुण के ही सब लोथे हैं,
पशु, पक्षी, तरु, लता, कुसुम सब उसी प्रेम में,
हैं आबद्ध सभी जड़-चेतन उस आँचल में ।

भेद नहीं कुछ भी होता उस प्रेम ब्रह्म में,
वहाँ सदा बहती है धारा प्रेम लहर में,
वहाँ न कोई ऊँच न कोई नीचा होता,
वहाँ न कोई ज्ञानी और न मूरख श्रोता ।

प्रीति न होती नश्वरता से सच तू मानो,
अनित वस्तु से प्रेम नहीं इतना तू जानो,
प्रीति न होती उससे जिसका आदि अंत है,
जो विनाश की ओर जा रहा व्यर्थ पंथ है ।

दोहा - तन मंदिर बैठा तहाँ, ईश्वर आसन मार,
हर तन की सदगति यहीं, कर उससे तू प्यार ॥ 3 ॥

नित्य आत्म से प्रीति करो वह ही सच्चा है,
वह घट-घट का वासी अति पावन अच्छा है,
एक बार हो कर वह फिर से कभी न होता,
अस्त्र-सस्त्र ना काट सके, वह कभी न सोता ।

सुखा सके ना कोई उसको ऐसा अद्भूत,
बदले सारी दुनियाँ पर वह रहता अच्युत,
जला सके ना अग्नि प्रेम की धारा ऐसी,
कभी नहीं गीला होता; हो वर्षा कैसी ।

प्रेम जगत का सार और कुछ ना जीवन में,
और सभी नश्वर अनित्य मिटते क्षण-क्षण में,
मिटने वालों से कैसा है प्रेम तुम्हारा,
पेनी बिन लोटा होता है यह जग सारा ।

जग वाले नश्वर से प्रेम किया करते हैं,
पर वह प्रेम नहीं केवल आहें भरते हैं,
जगत प्रेम चाहत पर केवल निर्भर होता,
चाह गई फिर प्रेम कहाँ दिखलाई देता ।

नश्वर से जब प्रेम करोगे, नश्वर होगा,
प्रेम वासना रूप लिए अति दुस्कर होगा,
बहुत फरक है प्रेम वासना में जग वालों,
एक सत्य तो एक झूठ है, स्वयं सभालो ।

दोहा - सत्य प्रेम का अंश जग; जहाँ भेद नहिं बैर,
कैसे मनु तुम चाहते; बिना प्रेम के खैर ।। 4 ।।

उज्ज्वल, निर्मल, पावन, शीतल इक होता है,
एक स्वार्थ, क्षण भंगुर धूमिल कटु होता है,
निरख एक की छवि आत्मा विह्वल होती है,
एक संग से आत्मा जीवन भर रोती है ।

स्वार्थ-प्रेम को प्रेम समझते हैं हम सारे,
प्रेम स्वार्थ का नाम नहीं; जिस पर तुम वारे,
प्रेम सच्चिदानन्द जगत में प्रगट हुआ है,
जिसकी पावनता में यह जग रमण किया है ।

वही फूल में खुशबू बन कर जग महकाए,
खिल-खिल सारे संसृति को खिलना सिखलाए,
वही प्रात में ऊषा किरणों सा छा जाता,
वही ज्योति बन हर जड़ चेतन में भर जाता ।

संसृति के हर कण-कण में वह ही रस भरता,
उससे ही सारे जीवन में उर्जा बनता,
उसी प्रेम से सारा जग जीवन पाता है,
वही गगन - घन झर-झर पानी बरसाता है ।

प्रेम रूप धर षट ऋतुओं में नाचा करता,
कभी शीत, गर्मी तो कभी बसन्ती बहता,
उसी प्रेम से अच्छादित हिम, सागर, नदियाँ,
उसी प्रेम से पूरित सारी जीवन कलियाँ ।

वही छलकता दूध रूप माँ के आँचल में,
ममता बन वह देखा करता सभी नयन में,
वही नेत्र की ज्योति, वही हिय का वासी है,
वही बुद्धि, मन अरु विवेक का सत साक्षी है ।

दोहा- प्रेम बिना जीवन जगत; लागे मन को शूल,
बिना प्रेम संसार में; नीक लगे नहिं फूल ॥ 5 ॥

उसी प्रेम से सारा जग प्रेमी कहलाता,
वही प्रेम हर रात नींद में हमें सुलाता,
वही सुबह दे थपकी हमको रोज उठाये
वही सदा ही कर्मयोग की राह बताये ।

उसी प्रेम की व्यापकता का गुण है सारा,
भू से नभ तक चहुदिशि में वह रहे पियारा,
हरी भरी यह पृथ्वी नित रस बरसाती है,
उसी प्रेम रस से मानवता रस पाती है ।

देता है अपना सरवस संसार उजागर,
देना ही उसका स्वभाव है, देता मन भर,
उसकी दया दृष्टि पर ही संसार टिका है,
वरना इस संसृति में सब कुछ ही फीका है ।

प्रेम सुधा बरसाना ईश्वर की मजबूरी,
ग्रहण उसे करना ही है जीवन की धूरी,
जिसने आत्म साथ कर लिया श्रेष्ठ कहलाया,
अधम वही जिसने इस रस को ना अपनाया ।

निर्झर बहता प्रेम जगत पर नित्य निरन्तर,
धार नहीं रुकती चाहे कोई मनवन्तर,
कभी प्रभव का रूप लिए जग पर सरसाती,
कभी प्रलय बन कर संसृति को रही डुबाती ।

उसका ही रूपान्तर है यह संसृति प्यारा,
मानव पशु पक्षी अरु पेड़ लताएँ सारा,
सभी जीव जीवित रहते उस एक प्रेम से,
उससे ही निर्मित संसृति यह लगे बेल से ।

दोहा- अनगिन गुरिया ज्यूँ गुथे, एक डोर के संग,
त्यों सारा संसार यह, गुथा प्रेम के रंग ।। 6 ।।

सब कुछ एक प्रेम रस ही है निर्झर बहता,
प्रेम सदा रहता नवीन यह कभी न घटता,
कभी नया हो कभी पुराना, प्रेम नहीं वह,
घटता कभी नहीं बढ़ता है ऐसा सम वह ।

समता का आदर्श रूप है प्रेम जगत में,
सदा निछावर संसृति के हर कणों कणों में,
भेद भाव का लक्षण कहीं न रहता इसमें
कल - कल निर्मल जल सा बहता हर जीवन में ।

प्रेम सदा देता; लेना वह कभी न जाने,
अहंकार तो लेना ही केवल पहचाने,
प्रेम रूप को जानो माँ की ममता जैसा,
जो अविरल बहती रहती है शिशु पर कैसा ।

प्रेम न होता प्रगट और नहिं छुपता निर्मल,
निज लय में वह नित्य निरन्तर बहता अविरल,
प्रेम न कभी उपजता खेतों खलिहानों में,
प्रेम न मन में उपजे और न व्यभिचारों में ।

दोहा - अविरल धारा ज्यूँ बहे; सूखे कभी न श्रोत,
बहे निरन्तर प्रेम रस; ले आत्मा नित गोत ॥ 7 ॥

काम, क्रोध से प्रेम कभी भी नष्ट न होता,
राग, द्वेष से प्रेम नदी का स्रोत न सोता,
लोभ, मोह, कुविचार प्रेम को दवा सके ना,
मान प्रेम को अपने पथ से झुका सके ना ।

मात्र, विकारों से प्रेमी मन दब जाता है;
पर अवसर पाते ही प्रफुलित हो जाता है,
मार नहीं सकता कोई भी इस संसृति में,
ढूँढ सको ढूँढो बैठा वह सबके हिय में ।

पर जब सत्ता में रहता तो अहंकार है,
यही प्रेम ही परिवारों प्रति मोह भार है,
प्रेम कभी पैसे से होता लोभ कहाता,
कभी पुत्र के साथ वही ममता बन जाता ।

अहंकार को पोषण देना ही अधर्म है,
प्रेम कभी हो शुद्ध आचरण तो सधर्म है,
अहंकार से मानव की नित हानि हुई है,
और प्रेम से मानवता दिन दून फली है ।

प्रेम कभी भी जीवन में फरियाद न करता,
हानि-लाभ, यश-अपयश हो, सब में वह हँसता,
प्रेमा वेदी को ही संसृति सच माना है,
वरना किसको, कहाँ, किधर अरु कब जाना है ।

दोहा - प्रेमी के संसार में; ना अपना ना गैर,
नफरत करता वह नहीं; मित्र होय या बैर ।। 8 ।।

प्रेम प्राप्ति की बात सदा मन को है भाती,
एक दिया का तेल एक कहलाती बाती,
वैर वहाँ होता है जब दो अलग-अलग हों,
एक यहाँ अरु एक वहाँ वे दो-दो जन हों ।

पर मैं में अरु प्रेम तत्व में भेद न होता,
ना कोई दूरी ना कोई खेद हि होता,
एक इंच की दूरी कभी नहीं होती है,
दीख रही जो भी दूरी वह मोह रची है ।

इसी मोह से खुद में और खुदा में दूरी,
नश्वर तन से नाता जोड़ा खुद से दूरी,
खुद में बसता खुदा, खुदा में खुद बसता है,
पर मोही ना जाने प्रेमी स्वयं प्रभा है ।

ईश्वर को चाहत है तेरे उसी प्रेम की,
जिसे दिया है तेरे अन्दर वह जीवन की,
प्रेम लगा दो जग की सेवा में तुम यारों,
दिल में भर लो सारे जग का प्रेम पियारों ।

जग से ही यह तेरा सारा तन निर्मित है,
उसको ही अर्पित करने का कार्य अमित है,
प्रेम समर्पण कहलाता है; तुम दे डालो,
जीवन की सारी आशाओं को तुम पा लो ।

दोहा- प्रेम न चीन्हें आपना; और न चीन्हे गैर,
चाह एक इस जगत की; बनी रहे नित खैर ।। 9 ।।

प्रेम रूप चैतन्य सभी का अपना आपा,
यही हमारा जीवन और यही फल छापा,
इसी प्रेम से आत्मा साक्षात्कार हुआ है,
इसी प्रेम ने सशरीर ही मुक्त जिया है ।

भरा प्रेम जो जीवन में उसको जग सपना,
संसृति में जो होता सब लगता है अपना,
भला-बुरा उस प्रेमी को सब अच्छा लागे,
एक अलौकिक प्रेम सभी प्रति नित मन जागे ।

प्रेम कभी ना संसृति में उत्पन्न हुआ है,
नहीं प्रेम का मरना जीना कभी हुआ है,
प्रेम प्रगट होता है अविरल निर्मल, शीतल,
ज्यों हरि रहता है व्यापक सर्वत्र सभी पल ।

इसी प्रेम से जग में ईश प्रगट होता है,
इसी प्रेम से हृदय शुद्ध निर्मल होता है,
इसी प्रेम ने धर्म - कर्म का पाठ पढ़ाया,
इसी प्रेम ने न्याय और माधूर्य सिखाया ।

इसी प्रेम के परवश हो गीता गाया है,
इसी प्रेम का पाठ बाइबिल में आया है,
इसी प्रेम को वेद ब्रह्म का रूप बखानें,
अरु कुरान भी इसी प्रेम को सरवस माने ।

छंद - **प्रेम की शक्ति अनंत अपार नहीं जग में कोई पार है पाया,**
प्रेम पवित्र व उज्ज्वल, पावन, होत नहीं कोई रूप न छाया,
प्रेम हि नाश व श्रृष्टि रचे जग पालन प्रेम करे जस माया,
प्रेम की लीला बड़ी है विचित्र रहे जग संग न रंग समाया ॥ 10 ॥

यही प्रेम गुरु नानक का आदर्श रहा है,
औ, कबीर के जीवन का सत-अर्थ रहा है,
इसी प्रेम पर दीवानी मीरा पगलाई,
यही प्रेम रैदास सुनाते जग में भाई ।

इसी प्रेम के दीवाने पलटू, दादू थे,
तुकाराम, हरसद, धन्ना अनगिन साधू थे,
इसी प्रेम के परवस हो कर कृष्ण कन्हैया,
नाच रहे गोपी-गोपा सँग रास रचैया ।

यही प्रेम है सार राम जीवन का सारा,
त्याग दिये सब राज पाट, रावण भी हारा,
परवस हो कर इसी प्रेम से ईश पधारे,
कभी भक्त प्रहलाद, कभी ध्रुव को वे तारे ।

प्रेम भाव है एक सदा समरस रहता है,
देख नहीं सकता कोई पर हिय सुनता है,
राधा कहती कृष्ण हमें इसलिए प्रीय है,
सरवस जीवन उसी प्रेम के वसीभूत है ।

जो भी करते कृष्ण वही सब अच्छा लागे,
भले बुरे का हर विचार क्षण में तज भागे,
प्रेम राज्य में एक प्रेम ही विचरण करता,
हानि-लाभ, यश-अपयश का तो नाम न रहता ।

छंद - प्रेम में पाप कभी न रहे पर पूण्य रहे नित आसन मारे,
ऋतुएँ सब ही अनुकूल रहे, प्रतिकूल न हो कुछ आश दुलारे,
काल की चाल थमी रह जाय, विपत्ति टरे एक प्रेम सहारे,
चन्द्र कहे एक प्रेम की राह ही नित्य रहे नवनीत पियारे ॥ 11 ॥

इसी प्रेम की पहली सीढ़ी चढ़ जो जाये,
ईश्वर के उस सत्य रूप को हिय में पाये,
भर जावे उसका सारा संसार प्रेम से,
कण-कण में ईश्वर दीखे जो देखे हिय से ।

फिर सबरी की जूठ बेर ही मीठी लागे,
केले कां छिलका सुलभा के कर का मागे,
सूखी रोटी विदुर हाथ का हिय को भाये,
और सुदामा की गठरी का सत्तु खायेः ।

प्रेम ईश से करो उसी के लायक वह है,
उसकी श्रृष्टि उसी के सम जीवन दर्शन है,
उसकी ही प्रति - मूर्ति जीव के भीतर छाई,
करो प्रेम हर जीव तुम्हारा अपना भाई ।

करो सदा गुणगान ईश, जग और जीव का,
नफरत मत कर सब है अपने उसी ईश का,
करो प्यार संसार एक परिवार तुम्हारा,
हर जड़-चेतन, स्थावर-जंगम लागे प्यारा ।

जब मन में आ जाये संसृति मेरी अपनी,
भेद नहीं रह जाये; दीखे अपनी अवनी,
तब सारा जग अपनों सा मन को प्रिय लागे,
कोई गैर न दीखे जब अपना हिय जागे ।

जगत जीव के हर हिय में नित प्रेम विराजे,
जो सबके हिय को भाये हर क्षण हो ताजे,
सदा हमारे साथ प्रेम-ईश्वर होता है,
और नित्य हर हिय में प्रेम रंग भरता है ।

दोहा - प्रेम सच्चिदानन्दघन; प्रेममयी संसार,
जो जाने भवसिंधु से; होता बेड़ा-पार ।। 12 ।।

माँगो उससे शरण, तुम्हारे दर आया हूँ,
दया करो हे भगवन तेरी ही छाया हूँ,
मेरी बिगड़ी और बनी के तुम्हीं सहारे,
कर दो बेड़ा पार प्रेम पतवार चला रे ।

उसी प्रेम के परवस हो मैं माँग रहा हूँ,
तू मेरे हो मैं तेरा ही भाग रहा हूँ,
यही कामना मंगल मेरी बस दे देना,
सारी संसृति को आँचल में तू भर लेना ।

बैर रहित सारी मानवता, दोस्त सभी हो,
दुख की छाया मुझ पर देना, और सुखी हो,
कोई अपने आपे से भी दूर न जाये,
कोई मानवता तज पशुता ना अपनाए ।

काम, क्रोध, मद, मोह लोभ में फस ना जाये,
तन, धन, बल, की बेहोशी में ना इतराये,
हर हिय में करुणा भर देना मेरे ईश्वर,
और दया की लहर उठे ज्यूँ होत समुन्दर ।

जब हम आये कोई मेरे शत्रु नहीं थे,
जब जनमें तब मेरे कोई मित्र नहीं थे,
नहीं कहीं तब भेद-भाव था मन में मेरे,
सब समान थे, एक रूप, समता के घेरे ।

दोहा - प्रेम राज्य चहुँओर था; बाजे सुर संगीत,
आँचल में था दूध अरु; हिय में ममता पीत ॥ 13 ॥

कही न कोई अपना और पराया जग में
नहीं कामना, ममता थी मेरे ही मन में,
उज्ज्वल निर्मल पावन जीवन तब मेरा था,
परब्रह्म सा हिय में करुणा, दया भरा था ।

सारी संसृति प्रेममयी तब हमको लगती,
प्रेम तत्व की एक पुंज थी मेरी धरती,
काम, क्रोध का इस जीवन में नाम नहीं था,
राग, द्वेष क्या होता है पहचान नहीं था ।

पर जैसे-जैसे जग से व्यवहार बढ़ाया,
तैसे-तैसे प्रकृति गुणों ने रूप दिखाया,
अपने को सरवस माना मानव भरमाया,
देह मोह में पड़ वह अपने को खो आया ।

'मै' आत्मा, परमात्मा वह है भूल गये हम,
देहध्यास में आत्मरूप को लील गये हम,
इसीलिए वह प्रेमतत्व सूखा सा लागे,
ढूँढ रहे नित मृग सा मानव पथ-पथ भागे ।

मिल नहिं सकता प्रेम कभी संसृति के अन्दर,
वह सुसुप्त सा पड़ा हुआ है तेरे अन्दर,
वह जागा तो सारा ही संसार जगेगा,
फिर इस भू पर उसी प्रेम का लहर उठेगा ।

**छंद - प्रेम में क्रोध रहे इतना जितना शिशु को इक माँ दिखलाये,
प्रेम में राग रहे इतना जितना इक संत को संसृति भाये,
प्रेम में संग रहे जग के ना रहे तनिको नहिं फर्क सुहाये,
भक्ति की प्यारी सखी यह है हिय में इक संग हि दोउ समाये ।। 14 ।।**

पर हम अपने अन्दर बोलो कब झाकें है,
हम तो बाहर की दुनियाँ को ही आँके हैं,
चाह रहे हम सारी दुनियाँ में परिवर्तन,
हो जाये सारी संसृति ही प्रेमी आँगन ।

हो जाये चहुँओर प्रेम का राज्य हमारे,
सारी संसृति झूम उठे जैसे दो प्यारे,
पर हम झाँक नहीं पाते हैं अपने अन्दर,
जहाँ छुपी है शक्ति, प्रेम का अमिय समुन्दर ।

जगत बुरा नहिं होता और न अच्छा होता,
यह तो समता में हँसता निश-दिन है बहता,
चाहे वह सतयुग हो चाहे त्रेता युग हो,
चाहे वह द्वापर हो फिर चाहे कलयुग हो ।

हर युग में संसार एक सा सुन्दर लागे,
हर युग में रहता वह ईश्वर कण-कण जागे,
बदलाहट आता है तो इस मन मंदिर में,
उठती लहरें कभी, कभी गिरती जीवन में ।

एक ओर सत-रज-तम निश-दिन जहाँ विराजे,
इन्द्रिय विषयों की बंसी से जीवन साजे,
एक ओर मन में बसते हैं क्षमा, शान्ति, सम,
दया, तोष, आर्जव रहते हैं, शील, धर्म, मम ।

मन में ही रहता है प्रेम कमल दल न्यारा,
जिसका डंढल हृदय नाभि से निकला प्यारा,
जो अपनी सुशबू से तन, मन, जग भरता है,
जो ईश्वर में निश-दिन ही रमता रहता है ।

दोहा- प्रेम बिना नहिं ऊपजे, भक्ति और वैराग्य,
जा हिय प्रेम निवास हो; ता हिय में सौभाग्य ॥ 15 ॥

और उसी मन में बसता नित काम हमारा,
क्रोध, लोभ, मद, मोह, विराजे मन में सारा,
कर फैलाये एक ओर ममता दीवानी,
जो इस जग बंधन के हर कारण की रानी ।

दोनो पहलू का मन में होना सुन्दर है,
पर सब में समता का ही इक बेल अमर है,
पर सेवा में जब हम इन भावों को लाते,
तो होता कल्याण धन्य हम सब हो जाते,

कोई भी हो भाव सदा सुन्दर होता है,
उसका उद्‌गम स्थल ही तो हिय होता है,
जब पवित्र मन होगा शुद्ध भावना होगी,
शुद्ध भावना से ही शुद्ध कर्म नित योगी ।

यही धर्म है, यही कर्म है जग में तेरा,
रखो शुद्ध मन, वाणी कर लो कर्म सबेरा,
होगा सत्य तभी जब मन में पर सेवा हो,
अरु जग लागे जैसे मंदिर में देवा हो ।

अरु हिय में जो प्रेम भरा उसको बहने दो,
उसमें सारी संसृति को गोता लेने दो,
राम, कृष्ण ने उसी प्रेम को जग में बाँटा,
उसी प्रेम से बुद्ध निकाले जग का काँटा,

दोहा- माया धारा झूठ है, प्रेम धार सच सार,
एक डुबाये जीव को, एक उतारे पार ॥ 16 ॥
जहँ उद्‌गम स्थान निज, धारा पहुँचे जाय,
मानव उद्‌गम प्रेम थल; शरण वही वह पाय ॥ 17 ॥

उसी प्रेम को संत जायसी ने है माया,
अरु तुलसी ने उसी प्रेम को जग बरसाया,
वही प्रेम उस ईश्वर का भंडार रहा है,
उसी प्रेम से यह सारा संसार भरा है ।

उसी प्रेम पर ईशा ने बलिदान दिया है,
गुरु नानक ने उसको ही मनु प्राण कहा है
और मुहम्मद उसको हिय में धारण करते,
महावीर, उस प्रेम लहर में डूबे रहते ।

उसी प्रेम में रबिया नित्य दिवानी रहती,
डूब गये थे तुकाराम अरु डूबी धरती,
जिसने भी उस सत्य प्रेम को पहचाना है,
देखो ! सच्चा वही प्रेम का दीवाना है ।

पर जो स्वारथ में रहते हैं मर जाते हैं,
जग के बन्धन में फँस कर वे रह जाते हैं,
नाली के कीड़े सा जीवन उनका होता,
प्रेम शब्द से भी उनका मन जैसे जलता ।

ऐसे मानव का मन नित्य अशान्त रहा है,
जीवन की सच्चाई को वह झूठ कहा है,
ऐसा मानव जग में है सूखी डाली सा,
जिसमें रस, फल, फूल नहीं, होता नीरस सा ।

दोहा - प्रेम बिना नहिं क्रान्ति जग; प्रेम बिना नहिं शान्ति,
प्रेम बिना मिटता नहीं; मानव हिय की भ्रान्ति ॥ 18 ॥

जीवन है इक बोझ श्रृष्टि में उसका जानो,
जहाँ प्रेम की चाह नहीं सूखा ही मानो,
बाहर का श्रृंगार काम को पैदा करता,
मानव ईष्या और जलन को मन में भरता ।

बाहर का मुसकान भले ही धन-दौलत हो,
माथे का हो तिलक, भले वस्त्राभूषण हो,
होठों पर लाली हो, कानों में बाली हो,
बगुलों सा हो उज्वल पर अन्दर काली हो ।

यह सब होता व्यर्थ न मन जब उज्वल निर्मल,
मिले नहीं सुख, शान्ति भले कितना हो धन, बल,
मनः तृप्ति में बाधाएँ आती तो भय है,
विघ्न अगर छोटी भी आये क्रोध विकल है ।

काम तृप्त में विघ्न अगर प्यारे जो आया,
उठती मन में ईष्या अतिशय जलन जलाया,
पूर्ण हुई थोड़ी भी तो मन आशा जागी,
और-और की चाह जगे पर प्यास न भागी ।

ऐसे मन की प्रेम - धार सूखी हो जाती,
पुत्र - हीन नारी को ज्यूँ ममता न सुहाती,
वाणी में तब प्रेम नहीं कुछ रह जाता है,
कोयल भी कौआ सा दिखने लग जाता है ।

छंद -. प्रेम बिना जग में नहिं धर्म, न कर्म, न ध्यान, न ज्ञान सुहाये
प्रेम बिना नहिं मानवता जग, और नहीं मनु ही रह जाये
भाई हि भाई को लूटत है अरु जो भी उठे उनको ही गिराये
अच्छे बुरे का न ज्ञान रहे, नहिं मान रहे मर्याद न भाये ॥ 19 ॥

अतः बाह्य श्रृंगार सदा ही व्यर्थ कहाये,
होता है आदर्श मनः श्रृंगार बढ़ाये,
अचल, अचंचल, मन निर्मल, पावन, उज्ज्वल हो,
और जीव प्रति उपकारी नित ही भावन हो ।

हिय में परमानन्द और सुख, शान्ति विराजे,
सदा प्रेम संगीत साज सँग नित हिय बाजे,
नित्य रहे संतुष्ट, तृप्त आत्मा में साजे,
बहे प्रेम की धार निरन्तर नित रस ताजे,

सदा जिन्दगी राह बताए हो सतसंगी,
सब प्रति सम हो चाहे हो वह ब्राह्मण भंगी,
ऊँच - नीच का भेद नहीं मन में रह जाये,
सभी जीव अपने हैं; समता हिय में आये ।

भर जाये मन सबका उद्गम एक ईश है,
कोई नहीं पराया सबका आत्म एक है,
माने अपना करतब सबकी सेवा करना,
हे मानव ! इस जग में सदा अभय ही रहना ।

काम किसी के आये वह इन्सान कहाये,
पर दुख को अपनाये वह भगवान कहाये,
मन को रखे नियंत्रण में वह संयासी है,
मन में झूठा प्रेम भरा वह ऐयासी है ।

मन में प्यार जगाओ वह दीपक बन जाये,
सारी संसृति उज्ज्वलता से ही भर जाये,
लग जायेगा तब मन तेरा हरि दर्शन में,
तब आये आनन्द और झूमें कीर्तन में ।

छंद - वह प्रेम ही दीपक सा जलता; मन अन्दर नित्य आनन्द मचाये,
इसके रहते हिय में वसुधा, सुरधाम सभी निज धाम में आये,
काल न मार सके इसको नहिं जात कभी यह प्रेम भुलाये,
मुक्ति दुआर खुला ही रहे जिसके हिय पावन प्रेम सुहाये ॥ 20॥

करो प्रार्थना उस ईश्वर से मन कोरा हो,
अंधकार हो दूर उजाले का डेरा हो,
मन चाभी को तुम ईश्वर की ओर घुमाओ,
मिल जाये वह राह सदा ईश्वर को पाओ ।

ईश्वर मेरे ! दया जीव प्रति मन में भरना,
सेवा कर पाऊँ जग की वह ताकत देना,
देख रहे अनगिन आँखों से तू मेरे को,
तोड़ न पाऊँ मैं मानवता के घेरे को ।

मैं हूँ अति नादान मुझे कुछ पता नहीं है,
क्या अच्छा है और बुरा क्या होत सही है,
पर तू सब कुछ जान रहा; सब देख रहा है,
यही तुम्हारी मुझ पर अनुपम स्नेह रहा है ।

हे ईश्वर वह प्रेम मुझे तू मन भर देना,
भले नहीं कुछ मिले प्रेम पर बरसा देना,
प्रेम रहेगा हिय में तो मैं प्रेम करुँगा,
जग जीवन से कभी न नफरत पाल सकूँगा ।

चाहे सारा जग मेरा कैसा भी दीखे,
सुन्दर और असुन्दर सब हो एक सरीखे,
मावन हिय में जब वह निर्मल प्रेम रहेगा,
सब अपने होंगे अरु सब पर प्रेम बहेगा ।

छंद- जो पैर चलता प्रेम पथ पर धन्य उसको मानिये,
जो हाथ बढ़ता प्रेम से उसको तु सार्थक जानिये,
जो मन सदा कीर्तन करे उस प्रेम के सद्रूप का,
है धन्य वह हिय जो रखे अन्दर सुछवि उस प्रेम का ॥ 21 ॥

नहीं किसी प्रति ईष्या अथवा राग करेगा,
नहीं कामना, ममता का संसार रहेगा,
तब मानव सब ओर प्रेम का राज्य रहेगा,
कोई नहीं पराया अपना साज कहेगा ।

जगत ईश-अंशी का अंश दिखाई देगा,
हर कण-कण से वही प्रेम मनु निकल चलेगा,
तब मन को आनन्द मिलेगा, शान्ति मिलेगी,
मन में ना भौतिकता की कुछ चाह जगेगी ।

सब अपना अपना दीखेगा गैर न कोई,
चारो ओर समान रहेगा; समता बोई,
यह समता ही योग कहाये मानव मानो,
कर लो सबसे प्रेम और उसको पहचानो ।

फिर तो तुम हर परिस्थिति में खुशी रहोगे,
दुख-सुख सब ईश्वर का सुन्दर वर समझोगे,
मन में तेरे प्रेम भाव जब बह निकलेगा,
ईश्वर में सब, सब में ईश्वर ही दीखेगा ।

प्रेम भक्ति की तब केवल नित धार बहेगी,
कभी न मन में काम वासना ही उपजेगी,
तन, मन निर्मल और सभी कुछ मंगल होगा,
एक ब्रह्म से ही सबका सम्बन्ध रहेगा ।

छंद - प्रेम में सत्य, दया, समता, बल, त्याग, क्षमा, तप, तेज, समाये,
प्रेम में शील, विनय अरु साहस, धैर्य, पवित्र, संतोष ही भाये,
प्रेम में पावनता अरु कोमल ज्ञान व ध्यान वैराग्य सुहाये,
चन्द्र कहे गुण ही जग है पर प्रेम तो निर्गुण ही कहलाये ॥ 22 ॥

शुद्ध प्रेम जब ईश्वर से नाता जोड़ेगा,
जब निष्कामी ज्ञान और वैराग्य बहेगा,
सभी कर्म तब धर्म बनेंगे इस धरती पर,
जीते जी मनु मोक्ष मिलेगा इस धरती पर ।

तब न अर्थ प्रति मन में तनिक समोह रहेगा,
तब न काम प्रति मन में कुछ भी भोग रहेगा,
तब जानोगे जीवन फल इन्द्रिय सुख नाहीं,
सच्चा फल पर-सेवा ही है इस जग माहीं ।

कर्मों की हर गाँठ बड़ी ही दुस्तर होती,
जो ईश्वर चिन्तन से हीं निर्मूल झुलसती,
इसीलिए ज्ञानी है करता प्रेम ब्रह्म से,
और जगत को ब्रह्म रूप माने अन्दर से ।

अशुभ वासना मन की सब जब मिट जाती है,
फिर ईश्वर प्रति शुद्ध प्रेम जागृत होती है,
जब सारी आसक्ति मिटे उस ईश प्रेम से,
तब मानव हिय भर जाये आनन्द, शान्ति से ।

सत्य तत्व का अनुभव जब अपने को होता,
तब हर क्षण अपने हिय में सुचि, शुद्ध सजोता,
अरु हिय की सब अशुभ ग्रन्थि झूठी हो जाती,
मुक्ति, कर्म-बन्धन से मानव तब मिल जाती ।

छंद - प्रेम से ऋद्धि व सिद्धि मिले अरु प्रेम से गीत संगीत सुहाये,
प्रेम ही वीर्य व प्रेम पराक्रम, प्रेम ही कोमलता भरजाये,
प्रेम गुलाम का नाम नहीं, जग में नित प्रेम स्वतंत्र कहाये,
चन्द्र कहे बिन प्रेम किये परलोक व लोक में मुक्ति न पाये ॥ 23 ॥

वेदों का तात्पर्य एक ही प्रेम सत्य है,
यज्ञों का उद्देश्य एक ही प्रेम तत्व है,
योगं सदा उस प्रेम के लिए ही होते हैं,
कर्म धर्म सब उसके अन्दर ही बसते हैं ।

ज्ञान सदा उस सत्य प्रेम को बतलाता है,
जप,तप सब उस प्रेम राह पर ही जाता है,
धर्मों का पालन हम करते उसी नेम में,
नित्य समाहित सारी गतियाँ उसी प्रेम में ।

सत,रज,तम सब उसी प्रेम के गुण विलास हैं,
मानव के जीवन की सच्ची यही आश है,
यही अनिर्वचनीय और आनन्दमयी है,
जन्म-मरण मय जगत चक्र का यही जयी है ।

उसी प्रेम से हृदय भक्ति का द्वार हुआ है,
उसी प्रेम से रज, तम का संहार हुआ है,
उसी प्रेम से विनय और अनुराग निकलता,
उसी प्रेम से सेवा-पुष्प हृदय में खिलता ।

उसी प्रेम से श्रृद्धा की उत्पत्ति हुई है,
उसी प्रेम से तन, मन, वाणी मुक्ति हुई है,
उसी प्रेम से इन्द्रिय में संयम आता है,
उसके परवस ईश कृपा जग बरसाता है ।

दोहा- प्रेम जगत का सार है, प्रेम ईश का रूप,
प्रेम बिना जीवन जगत, नीरस और कुरूप ॥ 24 ॥

उसी प्रेम से ईश्वर की पहचान हुई है,
उसी प्रेम से निश, दिन, सुबहो-शाम हुई है,
उसी प्रेम के परवस सूर्य उदय होता है,
उसी प्रेम से चाँद नित्य औषधि बोता है ।

उसी प्रेम से प्रेममयी कवि कविता लिखता,
उसी प्रेम से ज्ञानी ज्ञान सुनाया करता,
उसी प्रेम से जिज्ञासा पूरण होती है,
उसी प्रेम से मनु को परम शान्ति मिलती है ।

उसी प्रेम में सारा जग डूबा रहता है,
उसी प्रेम के परवस मनु रोता-गाता है,
जीवन-मरण उसी का परम अनुग्रह होता,
हर कारण में वही प्रेम नित मंगल बोता ।

उसी प्रेम से नद, नाले, पर्वत, वन, उपवन,
उसी प्रेम के परवस मानव हृदय और वन,
उसी प्रेम से शीतल जल कल-कल कर बहता,
उसी प्रेम से भौरा नित गुंजन है करता ।

उसी प्रेम के आश्रित सब ही जड़ चेतन हैं,
उसी प्रेम के परवस सब स्थावर जंगम हैं,
वही प्रेम पूरब, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर में,
वही प्रेम आकाश, भूमि, पर्वत सागर में ।

दोहा - जल सागर को ढूँढता, लव सूरज तहँ जाय,
शब्द मिले आकाश से, जीव प्रेम जहँ पाय ॥ 25 ॥

वही प्रेम जंगल में हरियाली हो जाता,
और बाटिका में फूलों सा रस बरसाता,
उसी प्रेम का दीवाना मानव जीवन भर,
उसी प्रेम से लहरें उठती घोर समुन्दर ।

घर-वर, जग, ब्रह्मांड अखिल सब प्रेम रूप है,
अनुभव कर लो प्रेम, ईश उसका स्वरूप है,
शीलत, शान्त और आनन्द उसी के गुण हैं,
जलचर, थलचर, नभचर सब उसके ही भ्रूण हैं ।

शोक-नशावन, मन-भावन वह प्रेम पियारा,
वर्णन कर सकता नहिं कोई इसका न्यारा,
प्यास जगाता वही प्रेम नित हिय में आकर,
जीवन का संचार करे वह रस बरसा कर ।

वाणी उसकी कभी न वर्णन कर सकती है,
शान्ति और माधूर्य, शील उसकी धरती है,
तीन ताप से तप्त जगत का ताप निवारक,
कलयुग रूपी महापाप का है वह तारक ।

संसृति को सुख शान्ति प्रेम से ही मिलता है,
काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ सब ही मिटता है,
आत्मा में रमने वालों के हिय में रहता,
है इतना माधूर्य सभी का मन हर लेता ।

छंद - प्रेम बिना मन योग नहीं; नहिं ध्यान कभी बिनु प्रेम समाये,
जग की सब दौलत क्यों न मिले हिय में बिन प्रेम न तोष सुहाये,
प्रेम बिना जग नीरस ज्यों तरु डाल सुखी मन को नहिं भाये,
चन्दर प्रेम की है पहचान उसे जिसके हिय विश्व समाये ॥ 26 ॥

वही प्रेम है व्याप्त जगत के बाहर भीतर,
देख न पाये मूढ़ भले रहता है अन्दर,
प्रेम प्रकृति से परे और शाश्वत तुम जानो,
पर माया है बीच खड़ी उसको पहचानो ।

हर प्राणी का परम धर्म यह प्रेम पियारा,
व्याप्त नहीं पाये माया; है अद्भूत धारा,
जहाँ प्रेम है वहाँ न कोई भय रहता है,
हृदय तले नित मधुवन सा बहता रहता है ।

महा प्रलय में यही प्रेम अवशेष रहा है,
इसी प्रेम से काल, प्रकृति का जन्म हुआ है,
यही प्रकृति जीवों को मोहित कर लेती है,
और श्रृष्टि के बन्धन में बाँधे फिरती है ।

इसी प्रेम का योगी नित दर्शन करते हैं,
इसी प्रेम पर भक्त हृदय अर्पित होते हैं,
इसी प्रेम से अन्तःकरण शुद्ध होता है,
यही प्रेम साक्षात सगुण ईश्वर होता है ।

इसी प्रेम का वेदों में गायन होता है,
इसी प्रेम का शास्त्रों में वर्णन आता है,
इसी प्रेम से सारी पृथ्वी पावन होती,
इसी प्रेम पर ब्रज-बालाएँ सुध-बुध खोती ।

छंद - प्रेम की रीति बड़ी ही पवित्र, सदा बरसे हो पियूष की धारा,
बन्धन पास से मुक्त करे, अरु जन्म औ मृत्यु से हो छुटकारा,
धन-दौलत से बुधि भ्रष्ट रहे, पर प्रेम से सिंचित है जग सारा,
चन्द्र कहे छलके जियरा जब आये कभी वह प्रेम दुलारा ।। 27 ।।

प्रेम लिये आभार और सान्त्वना शुशोभित,
जीवन का है सार यही सब कहें पुरोहित,
आँसू की हर बूँदें अमृत सी लगती है,
सुख-दुख में नहिं भेद जहाँ समता फलती है ।

सांसारिक हर प्रेम स्वार्थ पर निर्भर होता,
सच मानों यह प्रेम नहीं धोखा है होता,
प्रेम ईश का रूप उसे ईश्वर ही मानों,
करो जगत से प्रेम उसी को पूजा जानों ।

बह जाओ उस प्रेम लहर में हाथ मिलेंगे,
दुस्मन भी हो दोस्त तुम्हारे साथ चलेंगे,
कोई भी नहिं भेद हृदय में रह जायेगा,
तब यह धरती स्वर्ग-लोक ही कहलायेगा ।

तब मानव सारे जग को हिय में भर लेगा,
सबका सुख-दुख अपना सुख-दुख बन जायेगा,
कहीं न नफरत की दीवारें खड़ी रहेगी,
कही कोन में वह कराहती पड़ी रहेगी ।

चारो ओर सरलता का साम्राज्य रहेगा,
दया,धर्म अरु त्याग,क्षमा का ध्वज फहरेगा,
कोमलता चारो दिश में तब छा जायेगी,
विनय, शील, साहस, स्थिरता आ जायेगी ।

सभी ओर सौभाग्य उदय होगा धरती पर,
आस्तिकता का फूल खिलेगा हर पत्थर पर,
ज्ञान, ध्यान, वैराग्य, योग का वह युग होगा ।
सभी सत्य के राही निरहंकार जगेगा ।

**छंद - प्रेम में लेत न होत कभी, पर देत सभी कुछ ही मिल जाये,
प्रेम का रोग, कृपा उसकी जग ही अपने हीय में भर जाये,
प्रेम जहाँ वहाँ वैर नहीं; जहँ वैर रहे तहँ प्रेम न भाये,
चन्द्र कहे नहिं चाह कोई धन-दौलत प्रेम को रास न आये ॥ 28 ॥**

तभी विश्व में मानवता की कीर्ति ब्रढ़ेगी,
तभी जगत में शील, शान्ति की लहर उठेगी,
उसी प्रेम में सारा जग शरणागत होगा,
हर मनु के सर पर वत्सलता का कर होगा ।

इसी तरह उस सत्य प्रेम का रस बरसाते,
चले जा रहे थे सब प्रेमी प्रेम लुटाते,
उमड़ रही थी भीड़ प्रेम का रस पीने को,
लुटा रहे थे प्रेम मनुज जीवन जीने को ।

जान गई थी सारी जनता प्रेम ब्रह्म है,
भक्ति और वैराग्य प्रेम के दो सम्बल है,
संसृति के हर कण-कण में वह प्रेम समाया,
वही सत्य है और विश्व सब झूठी माया ।

प्रेम कथा सुन गदगद तन, मन भर आया था,
सारी संसृति उन नयनों में अति भाया था,
अनुभव करते यह सारा जग ही अपना है,
क्षण भंगुर है जीवन जग केवल सपना है ।

अरे बालकों तुमने मेरी आँखें खोली,
पता चला क्या सत्य और क्या झूठी होली,
क्षण भर रुक कर हमें बता फिर कब आओगे,
इस अमृत वाणी से कब तर कर जाओगे ।

कर प्रणाम मन ही मन गुरु को शीश झुकाये,
बोले, होगी ईश कृपा तब वही बुलाये,
हम सब तो हैं निमित मात्र केवल ईश्वर के,
हम कठपुतली, डोर हाथ है उस ईश्वर के ।

कुछ आशा, विश्वास हृदय में जागा उनके,
सभी शिष्य फिर कदम बढ़ाये मंगल कहके,
आँखों में आँसू, हिय में नव-धार प्रेम का,
भेद भाव दीवार ढलाते चले हृदय का ।

छंद - प्रेम हि बंधु व प्रेम हि सिंधु व प्रेम हि शक्ति व भक्ति कहाये,
प्रेम हि माता-पिता, गुरु भाई व प्रेम हि ज्ञान विज्ञान सुहाये,
प्रेम हि भू नभ अग्नि व वायु व प्रेम हि नीर अमीय बहाये,
चन्द्र कहे यह प्रेम हि ईश्वर प्रेम हि से वह श्रृष्टि बनाये ।। 29 ।।

॥ दशम सर्ग ॥

मुक्ति

माँ सरस्वती के श्री चरणों में कवि का नमन

दशम सर्ग

मुक्ति

जिसकी करुणा इतनी जग पर हम चैन की साँस लिया करते,
जिसकी है कृपा इतनी हम पर हिय में वे सदा ही रमा करते,
है दया हम पर इतनी जिनकी अन्न, वायु व नीर पिया करते,
वंदना करता उस ईश्वर की जो सदा जीव मुक्ति दि या करते ।

करुणा इतनी उसकी विषयों अरु द्वन्द से मुक्त सदा ही करे,
वह रूप स्पर्श व शन्द व गंध हमें रस नित्य दिया ही करे,
आँख व कान व नाक व चाम व जीभ में नित्य बसा ही करे,
वंदना करता उस ईश्वर की, भव सागर पार सदा ही करे ।

चारहु ओर घना अधियार हो, राह कोई जब दीख न पाये,
राग व द्वेष फसाये सदा, अरु लोभ व मोह ही रोज़ सताये,
अच्छा बुरा पहचान नहीं, मन में जब काम व क्रोध सताये,
चन्द्र कहे तब ज्योति दिखा कर ईश्वर ही भव पार कराये ।

भृगुटी जिसकी चहुओर रहे, हर जीव में जीवन सा जो समाये,
ईश्वर अल्ला व ईसा कभी गुरूनानक राम व कृष्ण कहाये,
सूकर, सिंह का रूप लिए जो चले भक्त रक्षण को क्षण धाये,
चन्द्र कहे है प्रणाम उसे जिसको सत प्रेम हि नित्य सुहाये ।

अहिल्या, निशाद, अजामिल औ गणिका, सेवरी, प्रहलाद को तारे,
अंक लिए ध्रुव को अपने जो दिये ब्रह्म आसन ऐसे दुलारे,
ग्राह गजेन्द्र के तारक जो, और संसृति के एक ही हैं सहारे,
चन्द्र कहे भव सागर से हमको उस पार उतारेंगे प्यारे ।

जिनके बिन ज्ञान न भक्ति रहे; जप, दान व ध्यान नहीं मन भाये,
वैराग्य न त्याग रहे हिय में, करुणा, वरूणा व कृपा न सुहाये,
जिनके बिन चन्द्र न सूर्य रहें, नभ मंडल में नक्षत्र न आये,
वंदना नित चन्द्र करे उसका जिसकी छवि नैनन से नहिं जाये ।

धर्म अर्थ अरु काम मनु; जीवन के आधार,
परम लक्ष्य इस जगत में; मुक्ति जीव का सार ।

जीवन व्यर्थ सजीव का; चन्द्र कहे बिन मुक्ति,
जन्म मरण के चक्र में; होत न दुख की चुक्ति ।

एक राह है मुक्ति की; कर सत - श्रद्धा भक्ति,
त्याग विषय विष जान कर; ले सदगुरु की शक्ति ।

काम क्रोध से ऊपजे; राग द्वेष मन माहिं,
सुलगे निश-दिन आत्मा, पड़े नरक की खाहिं ।

माया में अन्धा हुआ, आत्मा नहीं दिखाय,
है तेरा अपना वही, बाकी सब भरमाय ।

निज स्वरूप जो देखता; बाकी सब जरि जाय ।
जग सारा अपना दिखे; गैर नजर नहिं आय ।

जब दीखे सब आपना; वसुधा हो परिवार,
परम शान्ति उपजे हृदय; मुक्त होत संसार ।

तन मन को कर अलग तू; देख स्वयं को झाँक,
सत प्रकाश दीखे वहीं, रखे जिसे तू ढाँक ।

जब तक मन में अहम है; मैं हिन्दू, इसलाम,
तब तक मोक्ष न जगत से; होत न नर निष्काम ।

बौराया सारा जगत; मूर्ति बनाया काट,
स्वयं ब्रह्म हो कर करे; विनती उतरन पाट ।

बोले शिष्य कृपा कर इतना, समता मन भर सागर जितना ।
जीव समस्त लगे सम तेरे, भेद-भाव नहिं हो मन मेरे ।
कर प्रणाम मैं बारम्बार, विनती करहु जगत रखवारा ।
अस विवेक देहहु मन मोरे, वर्णन करहु मुक्ति बहुतेरे ।
करहु प्रणाम संत, गुरु ज्ञानी, निर्गण गुणी अमानी मानी ।
सकल नारि नर जड़ अरु चेतन, विनती करहुँ देह बल लेखन ।
विनती घर परिवार समाजू, करहू प्रकृति कृपा अस साजू ।
होय मुक्त मनु सकल जहाँना, जड़-चेतन सब कृपा निधाना ।

सोरठा- अस वर देहु कृपाल, भव-सागर हो पार सब,
नैया है मजधार, आओ बन पतवार अब ।। 1 ।।

गुरु वन्दन कर शीश झुकाए, प्रभु की जय-जयकार लगाये ।
बोले शिष्य मुक्ति संसारा, परम लक्ष्य हर जीव अधारा ।
अर्थ एक पुरूषार्थ महाना, जा पर निर्भर मनुज समाना ।
तन बिन होत नहीं संसारा, ताकर अर्थ नित्य व्यवहारा ।
घर-परिवार चलावन हेतू, होवत अर्थ नदी पर सेतू ।
उतनहिं अर्थ होत शुभकारी, घर-परिवार चले सुविचारी ।
संग्रह से उपजे अभिमाना, फटे गुवारा सम जग जाना ।
चोर कहावत एहिं जग माहीं, साँचा मित्र मिले कोउ नाहीं ।
औरहु भाग हड़प कर लेवत, ताते अर्थी चोर कहावत ।

दोहा- अर्थ लोभ कै खान सम, अर्थ मुक्ति की राह,
मूढ़ फसे, पंडित हँसे, संत हृदय नहिं चाह ।। 2 ।।

लुट न जाय भय हृदय समाई, घूमत रोज स्वान की नाई ।
उसके हृदय राम नहिं भावे, हर क्षण मन में लोभ सुहावे ।
मानत नित्य श्रेष्ठ अपने को, विविध वस्तु, घटना सपने को ।
अलग - थलग पड़ जाय समाजू, सोवत उठत लखत निज बाजू ।
भय सम रोग होत नहिं कोई, ताते पीड़ित जग में सोई ।
छीन सके नहिं जन, धन डेरा, चिन्ता एक रहे मन घेरा ।
बढ़ न सके हमसे जग कोई, मन भीतर ईर्ष्या नित ढोई ।
बड़ा न उसको कोई दीखे, लागे संसृति नीच सरीखे ।
बड़भागी अपने को माने, रीति-नीति का पंडित जाने ।
अर्थ लुभावत विविध प्रकारा, मंद बुद्धि नहिं पावे पारा ।
उतनहिं अर्थ करे कल्याना, जीवन चले सुचारु, समाना ।
बोझ बने नहिं अपने ऊपर, जीवन हो न जाय कहिं ऊसर ।

दोहा- अर्थ कमी से रात-दिन; आये प्रभु का नाम,
ले चाहे तू प्यार से; या ले भर मन काम ॥ 3 ॥

धरम कहावत इक पुरुषारथ, जा पर निर्भर जीवन सारथ ।
शुद्ध चित्त साकार स्वरूपा, कर्म कहावत धर्महि रूपा ।
होत धर्म से मन सुचि सुन्दर, चिन्तन होत स्वयं के अन्दर ।
उपजत शुद्ध विचार विवेका, हिय आनन्द होत अतिरेका ।
आनन्दित हिय जग कल्याना, निश-दिन लागे आप समाना ।
धर्म होत जो धारण होवत, संत साधु योगी नित ओढ़त ।
घर-परिवार व्यवस्थित रहही, छोटे, बड़े अदब सब करही ।
मृदुवाणी बोले हर काजा, हृदय खोल ज्यूँ भगत बिराजा ।
बालक वृद्ध युवा नर-नारी, रहे प्रेम बस सब हि सुचारी ।
जब परिवार धरम मय होई, आनन्दित हो मन सब कोई ।
लगे राज अरु देश सुहाना, भेद नहीं कछु सबहि समाना ।
विश्व शान्ति हरषहि चहुओरा, ज्यों प्रकाश होवत नित भोरा ।

दोहा- धर्म धूरि संसार कै, बिन नहिं हो कल्यान,
धर्म बिना जागे नहीं; भाव, योग, जप, ध्यान ।। 4 ।।

काम एक पुरुषारथ कहहीं, निश-दिन मानव डूबत रहहीं ।
विविध रूप काम कै जानो, जग प्रपंच तू इसको मानो ।
रज गुण से उपजे सब कामा, होवत राग - द्वैष कै धामा ।
एक रूप से है जग सारा, अति प्रिय लागे यह संसारा ।
पागल फिरत मनुज हो अंधा, समझ पड़े नहिं एकहु धंधा ।
काम नचावत एहि जग माहीं, मनुज समझ कछु आवत नाहीं ।
पूरण काम होत जब कबहू, लोभ मोह लागे मन रमहूँ ।
विफल होत जब कभी कामना, उपजे क्रोध कठोर भावना ।
काम फसावत लोभ लोभाई, फसे मनुज मरकट की नाई ।

दोहा- मुक्ति नहीं मनु काम से; जो जग जनमें जान,
काम भले हो स्वर्ग की, गिरत नरक में आन ।। 5 ।।

काम एक ऊर्जा कै धामा, फूले-फले विविध जग नामा ।
सफल होत परिग्रह बन जाता, विफल होत चोरी कहलाता ।
काम मार्ग पर बाधा आवे, तो वह हिंसक रूप दिखावे ।
अन्तर शक्ति नहीं जब होवे, काम चोर बन जग में रोवे ।
काम बहे जब जग की ओरा, होत वासना रूप अघोरा ।
जग सुख भले तनिक मिल जाये, पर अपने को नहिं वह पाये ।
जग सुख पा कर होत विचारा, होये पर नहिं ईश पियारा ।
काम कामना बन बौराये, बाहर ईश्वर तक वह चाहे ।
मिले न बाहर ईश्वर धरमा, ये निज भीतर के सब करमा ।
जनम मृत्यु कै चक्कर तबहीं, काम बहत बाहर दिश जबहीं ।

दोहा- काम शक्ति तारक मनुज, व्यापक विशद अपार,
पार पाय केवल वही; जो मन बच क्रम जार ।। 6 ।।

काम बहे जब भीतर अपने, तब निष्कामी हो सब सपने ।
क्षीण न होत काम कै ऊर्जा, बन जाये वह जीवन पूजा ।
काम अकाम बने जब अन्दर, मुक्ति होत संसार समुन्दर ।
काम बिसर्जित जब नहिं होये, सहस्रार पथ पर तब बोये ।
जागत कुंडलिनी मनु जानो, काम हि लीला सुन्दर मानो ।
आत्म ज्ञान होये क्षण माही, ईश अलग दीखे तब नाही ।
काम अकाम बने कब कैसे, उर्ध्वमुखी होये कब ऐसे ।
वर्तमान में जीना जानो, जीवन - ब्रह्म रूप पहचानो ।
श्रृजन होत अतिशय आनन्दा, ता पर ध्यान लगाओ बंदा ।
खेल-खेल में जीना सीखो, राग-द्वेष होते सब तीखो ।
ध्यान योग से उर्जा तेरी, भीतर बहे करो नहिं देरी ।
अनहद नाद होत तब अन्दर, ब्रह्म रूप सोहत तब अन्तर ।

दोहा - काम बिगारे जिन्दगी, सुधरे होत अकाम,
एक मृत्यु की खोज है, एक खोज है राम ।। 7 ।।

मुक्ति एक उत्तम पुरुषारथ, जीवन होत धन्य अरु सारथ ।
होवत जनम मुक्ति कै हेतू, राग - द्वेष ता पथ पर केतू ।
मुक्ति जीव का लक्ष्य पियारा, ता पर गिरे काम कै गारा ।
चाहत मुक्ति जगत में आई, त्याग विषय विष सम रे भाई ।
हो अध्यात्म योग कल्याना, सुख-दुख जहाँ न होत बिहाना ।
मन आसक्त जगत में होई, जानो बन्धन निश्चय सोई ।
हो अनुरक्त ब्रह्म में जबहीं, मोक्ष होत जानो मनु तबही ।
यज्ञ-बुद्धि से कर्म जो करहीं, कर्ता जग बन्धन से तरही ।
भोग - बुद्धि होत प्रतिकूला, जानो मनु माया कै मूला ।
सबही कर्म समय पर होई, देखत प्रकृति मूल सब कोई ।
प्रगट होत जब सूर्य बिहाना, अनगिन जीव होत कल्याना ।
कल-कल नदी बहे चहु ओरा, तृप्त होत जल पी मन मोरा ।

बरसे औषधि चन्द्र महाना, रोग मुक्त जग जीवन जाना ।

दोहा- प्रकृति निरंतर कर रही; सेवा देख सुजान,
तन, मन, धन, सब प्रकृति कै, फिर क्यों कर अभिमान ।। 8 ।।

जब मन 'मैं' अरु 'मैंपन' खोये, मुक्तहि काम क्रोध से होये ।
तब मन में वैराग्य समाई, शुद्ध भक्तिमय हिय हो जाई ।
सुख-दुख शून्य एक सम होई, शक्ति हीन गुण तीनहु सोई ।
तब मानव सत संगति करहीं, संत पुरुष सँग नित्य बिचरही ।
सुनहि नित्य मन पावन ज्ञाना, प्रिय लागे अति हृदय सुजाना ।
श्रद्धा, प्रेम, भक्ति मन उपजत, ईश्वर लीला अति प्रिय लागत ।
चिन्तन करत ईश कै रूपा, जड़-चेतन सब ब्रह्म स्वरूपा ।
लोक और परलोक समाना, सब विधि प्रिय लागे भगवाना ।
शुद्ध हृदय तब होत हमारा, खुलत मोक्ष कै निर्मल द्वारा ।
देखत भगत हृदय में तबहीं, आसन मार ईश तहँ रहहीं ।

दोहा- लागे जब जग ईश सम, सुन्दर, सुखद सुजान,
जानो तब उस ब्रह्म का; होत सत्य सुचि ज्ञान ।। 9 ।।

कर्म होत जग बन्धन नाहीं, भाव, विचार धरे मन माहीं ।
जैसन भाव होत मनु तोरा, तैसन क्रिया होत जग घोरा ।
बन्धन, मुक्ति भाव पर निर्भर, जाने ज्ञानी, संत, विप्रवर ।
करम वासनामय जब होई, बच नहिं सके जगत में कोई ।
ममता चूसे जीवन ऐसे, जोक खून चूसत तन जैसे ।
काम सतावत छोड़त नाहीं, पागल सम घूमत जग माहीं ।
बाँध लेत तब यह संसारा, मूढ़ न समझत माया पारा ।
औरहु बँध जाये मनु तबहीं, आलस, नीद सतावत जबहीं ।
फिरत प्रमादी एहि संसारा, होत न जीवन कै उद्धारा ।

दोहा- आलस, नीद, प्रमाद जब; मानव को ले घेर,
तब अच्छे या बुरे का, समझ पड़े नहिं फेर ।। 10 ।।

निश-दिन यज्ञ प्रकृति जग करहीं, सँग-सँग जो उसके नित रह हीं ।
जो निष्काम करत सब काजा, रहे वही मन माया राजा ।
ओहि कै होत यहाँ कल्याना, और होत मनु अधम समाना ।
यज्ञ कर्म जो मानव करता, उसका योग क्षेग प्रभु हरता ।
हिय संतोष यज्ञ से होई, लागे जग अपना, नहिं कोई ।
हिय प्रसन्न जेहिं कारण होई, संत शास्त्र सम्मत हो जोई ।
वह सत कर्म होत संसारा, ऐसन कर्म करे भव पारा ।
सेवा कर गुण-दोष न हेरे, पड़े नहीं सुख-दुख के फेरे ।
क्या लाये सँग क्या ले जाना, सब ईश्वर कै ताना-बाना ।
दरिया सम जीवन मनु होता, सूखत, सड़त ताल, नहिं गोता ।

दोहा- दरिया सम हो जिन्दगी, बहत करत कल्यान,
सूखत, सड़त तलाब लख, लालच हर ले प्रान ।। 11 ।।

संग्रह कै स्वभाव नहिं नीका, समय पड़े होवत सब फीका ।
कीड़ा पड़त बहुत दिन तहहीं, बदबू होत सकत नहिं रह हीं ।
संग्रह कै चसका जब लागै, चोरी करत न डर मन जागै ।
चीन्हत नहिं वह अपन-पराया, सब पे गिद्ध-दृष्टि घहराया ।
चिन्ता नहीं मान-अपमाना, भागे निश-दिन भूत समाना ।
लोभ बढ़त ज्यों बेहया बेला, मोह बढ़त ज्यू बाढ़त रेला ।
भर जाये मन स्वारथ उसके, देख सके नहिं वह सुख सबके ।
जलन होत मन उसके इतना, अग्नि नहीं जलतै जग जितना ।
कपटी कपट करत अति प्यारा, मानों कपट प्रगट साकारा ।
बिगड़त काम, क्रोध उपजे मन, बनत मान उपंजे उसके तन ।

धन दौलत पर टूटत ऐसे, विष्टा पर मक्खी नित जैसे ।
कृपण होत पर समझत माना, रीति-नीति अरु धरम न जाना ।
मुक्ति न संग्रह से मनु होई, वह चाहत लूटन सब कोई ।
अपरोक्ष दुख कै सब मूला, छीन लेत हक, भोकत शूला ।

दोहा- धन संग्रह से बढ़त नित; लोभ, क्षोभ अरु मोह,
मिलत न सुख अरु शान्ति जग; बढ़त काम भय कोह ॥ 12 ॥

यज्ञ कर्म कै रूप अनेका, भीतर उठे भाव पर एका ।
पर हित कर्म होत दृढ़ निश्चय, उठे भाव ज्यूँ गीत बीच लय ।
हो भीतर उत्साह समुन्दर, लहर उठे पर सेवा सुन्दर ।
चले पवन सम निशदिन अविरल, कल-कल नदी बहे ज्यूँ प्रतिफल ।
स्वास निरन्तर आवे-जावे, सूरज को प्रकाश ज्यूँ भावे ।
त्यों भीतर हो पर हित करमा, जानो यज्ञ कर्म अरु धरमा ।
यज्ञ रूप यह तन उपकारी, मन सोचे पर-हित अनुसारी ।
बुद्धि, विवेक दिये भगवाना, सदुपयोग जो करत महाना ।
जो प्रिय वचन करे दिन राती, तिन्हहि लगावत मनु भर छाती ।
जा कर चरन बढ़े कल्याना, होत वही मानव जग जाना ।
मन, बच, कर्म होत हितकारी, कबहूँ नहिं वह होत दुखारी ।
अतिशय प्रीति बढ़े सबही से, मनु पशु-पक्षी वृक्ष जमी से ।

दोहा- चन्द्र न पथ कोई जगत; यज्ञ कर्म से नीक,
पर-हित हो जिस कर्म में, होत कर्म वह ठीक ॥ 13 ॥

प्रथम देह-देही पहचानो, मुक्ति रहस्य सकल तब जानो ।
तन को पुरुष आत्म नित मानत, जन्म मरण में निज तन सानत ।
अनगिन जनम संग दोउ रहहीं, ताते एक समझ अस परही ।
भव-बन्धन से छूटत नाहीं, कारण इक अज्ञान कहाहीं ।
दूर करो अज्ञान सुजाना, तब होये मानव कल्याना ।

आत्मज्ञान जब तक नहिं होई, तब तक मुक्त न जग में कोई ।
देह पाँच तत्वों का मिश्रण, क्षिति, जल, पावक, गगन, वायु कण ।
तुम नहिं पृथ्वी, नहिं तुम पावक, नहिं जल गगन वायु अभिभावक ।
अहंकार, मन, बुधि इन्द्रिय दस, देह होत पर तू न कभी फँस ।
क्षण-क्षण अलग होत तन रूपा, बालक कभी कुमार सरूपा ।
और युवा फिर बृद्धा होवत, एक रूप तन कभी न सोहत ।

दोहा - नश्वर तन, मन, बुद्धि को, प्रकृति नचावै रोज,
मूरख निश-दिन नाचता, निज स्वरूप नहिं खोज ॥ 14 ॥

मनु आत्मा प्रतिफल सँग रहही, भेद होत नहिं इक क्षण कबही ।
देखत वह बालक कुमारपन, युवा और होवत वृद्धा क्षन ।
कहत मनुज देखे हम सबको, सुख-दुख, जागत अरु सोवत को ।
बदलत तन, धन, घर, संसारा, पर नहिं बदलत देखनवारा ।
आत्मा देखत प्रतिपल देहा, देह दिखे बदलत निज नेहा ।
देखे दीखत अलग कहाहीं, दोनों एक होत जग नाहीं ।
जो बदलत नित नश्वर होई, निश्चय मृत्यु जान सब कोई ।
जो नहिं बदलत वह अविनासी, सत चित अरु आनन्द सुवासी ।
रहे एक रस आदि न अंता, देखत सब कुछ ज्यों सुचि संता ।

दोहा - जो जाने भीतर वही; बैठा आत्म स्वरूप,
रखे मोह नहिं देह से; फसे न संसृति कूप ॥ 15 ॥

जाने भेद देह अरु आत्मा, वह ही ज्ञानी और महात्मा ।
वह पहचाने देह व देही, एक गेह अरु इक है गेही ।
एक विनाशी इक अविनासी, एक अनित्य, नित्य कै वासी ।
एक कहात आदि अरु अंता, एक कहात अनादि, अनंता ।
एक त्रिगुण के बस में होई, गुणातीत जाने सब कोई ।
एक पड़े भव बन्धन माहीं, इक को बाँध सके जग नाहीं ।
एक कहात काम कै रूपा, एक अकाम अनंत स्वरूपा ।

ममता एक सके नहिं तोड़ी, एक न ममता नाता जोड़ी ।
निश्चय एक नष्ट जग होई, एक अमर पहचाने कोई ।
क्षणभंगुर जानत सब एकहि, शाश्वत एक पुराण हृदय-महि ।
जन्म-मृत्यु से उबरि न पावे, एक अजन्मा, नित कहलावे ।
जो जाने, भव-सागर पारा, बाँध सके नहिं मनु संसारा ।
जानहु मुक्ति उसी कै होई, सत-असत्य चीन्हें जो कोई ।

दोहा- देह देहि के भेद को; जो जाने वह संत,
जग से ममता मोह नहिं; दीखे भव भगवंत ॥ 16 ॥

मानव तन को आत्मा जाने, अरु आत्मा को तन पहचाने ।
जब तक रहे यही अपनापन, तब तक रहे जीव जग बंधन ।
जब छूटे तादात्म्य हमारा, तब हो जीव मुक्त बेचारा ।
मोक्ष नहीं परलोकहुँ जाई, और न हाट-बजार बिकाई ।
मैं तन, तन मैं नित जड़ ग्रंथी, होवत नाश मोक्ष के पंथी ।
कर्ता-भोक्ता जड़ तन करमा, चेतनता आत्मा कै धरमा ।
पर ज्यूँ अग्नि तपाये लोहा, लोह लाल हो मन अति सोहा ।
अग्नि लोह सम सूरत होई, भ्रम बस बात करे सब कोई ।
छूअत हाथ जले क्षण माहीं, अग्नि जलावत कहतै नाहीं ।
लोह जलावत कह सब लोगा, छूअत लोह हाथ अस भोगा ।
जलना धरम लोह कै नाहीं, अग्नि-धरम नहिं कबहु सुहाई ।
पर तादात्म्य होत अस होई, सच जानत अज्ञानी सोई ।
जलना धरम लोह में चीखें, लोह अकार अग्नि हो दीखे ।
वैसहि चित सँग आत्मा होवत, सबके धरम एक हो सोहत ।
कर्ता-भोक्ता आत्मा माने, मन में चेतनता को जाने ।
फसते जनम-मरण बंधन में, मुक्ति न होत अनेक जनम में ।

दोहा - जब तक चन्दर समझ नहिं; आत्मा अरु तन धर्म,
तब तक क्षण-भंगुर जगत; लागे सत्य सकर्म ॥ 17 ॥

एक राह समता कै होई, उत्तम पंथ मुक्ति कै सोई ।
राग द्वेष जब मन में नाहीं, परम शान्ति शीतलता छाँहीं ।
निन्दा स्तुति मन नहिं भावे, मान और अपमान न आवे ।
सुख-दुख, हर्ष-शोक मन नाहीं, तब जानों समता मन माहीं ।
इन्द्रिय, मन, बुधि और परिस्थिति, तन, पदार्थ, घटना, जीवन गति ।
कहलाये सब 'पर' सुविचारा, पराधीन नहिं इनके द्वारा ।
ममता और काम जो जीता, भरा हृदय उसकै नित समता ।
असर पड़े नहिं अनु-प्रति-कूला, तृष्णा और स्पृहा भूला ।
प्रकृति विषमता पैदा करती, परमात्मा समता कै ज्योती ।
असत जगत अरु सत भगवाना, एक अनित्य, नित्य इक जाना ।
प्रति क्षण परिवर्तन इक माहीं, पर परिवर्तन हो इक नाहीं ।
जो रखता संसृति से नाता, तजता वह नहिं कबहुँ विषमता ।
पर जो सत से नाता जोड़े; समता उसको कभी न छोड़े ।
जिसके हिय समता हो जानो, परमात्मा में स्थित मानो ।

दोहा- समता से संसार में; लगे न कोई गैर,
ब्रह्म रूप सम जग दिखे, रहे न मन तल बैर ॥ 18 ॥

समता रूप एक भगवाना, जो जाने सो होत महाना ।
स्थूल, सूक्ष्म अरु कारण देहा, सबसे करो नित्य 'पर' नेहा ।
अन्तर में जब समता होई, तब स्वरूप समता में खोई ।
समता रूप ईश चहुओरा, मिलतहि होत जीव मन भोरा ।
सुख-दुख पड़े, शोक या हर्षा, निन्दा या स्तुति कै वर्षा ।
नाश नहीं समता कै होई, मुक्ति होत भव-बंधन खोई ।
जप, तप, दान, तीर्थ, व्रत करमा, होवत सब मानव शुभ धरमा ।
सब फल देत नाश प्रतिकूला, पर समता हो मुक्ति समूला ।
पर-दुख अपना दुख हो जाये, तब जानो समता हिय छाये ।
निज तन सा लागे संसारा, भेद भाव नहिं होत दुबारा ।

जो प्राणी प्रति हितकर होई, समतामयी ईश हिय सोई ।

दोहा - कर्म भले शुभ हो मनुज; यदि हिय समता नाहिं,
तो अन्दर की कामना; बाहर झलकत जाहिं, ॥ 19 ॥
समता बिन कोई करम; शान्ति दे न मनु पाय,
भव बंधन में रात-दिन; नित लिपटावत जाय ॥ 19अ ॥

एक उपाय मुक्ति कै औरो, ईश दिखे निश-दिन हर ठौरो ।
घट-घट में वह एक समाई, बाहर भीतर नित प्रभुताई ।
ज्यों आकाश व्याप्त चहुँओरा, घट-घट में स्थित हो कोरा ।
घट में घटाकाश कहलाये, पट में पटाकाश हो भाये ।
वैसहि वह व्यापक भगवाना, बसत निरन्तर हर घट प्राना ।
मूढ़ न देख सके प्रभु ऐसे, मृग कस्तुरी ढूँढत जैसे ।
निज स्वरूप को जो पहचाने, ईश दिखे हर ताने-बाने ।
घट में ज्यों नभ अंश समाई, घटाकाश कहलाये भाई ।
त्यों वह ब्रह्म हृदय में सोहत, ज्ञानी संत जान नित मोहत ।
घटाकाश, आकाश समाना, एक तत्व हर घट में जाना ।
त्यों आत्मा-परमात्मा एकहि, व्यापक व्याप्त रहे कण-कण महि ।
आत्म रूप जो तेरे अन्दर, बैठा वही सभी में सुन्दर ।
ऐसा पहचाने जो कोई, होवत मुक्त जान तू सोई ।

दोहा - ज्यों घट में आकाश मनु, घटाकाश कहलाय,
त्यों हित में परमात्मा, आत्मा रूप सुहाय ॥ 20 ॥

हम सब पतन करत अपने कर, फसत नित्य संसार अनित क्षर ।
और-और हम डूबत जाई, माया में फस स्वयं भुलाई ।
पकड़त नहिं जग हमको कबहूँ, जात स्वयं हम बन्धन बधहूँ ।
बन्धन प्रति मनु खुद ललचाये, जग तो अपने गति से जाये ।
'मैं बालक' बन्धन अस मेरा, 'मैं जवान' पागलपन घेरा ।

कभी बाल में हम फँस जाते, कभी जवानी देख लुभाते ।
बालकपन अपने से आये, और जवानी खुद ही जाये ।
आना जाना प्रकृति स्वाभावा, फिर क्यों मय करते जग धावा ।
क्यों हम बधते बालक पन से, और जवानी के यौवन से ।
क्यों बूढ़ेपन से डरते हम, और मृत्यु से भय करते हम ।
सब कुछ सही समय पर आये, और समय पर ही सब जाये ।
मनुज न जोड़े इनसे नाता, जो पहचाने जीवन दाता ।
हो सम्बन्ध एक ईश्वर से, जो बैठा हिय में युग-युग से ।
जिससे 'मै' का केवल नाता, उसे और नाता नहिं भाता ।
नाता जब ईश्वर से होई, तो हो जाय मुक्ति क्षण सोई ।

दोहा - **बधो न तन अरु जगत से; क्षण भंगुर पहचान,**
बध जाओ उस एक से; जो घट-घट का प्रान ।। 21 ।।

सुख-दुख कबहु न बाधक होये, सब प्रारब्ध कर्म के बोये ।
मिटे नहीं जो लिखा लिलारी, भोग-भोगना अस लाचारी ।
दुख-सुख से नहिं भागो भैया, होते जीवन के दोउ पैया ।
पूर्व जनम कै करण - सुकरमा, इस जीवन में होत सुधरमा ।
निश्चित भोगत मानव ओही, छूटत नहिं कौनव विधि सोई ।
सुकरम कै फल सुखकर होई, कुकरम कै फल दुखतर बोई ।
बिन चाहे भोगत मनु ऐसे, नौकर हो मालिक बस तैसे ।
नौकर छोड़ नौकरी जाता, पर फल कर्म न छोड़े गाता ।
बोझ समझ ज्ञानी नहिं भागे, अज्ञानी व्याकुल सम लागे ।
पर जो दुख-सुख में सम रहहीं, सफल वही जीवन जग कहहीं ।

दोहा - **सुख-दुख, हानि व लाभ सब; होत कर्म के हाथ,**
बिन भोगे कटते नहीं; भले ब्रह्म हो साथ ।। 22 ।।

संचित कर्म करे सब कोई, भाग सके जग अस नहिं होई ।

एक कर्म पुरूषार्थ कहावत, जो इस जीवन को अति भावत ।
कर शुभ कर्म करे कल्याना, पर कुकर्म हो पाप समाना ।
भव-बंधन काटत शुभ करमा, पर कुकर्म बाँधे मनु भरमा ।
जीव ज्योति को नित्य जगावे, कुकरम कर-कर एक बुझावे ।
कर्म होत जो जीवन-काला, फल पावै उसका ततकाला ।
पर जा कै फल मिल नहिं पावे, वह संचित हो कर रह जावे ।
फल अनुकूल मिले सत कर्मा, और करावत अनगिन धर्मा ।
शुद्ध आचरण हो ततकाला, पर हित भाव उठे हिय माला ।
समता भाव विराजे उरहीं, ऊँच नीच नहिं भेद उभरहीं ।
जाति-पाति सब झूठा लागे, मन में ईश प्रेम नित जागे ।
प्रेम उठत, लागे संसारा, ज्यों तन आपन लगे पियारा ।
ईश्वर मय जड़-चेतन लागे, हिय से द्वन्द भाव सब भागे ।
परम शान्ति तब हृदय समाई, मुक्ति मिले बन्धन से भाई ।

दोहा- शुभ पुरुषारथ में रहे; पर सेवा उपकार,
मिले शान्ति; आनन्द अरु; हिय अति होत उदार ।।23।।

राग व द्वेष मुक्ति कै बाधक, इनसे दूर रहें हर साधक ।
राग-द्वेष इन्द्रिय कै दोषा, बिषयी संग रहत नित पोसा ।
राग-द्वेष दोउ अहम समाहीं, ताते अहंकार मन माहीं ।
अहंकार जब पूरण होवत, मन में राग प्रगट हो बोवत ।
जब प्रतिकूल परिस्थिति आवे, तभी द्वेष स्थिति उपजावे ।
तन के साथ रहे मनु जब तक, राग-द्वेष फूले नित तब तक ।
राग-द्वेष जब मन में आवत, काम क्रोध कै रूप दिखावत ।
जैसन भाव उठे मन माहीं, तैसन राग द्वेष मन छाहीं ।
विषय त्याग से राग न जाई, हो विचार मन पुनि-पुनि आई ।

दोहा- राग-द्वेष, आसक्ति से, पतन होत जग माहिं,
भव-बन्धन छूटे नहीं, और-और लिपटाहिं ।। 24 ।।

राग-द्वेष के बस जो होये, अशुभ भाव निश-दिन नित ढोये ।
मानव होत स्वभाव अधीना, बधे मनुज होवत अति दिना ।
ताते कर अपने को अर्पण, सबहि कर्म ईश्वर के तर्पण ।
जब इन्द्रिय, मन प्रभु कै होई, कैसे कर्म करे निज कोई ।
निष्कामी, निर्मम, निष्तापा, होकर करम करे नित आपा ।
ताते राग-द्वेष मिट जाई, भव-बन्धन से मुक्त कराई ।
हे मानव सुन मोर बिचारा, ताते होत जगत से पारा ।
जो औरों से नहिं हम चाहें, जिससे मन को हो दुख, आहें ।
करें न हम दूसर प्रति कबहूँ, घोर विपति ऊपर हो तबहूँ ।

दोहा- चाहत जो कल्याण निज; एक राह तू खोज,
जो चाहत अपने लिए, कर दूसर प्रति रोज ।। 25 ।।

राग व द्वेष निवृत जब होवत, शास्त्र युक्त तब कर्महि सोहत ।
मनुज स्वभाव धर्ममय होई, बचन, कर्म सब हित कर सोई ।
राग-द्वेष मनु एक विकारा, आवत, जात अधर्म प्रकारा ।
राग-द्वेष कै त्याग महाना, श्रेष्ठ न कोई और जहाना ।
ताते चित सम रख हे मानव, प्रिय अप्रीय समय सम जानव ।
सम-चित में नहिं राग व़ द्वेषा, फले बढ़े उपकार विशेषा ।
मन में ईश प्रेम अति जागे, हो वैराग्य, राग नहिं दागे ।
तब जागे वैराग्य भावना, मिटे जगत-सुख, जरत कामना ।
पर सेवा कै भाव सुहाये, ईश्वर रूप जगत मन भाये ।
निष्कामी बन कर जग सेवा, ताते श्रेष्ठ न कोई मेवा ।
तुरतहिं राग द्वेष मिट जाई, ईश्वर प्रेम भरे मन माई ।

दोहा- पर-सेवा से मुक्ति का; बड़ा न अन्य उपाय,
जग दीखे ईश्वर सदृश, शान्ति हृदय में छाय ।। 26 ।।

सेवा भाव श्रेष्ठ सब कहहीं, कर्म होत जग-बंधन सबहीं ।

मान वस्तुओं में जब होये, तब जानों अभिमान सजोये ।
भोग-बुद्धि तबही तक रहहीं, स्वारथ भाव रहे मन जबहीं ।
सेवा भाव साध्य तुम मानों, और वस्तु को साधन जानों ।
सेवा हेतु यही तन पाये, ऐसन भाव हृदय जब आये ।
पर सेवा कर्त्तव्य हमारा, संसृति कै उत्तम व्यवहारा ।
दुख नहिं तनिक किसी को जग में, भेद-भाव जब हो नहिं मन में ।
तब जानों वह होत महाना, कहत जगत तब संत समाना ।

दोहा - पर सेवा, उपकार अरु; दया, धर्म, सद्भाव,
मानव इस संसार में; मन के होत स्वभाव ॥ 27 ॥

बिना ध्यान के मुक्ति न होई, कर नहिं सके त्याग बिन कोई ।
इन्द्रिय और विषय से सरवस, हो उपराम नहीं मन परवस ।
जग से छूट जाय सब नाता, केवल परमात्मा तब भाता ।
जगत ईश सम जब मन लागे, सत्य प्रेम जब हिय में जागे ।
मन में शुभ या अशुभ विचारा, हो नहिं कुछ भी जगत अधारा ।
राग-द्वेष मन में नहिं आवै, काम क्रोध तनिकौ नहिं भावै ।
ममता रहे न मन के अन्दर, भाव शून्य नहिं हो जहँ घर-वर ।
तन, मन, बुद्धि प्रकृति कै अंगा, ध्यान करे उनसे 'मैं' भंगा ।
'मै' है परमात्मा कै अंशा, परमात्मा सबके मनु हंसा ।
जा में परिवर्तन नहिं होवत, एक रूप में नित ही सोहत ।
ध्यान करावै ता में वासा, जहाँ रहे नहिं औरहु झाँसा ।
ज्यों समुद्र में गहरे उतरंत, तब चहुओर बहुत जल दीखत ।
तैसहिं ब्रह्म दिखे चहुँओरा, तब होये अन्तर मन भोरा ।

दोहा - जब तन, मन, बुधि से परे; 'मैं' स्वरूप रह जाय,
ब्रह्म ब्रह्म बस ब्रह्म ही, रहे ध्यान हिय हाय ॥ 28 ॥

भोग-वासना बंधन कारण, कबहूँ चित में कर नहिं धारण।

जैसे चित में लोभ विराजे, इच्छा पाने की मन साजे ।
प्राप्त होत अतिशय आनन्दा, क्रोध होत जब मिले न बंदा ।
जब तक अहंकार मन बैठा, तब तक मुक्ति रहे मन ऐठा ।
हो संकल्प-विकल्प विहीना, हो नहिं चित्त प्रकृति आधीना ।
प्रकृति अंश तन यह पहचानों, ताते प्रकृति संग तुम जानों ।
तन स्वभाव से प्रकृति स्वरूपा, बाँधे-नित हमको भव कूपा ।
यह रहस्य जो जाने, ज्ञानी,जगत असत्य कहे मन ठानी ।

दोहा - प्रकृति फसावत रात-दिन; भव बंधन की जाल,
पर ज्ञानी भेदन करे; जागे करत कमाल ॥ 29 ॥

इच्छा करो नहीं मन कोई, भले स्वर्ग ही नहिं क्यों होई ।
तन, धन, घर, इन्द्रिय प्रिय लागे, जानों है सब अति हतभागे ।
सब माया कै रूप अपारा, बाँधे जग में विविध प्रकारा ।
जब तक मुक्त नहीं हो इनसे, तब तक नहिं उद्धार जगत से ।
जब कृति अकृति दोउ सँग लागे, ना काहू से राग-बिरागे ।
कृति अरु अकृति सुआग्रह नाहीं, सुख-दुख द्वन्द न पावत ठाही ।
बिन वैराग्य नहीं उद्धारा, राग संग से मानव हारा ।
शाम ढ़ले ज्यूँ पक्षी आते, ना कोऊ से नेह लगाते ।
त्यों सब जीव जगत में आये, कर्महि भोग-भोग कर जाये ।
कोई नहीं किसी सँग जाता, और न संग किसी के आता ।
नहीं किसी से कोई नाता, फिर क्यों जग बंधन हो जाता ।
अस विचार जिसके मन आये, वही जगत बंधन तज पाये ।

दोहा - एक म्यान में एक ही; होत सदा तलवार,
रख लो चाहे जगत को; या रख ईश्वर प्यार, ॥ 30 ॥
माया मिथ्या जगत में; सत्य एक भगवान,
जो जाने ज्ञानी वही, बाकी अधम समान ॥ 30 अ ॥

जहँ-जहँ मन जाये सब काला, तुरतहिं रोक जान जग जाला ।
बार-बार ईश्वर में लाओ, पुनि-पुनि हिय में उसे बिठाओ ।
फिर मन भाये, जहँ-जहँ जाये, जानों वही ईश हैं आये ।
ईश जान जो करते ध्याना, जग ईश्वर सम, होत विहाना ।
तुम ईश्वर के, ईश्वर तेरे, ऐसन भाव रहे नित घेरे ।
मन संकल्प-विकल्प न होये, जग विकार नहिं मन तल बोये ।
एक ईश, जग मिथ्या केवल, यह विवेक उपजे मन प्रतिपल ।
जगत ईश कै विविध स्वरूपा, जो दीखे सब ईश्वर रूपा ।
अस हिय जानि धरो नित ध्याना, तुरतहि होत मनुज कल्याना ।

दोहा - मानव मन एकाग्र हो, और ईश में ध्यान,
एक राह उस सत्य का, हो जाये कल्यान ।। 31 ।।

समता होत हृदय में जबहीं, लागे जग ईश्वर सम तबहीं ।
ज्यों लोहे से विविध अकारा, अस्त्र-शस्त्र निर्माण प्रकारा ।
पर दीखे लोहा सबही में, तत्व भेद नहिं होत किसी में ।
तैसहि ईश तत्व है एका, पर दीखे जग जीव अनेका ।
ज्ञानी हर प्राणी में देखे, नित्य सत्य को कर अभिषेखे ।
अरु जैसे हर प्राणी अपने, सारे तन में देखे सपने ।
वैसे ही समदर्शी जागे, हर प्राणी निज सम ही लागे ।
और न सत्ता जग में कोई, आत्म रूप कण-कण में होई ।
उसमें ही जग बैठ विरागे, और उसी में निश-दिन जागे ।
अस विचार स्थिर रहते जब, निज स्वरूप संसार लगे तब ।

दोहा - निज तन सम यह जगत जब; लगे दीखने जान,
हुआ ज्ञान निज आत्म की, मानव सत पहचान ।। 32 ।।

मन निग्रह है एक उपाई, ताते मुक्ति सहज मिल जाई ।
जब तक काम रहे मन अन्दर, तब तक इन्द्रिय विषय सिकन्दर ।

काम बिना नहिं ममता होई, क्रोध, लोभ, भय नहिं कहु सोई ।
काम रहित हो जाये जब ही; स्थिर पद मन पाये तबहि ।
चंचलता गुण मन कै नाहीं, कामहि से उपजत मन खाँई ।
काम बिना सब विषय प्रसंगा, नहिं आसक्त, रहे मन चंगा ।
मन से काम जबहि अलगाई, तब ही आत्म राह दिखलाई ।
मन निग्रह कै विविध प्रकारा, कर अभ्यास तु बारम्बारा ।
पर अभ्यास हेतु वैरागा, मन में हो अति दृढ़वत जागा ।
दृढ़ आस्था संकल्प समाये, तब अभ्यास नित्य मन भाये ।

दोहा - दृढ़ आस्था भर हृदय में; कर अभ्यास सुजान,
मन चंचलता जाय अरु; हो दृढ़ योग व ध्यान ।। 33 ।।

बिन अभ्यास न निग्रह होई, निग्रह बिना योग नहिं कोई ।
क्षण भंगुर यह सब संसारा, देखत यह तन मिटे पियारा ।
ऐसे जग से कैसन मोहा, जागे मन वैराग्य सुसोहा ।
बिना राग पर सेवा करहीं, ताते मिटे मोह भय मनहीं ।
सब दुख, दोष राग से होये, राग बिना सुख-शान्ति सजोये ।
अस विचार कर तुम हे भाई, तब मन में वैराग्य समाई ।
बिन नित किए योग अरु ध्याना, दृढ़ नहिं हो अभ्यास सुजाना ।
बिना त्याग नहिं हो अभ्यासा, बिन अभ्यास योग नहिं आशा ।
मन निग्रह बिन संयम नाहीं, इन्द्रिय विषय रहे मन माहीं ।
विषय भोग भोगे जो रागा, योग-बुद्धि ता में नहिं जागा ।
मन, इन्द्रिय बस में नहिं होई, ताते पतित जान तुम सोई ।

दोहा - जब तक मन है प्रकृति सँग; तब तक राग न जाय,
राग रहत मन चपल अति; बाँधे जगत लुभाय ।। 34 ।।

पूर्ण समर्पण एक उपाई, जन्म-मरण से मुक्ति कराई ।
सब पदार्थ अरु सरवस अपना, कर अर्पण ईश्वर के चरना ।

सुख-दुख होत कृपा ईश्वर की, विधि-विधान जानो हरि-हर की ।
ताते बधो न कर्महि बंधन, मुक्त रहे जीवन हो चन्दन।
मैं प्रभु कै प्रभु मेरे अपने, जो देखे निश-दिन सत सपने ।
राग-द्वेष उसके मन नाहीं, अच्छा बुरा ईश पद जाहीं ।
सभी कर्म ईश्वर कै पूजा, एक भाव मन और न दूजा ।
सब ईश्वर कै एक प्रसादा, रहे नित्य उसके प्रति ज़ागा ।
सभी जीव ईश्वर कै रूपा, लागे नीक छाँव अरु धूपा ।
प्रभु पर सरवस कर न्यौछावर, होत तभी आनन्दित अन्तर ।

दोहा- हिय में भर संसार को; जान ईश आभार,
कर अपना अर्पण सभी; हो जाये उद्धार ।। 35 ।।

भक्ति योग मनु भाव प्रधाना, अहम और नहिं हो अज्ञाना ।
अहम होत तन कै अभिमाना, बाँधे नित बन्धन में जाना ।
जब तक मन बन्धन में रह हीं, तब तक भजन मनुज नहिं करहीं ।
भगत न जाने यह तन अपना, देखे सब ईश्वर की रचना ।
तन दीखे नित ब्रह्म समाना, दीखे ईश्वर अखिल जहाना ।
ब्रह्म-ब्रह्म को पावत ऐसे, किरण और सूरज हों जैसे ।
तैसहिं भगत मिले भगवाना, आनन्दित हिय शान्ति खजाना ।
जानत वह शरीर 'मै' नाहीं, कभी गुलाम नहीं मन माहीं ।
निज स्वरूप को आत्मा जाने, परमात्मा को अपना माने ।
जग से होत राग नहिं द्वेषा, समता में नित रहे विशेषा ।

दोहा- 'मैं' तन नहिं, तन 'मैं' नहीं, जाने वही सुजान,
भव-बन्धन में ना पड़े; रहे मुक्त धर ध्यान ।। 36 ।।

होत त्याग कै विविध प्रकारा, सबहिं मुक्ति कै सुन्दर द्वारा ।
धन जमीन प्रति मोह न होये, अरु मन में अभिमान न सोये ।

'मैं त्यागी हूँ' हो अभिमाना, सरवस पतन होय तू जाना ।
नहिं महत्व मन में जब होई, जड़ प्रति आकर्षण नहिं कोई ।
तब होये मन से वैरागी, होत वहीं मानव बड़भागी ।
मात-पिता प्रति मन नहिं स्वारथ, होवत पुत्र नारि प्रति सारथ ।
घर-परिवार अन्य की सेवा, जब जागे मन सब हैं देवा ।
स्वारथ तनिक न हो इनके प्रति, तब जानो वैराग्य तोर मति ।
जब तन से भी छूटे मोहा, राग द्वेष छूटै मन कोहा ।
तब हो मानव सत वैरागी, ज्योति महा अन्तर में जागी ।

दोहा - तन धन घर परिवार से; जब होये वैराग्य,
तब मन में संसार प्रति; जागे द्वेष न राग ।। 37 ।।

यदि तन से वैराग्य न होई, भव बन्धन छूटे नहिं सोई ।
जगत अंश यह अधम शरीरा, भागे सँग-सँग होत अधीरा ।
ममता और कामना जागे, मान प्रतिष्ठा मन में तागे ।
जब तक मन विवेक नहिं जागे, तब तक काम, मोह नहिं भागे ।
जब तक नाश न होये मोहा, भव बन्धन छूटे नहिं कोहा ।
जब विवेक जागे मन माहीं, 'मैं' शरीर नहिं, भ्रम मिट जाहीं ।
तब वैराग्य क्षणहि में होई, लागे जगत ब्रह्म, नहिं कोई ।
क्षणभंगुर सब कुछ यह अपना, यह सारा जग लागे सपना ।
परमात्मा में दृढ़ विश्वासा, है प्रसाद तन मन अरु साँसा ।
एक ब्रह्म सत मेरा अपना, और सभी माया कै सपना ।
संग्रह और भोग कै त्यागा, करे जगत से नित वैरागा ।
इच्छा जब मन में कुछ नाहीं, तब जानो वैराग्य समाहीं ।

दोहा - त्याग जगत से कामना, कर निश-दिन अभ्यास,
तब मन में वैराग्य की, जागे वृक्ष कपास ।। 38 ।।

बार- बार तुम कर अभ्यासा, हो नहिं कर्तापन कै वासा ।

कहीं न बुद्धि लिप्त जग होई, सात्विक सदा रहे क्षण कोई ।
कर एकान्त मनुज नित वासा, इन्द्रिय निग्रह सुन्दर साँसा ।
तन, मन, वचन सुसंयम रहहीं, ठेस लगे ऐसन नहिं कहहीं ।
कर्म और फल प्रति नहिं मन में, रहे तनिक आसक्ति न तन में ।
राग - द्वेष प्रति हो नहिं मोहा, केवल धर्म कर्म ही सोहा ।
हानि-लाभ में सम हो रहही, धैर्य और साहस मन सजहीं ।
हर प्राणी ईश्वर मय दीखे, मन नहिं कबहु किसी प्रति तीखे ।
कर्तृत्वाभिमान नहिं होये, समता, योग कबहु नहिं खोये ।
अहंकार नहिं आये ध्याना, रहे नित्य मन जग कल्याना ।
निर्विकार समरस चेतन नित, रहे शुद्ध निर्मल, उज्वल चित ।

दोहा - मन, बुधि निर्मल, शुद्ध तो; कर्म होत सब धर्म,
हर प्राणी में ब्रह्म नित, साधु जाने मर्म ।। 39 ।।

तृष्णा होत जगत कै बन्धन, छूटे नहिं जर्जर तन कन्दन ।
धर्म नष्ट होंवत क्षण माहीं, ताते मन विषयी हो जाहीं ।
सदा संग मन तृष्णा रहही, सारथि सम भरमावत सब ।
अज्ञानी जो जानत नाहीं, हम ईश्वर के अंश सुहाहीं ।
जो अपने को तन ही माने, और जगत को नहिं पहचाने ।
दोनो नाशवान हैं ऐसे, हो बुलबुला नदी में जैसे ।
जाने मूढ़ नित्य स्थाई, वर्णन करत थकत नहिं भाई ।
ऐसे मन तृष्णा भर जाये, निश-दिन मानव को भरमाये ।
पर जो अपने को पहचाने, अरु मैं को आत्मा ही माने ।
जाने सब में एक हि आत्मा, जो है अंश सत्य परमात्मा ।
भेद नहीं उसमें कुछ भाई, सब में एकहि तत्व सुहाई ।
आपन तन, मन मिथ्या जाने, संसृति को परिवर्तन माने ।
ज्यों ही मानव जाने ऐसा, लगे जगत सब अपने जैसा ।
फिर 'मैं' 'तू'का झगड़ा नाहीं, कण-कण ब्रह्म दिखे मन माहीं ।

कर्म, वचन, मन निर्मल होई, राग-द्वेष होये नहिं कोई ।
होत न कोई अपन-पराया, सब लागे ईश्वर की दाया ।
सबका दुख-सुख अपना लागे, तत क्षण तृष्णा मन से भागे ।
तृष्णा रहित मनुज हो ऐसे, गंगा जल निर्मल हो जैसे ।

दोहा - जिस मन में तृष्णा नहीं; वह मन गंगा नीर,
सागर से मिल मुक्त हो; हरे और की पीर ।। 40 ।।

मानव त्यागत नहिं अज्ञाना, तजे बिना नहिं होत बिहाना ।
जाने नहिं मैं तन कै भेदा, ब्रह्म जगत में कैसन छेदा ।
आत्मा अरु शरीर कै बन्धन, सुख-दुख और जगत कै क्रन्दन ।
संसृति में होती क्या माया, तप, जप, ध्यान और क्या दाया ।
कर्म-धर्म कै भेद न जाने, काम, अकाम नहीं पहचाने ।
फलासक्ति, आसक्ति बिहीना, मन बुधि और विवेक प्रवीना ।
जाने नहिं वैराग्य न त्यागा, मन से अंधकार नहिं भागा ।
दिन अरु रात भेद नहिं जाने, काम क्रोध को सरवस माने ।
सारा जीवन व्यर्थ गवाये, राग-द्वेष में फँस मुरझाये ।
आपन-आपन करत पुकारा, मृत्यु देख चीखत, अति हारा ।
जागे तबहिं शेष कुछ नाहीं, इन्द्रिय शिथिल सबहिं हो जाहीं ।
रहत संग केवल पछतावा, तबहु शुद्ध मन अरु नहिं भावा ।
तब पछतात नहीं कछु होवत, हाथ लगे केवल नित रोवत ।

दोहा - दुर्लभ तन मन पाइके; मिल न सके मनु मुक्ति,
हो दुर्भाग्य न और कुछ; वेद कहे अस सुक्ति ।। 41 ।।

पछताते मनु नहिं कछु होवत, और निकट आ मृत्यु डुबोअत ।
इस क्षण भी जो जागत प्राणी, निर्मल होये मन अरु वाणी ।
जड़ता से विछोह हो जाये, राग-द्वेष मन में नहिं भाये ।

होत मृत्यु से सब विच्छेदन, घर परिवार प्रीति, जीवन धन ।
अस विचार आये मन माहीं, तबहि सत्य की ओर लुभाहीं ।
सत्य तत्व कै चिन्तन जबहीं, अनुभव होत ब्रह्म कै तबहीं ।
निज स्वरूप कै होवत ज्ञाना, मिले ईश हो जाय बिहाना ।

दोहा - अन्तकाल में ईश का; हो जाये जो ध्यान,
तो वह ले ले अंक में; चन्दर अपना जान ।। 42 ।।

हानि - लाभ कै होये त्यागा, मन में रहे द्वेष नहिं रागा ।
जो एकाग्र सुसंयम रहही, सुख-दुख सम हो कर जो सहहीं ।
मैं शरीर नहिं, देह न मेरा, नित्य सत्य मैं, हो मन डेरा ।
ज्ञान स्वरूप होत दृढ़ निश्चय, मन में नहिं अभिमान, लोभ भय ।
कृत अरु अकृत याद नहिं आवे, कर्म बोझ लेकर नहिं धावे ।
मै ही सर्वरूप जग मेरा, मन को विषय तनिक नहिं घेरा ।
इच्छा रहे न मन के अन्दर, अस सन्तोष रहत हिय चन्दर ।
त्याग-ग्रहण कै योग्य न कोई, हर्ष विषाद रहे नहिं दोई ।
अस दृढ़ निश्चय जा मन होई, जीवन मुक्त जान जग सोई ।
परम शान्ति जीवन में पाये, आत्मानन्द पूर्ण मिल जाये ।

दोहा - भव-बन्धन सब देह से; तजे मुक्त हो जाय,
चन्दर पर जग असत को; सत्य जान बौराय ।। 43 ।।

सत, रज, तम गुण दुख कै रूपा, इससे रहित तुम्हार स्वरूपा ।
निर्गुण अन्तर आत्म तुम्हारा, जाने जो ईश्वर कै प्यारा ।
सतगुण - अभिमानी फस जाये, चाहे उत्तम गुण कहलाये ।
रत, तम गुण दोउ अधम कहाये, मानव फसत नरक में जाये ।
ज्ञान होत गुण जात पराई, जो बिन ध्यान होत नहिं भाई ।
गुण कै कार्य सकल संसारा, फस मानव होवत नहिं पारा ।
पराधीन हो सब नर-नारी, व्यर्थ जनम, लागे अति भारी ।

प्रीति जबहिं इस तन से होई, जानो राग-द्वेष मन बोई ।
तीनहु गुण दौड़त ततकाला, काम, क्रोध जागे मन भाला ।
अज्ञानी नित ज्ञान बखाने, अहंकार उठ सीना ताने ।
आलस, निद्रा और प्रमादा, डूबत नर कुछ रहे न यादा ।
जड़ चेतन कै होत न संगति, मार गई तोरी मानव मति ।
तन सँग रहत आत्म तन रूपा, दुख-सुख माने अपन स्वरूपा ।
पर तुम्हार रूप अविनाशी, अजर, अनादि, अनंत सुवासी ।
निज स्वरूप पहचानो भाई, सत, रत, तम गुण चले पराई ।

सोरठा - निर्गुण तोर स्वरूप, अज्ञानी जाने नहीं,
जाने जो निज रूप, भेद नहीं माने कहीं ॥ 44 ॥

माया त्रिगुणी जाल बिछाई, ज्ञान बिना अज्ञान न जाई ।
जड़ प्राकृत भावों में मोहा, ममता और कामना सोहा ।
इनके बिन जीवन कुछ नाहीं, अस विचार दृढ़ हो मन माही ।
इनसे रहित न अनुभव उनका, जानो त्रिगुणी माया मन का ।
जब मानव गुण को ही अपना, माने सरवस जीवन सपना ।
तब बँध जात रात - दिन धावत, और न माया से तर पावत ।
पर जो शरण ईश प्रति होई, दृष्टि नित्य उसमें ही खोई ।
वह निर्लिप्त और गुण हीना, जगत रहे उसके आधीना ।
अस चिन्तन कर शरण सिधारे, जानो वही ईश के प्यारे ।
सब जड़ प्रकृति ईश कै माया, जो कुछ है सब उसकी दाया ।
उसका उसको अर्पण करना, यही होत ईश्वर प्रति शरणा ।

दोहा - केवल ईश्वर की शरण; अरु दैवी - सम्पत्ति,
माया से तर जाय वह; जिसके हिय हो भक्ति ॥ 45 ॥

भ्रम कै जाल काट रे भाई, आँख खोल चहुओर खुदाई ।
ईश न भिन्न कबहुँ जग होवत, नित्य निरन्तर अस मन सोहत ।

ज्यूँ कड़ुवाहट नीम रसाये, मिसरी में मिठास पन भाये ।
त्यों परमात्मा अलग न तुमसे, लाख यतन कर कोई किससे ।
नहिं पहचान ब्रह्म बिन तेरा, ज्यों माटी बिन घड़ा न घेरा ।
तेरा वह स्वभाव रे भाई, अलग तुम्हार नहीं परछाई ।
उसका ही तू खेल निराला, उससे ही यह जग उजियाला ।
बिन उसके तेरा नहिं कोई, सरवस जग स्वारथ सम होई ।
तू परमात्ममयी नहिं मानो, परमात्मा अपने को जानो ।
वही हृदय में तेरे बैठा, पर तू बोल रहा क्यों ऐठा ।
तुमको समझ परत कछु नाहीं, दोष बता किसका जग माहीं ।

दोहा - सोये तुम हो, जागना; तुमको ही है यार,
वह तो सोता है नहीं; निश-दिन करत पियार ॥ 46 ॥

बिन गुरु होत नहीं कछु ज्ञाना, निगुरा जग में अधम समाना ।
गुरु बिन सत्य राह नहिं पाई, जग में मिले न कबहुँ खुदाई ।
मित्र न हो बिन किये भरोसा, संत समान मित्र नहिं ठोसा ।
अवगुण तोर आप हर लेता, अन्तर खोल हृदय रख देता ।
अरु जो करत भरोसा हिय से, उसके हृदय अमिय हो बरसे ।
ज्यों पतंग अरु अग्नि मिताई, जल-जल कीट स्वयं मिट जाई ।
पर नहिं लौटत एकहुँ बारा, तन, मन, पंख, पैर, कर जारा ।
तैसहि शिष्य जाय गुरु पासा, धर हिय शुद्ध प्रेम कै वासा ।
हो भरोस अति दृढ़ मन माहीं, प्रेम पियाला छलकत जाहीं ।
तब जरि जाय पंख सम माना, राग-द्वेष जर पैर समाना ।
ममता और कामना जरहीं, तन, मन जरत कीट ज्यों क्षण हीं ।
लोभ-मोह सब जरे तुरन्ता, निर्भय हो, कुंदन सम भंता ।
तब सत-शिव सुन्दर पहचाने, भव सागर से मुक्ति सयाने ।

दोहा - पूर्ण भरोसा अरु लगन; दृढ़ विश्वास व आश,
परम प्रीति हो हिय तले; सतगुरु तेरे पास ॥ 47 ॥

मनुज होत जग तीन प्रकारा, उत्तम, मध्यम, अधम पुकारा ।
सरल स्वभाव, शान्त चित सोई, अरु सब इन्द्रिय बस में होई ।
जग पदार्थ में मोह न रहहीं, पर सब कर्म नित्य जो करहीं ।
जो मन में भावे सतसंगति, वचन, कर्म, मन सुन्दर अभिमति ।
बुद्धिमान उत्तम आचारा, चेतन हर जीवन कै धारा ।
विषय विकार बाँध नहिं पावे, ममता मोह निकट नहिं आवे ।
जड़-चेतन में भेद न माने, जीव-जीव को एकहि जाने ।
करुणा, दया, प्रेम कै मूरति, शील, शान्त, संतोषी सूरति ।
देखत सब में एकहि ईश्वर, वही बसत जग विविध रूप धर ।
कोमल हिय नवनीत समाना, दुख-सुख में सम रहत सुजाना ।
एकबार गुरु कै उपदेशा, आत्म बोध प्रति परम सदेशा ।
गुरु प्रति हो आदर सतकारा, उत्तम पुरुष नहीं जग हारा ।

दोहा- उत्तम मृदुभाषी सरल; प्रेम दया कै रूप,
जप-तप में हो नित मगन; होवत करुण स्वरूप ।। 48 ।।

मध्यम पुरुष बीच दोउ पाटा, जानत नहिं लागे किस घाटा ।
वह खद्योत समान दिखाई, क्षण प्रकाश, क्षण में बुझ जाई ।
क्षण में नीक लगे भगवाना, क्षण में सुन्दर संसृति माना ।
नहीं कबहुँ मति स्थिर रहही, भागे मन तोड़त नित पगही ।
चाह निरन्तर उत्तम होवत, मन ही मन नित पूरी पोवत ।
खोजत जग में नित्य प्रकाशा, धीरज धर्म रखे नित आशा ।
अस मानव कर यदि अभ्यासा, चिन्तन, मनन, भजन, उपवासा ।
तो मध्यम नर होवत ऐसे, निकलत बिजली जल से जैसे ।
पर उपकार भाव जग जागे, क्षण में वही लुपुत हो भागे ।
गुरु के शरण नित्य यदि जाये, कथ श्रवण में ध्यान लगाये ।
मिले गुरू वैशाखी जबहीं, मध्यम मनु उत्तम हो तबहीं ।

दोहा - उंत्तम की नित लालसा, मध्यम नर में होय,
सदगुरु मिल जाये अगर, सरवस मल दे धोय ।। 49 ।।

अधम पुरुष आलस में बसहीं, निश-दिन काम सतावत रहही ।
लोभ मोह कै होवत रूपा, अति क्रोधी, जीवन भव कूपा ।
ममता में निश-दिन बौराये, अति कठोर वाणी बरसाये ।
नीक न लगे गैर कै वानी, मानत नहिं अपने सम ज्ञानी ।
निश-दिन जले अधम अभिमाना, बढ़त न देखत कबहुँ जहाना ।
स्वारथ बिन नहिं करत मिताई, पर दुख देख बजे सहनाई ।
करत विषय में अति अनुरागा, निश-दिन घिरे द्वेष अरु रागा ।
निकले नहिं वाणी सुविचारा, करे नीच सम नित व्यवहारा ।
आलस निद्रा और प्रमादा, लगे नीक जीवन से ज्यादा ।
खान-पान पशुवत नित होवत, जहाँ रहत नित विष ही बोवत ।
ईश्वर में तनिको रुचि नाहीं, भोग विलास रचे मन माही ।
अस नर जलत जगत में ऐसे, सूखी डाल जले नित जैसे ।

दोहा - अधम न जाने ईश को; नहिं माने संसार,
तन पर कर अभिमान नित; हो धरती पर भार ।। 50 ।।

होवत मुक्ति विषय कै त्यागा, बंधन होत जबहिं अनुरागा ।
आत्म बोध जब मानव होई, होत मोक्ष भव-बन्धन खोई ।
आत्म-बोध होतै चतुराई, मानव तुरत सबहि चल जाई ।
आत्म ओर इन्द्रिय के धारा, नहिं आसक्ति, जगत से न्यारा ।
सरवस उर्जा अन्दर छाई, क्रमशः सबहि द्वार खुलजाई ।
सहश्रार खुलतै चहुँओरा, ईश दिखे ज्यों सूरज भोरा ।
हर प्राणी ईश्वर कै रूपा, जड़ चेतन सब ब्रह्म स्वरूपा ।
आपन और पराया कोई, लागे नहिं तब अस मन होई ।
जाति-पाति सब झूठा लागे, सम्प्रदाय को विष संम त्यागे ।

शत्रु मित्र कोई जग नाहीं, इक अद्वैत भाव मन माही ।
सबका सुख-दुख अपना लागे, भेद-भाव नहिं मन में जागे ।
निर्धन धन सब होत पियारा, ऊँच नीच नाहीं संसारा ।
भव-बंधन सबही कट जाई, केवल आत्म ब्रह्म रह जाई ।

दोहा - आत्मबोध होतै सभी; भव-बन्धन कट जाय,
ज्यों प्रभात के होत ही; अंधकार मिट जाय ॥ 51 ॥

अहंकार बिन त्यागे जानों, मिले नहीं अविनाशी मानों ।
बिन अस्तित्व स्वयं कै खोये, मिलत ब्रह्म नहिं जप-तप होये ।
माटी में जब बीज बिलाई, तबहि सुकोमल फूल खिलाई ।
तैसहि अहंकार बिन त्यागे, मन में कबहुँ न ईश्वर जागे ।
यह शरीर,मन,बुद्धि हमारा, मैं शरीर अस होत बिचारा ।
अहंकार इसको ही कहते, ज्ञानी कबहुँ इसे नहिं सहते ।
जब तक अहंकार तन माहीं, कबहूँ ममता छोड़त नाहीं ।
अहंकार कै जबहि अभावा, तब ईश्वर समहोत सुभावा ।
ज्ञान होत लागे सब फीका, दृष्टा दृष्य भेद लख नीका ।
भेद जानि शान्ति मन भावे, परमानन्द, आत्मसुख पावे ।
हानि लाभ कै नाहीं चिन्ता, रहत एक सुख-दुख में भंता ।
राग-द्वेष मन रह नाहिं जाये, अपन-पराया भेद भुलाये ।

दोहा - अहंकार जड़ कामना; राग द्वेष कै खान,
माया, ममता, मान की; मूल इसे तू जान ॥ 52 ॥

नश्वर तन पर क्या अभिमाना, आज रहे कल नहीं ठिकाना ।
तब तक लोभ रहे नित संगा, जब तक मोह नहिं हो भंगा ।
रहत शरीर एक सम नाहीं, बालक कभी वृद्ध हो जाहीं ।
परिवर्तन हर क्षण तन तेरे, देखत नहिं माया अस घेरे ।
पर जो बालकपन को जाने, और जवान वृद्ध पहचाने ।.

वह दृष्टा अरूप अविनाशी, सदा रहे भीतर सुखरासी ।
नहिं परिवर्तन उसमें कोई, नित्य रहे सम माया खोई ।
देखे सब करतूत तुम्हारा, हो प्रकाश या अति अधियारा ।
पर तुम मद में उसको भूले, स्व स्वरूप जो नित सम झूले ।
जो जाने ज्ञानी कहलाये, आत्म-बोध हो मुक्त सुहाये ।

दोहा- तन, मन, जीव अनित्य है; रहत नित्य के संग,
अस विचार दृढ़ होत जब; तब जीवन में रंग ।। 53 ।।

बड़भागी मानव तन पाया, सुख-दुख भोगत व्यर्थ लुटाया ।
सुख-दुख सब तन कै व्यवहारा, पर स्वरूप आनन्द तुम्हारा ।
जो आनन्द शान्ति नित पावत, धन्य-धन्य वह धन्य कहावत ।
मिलत न और रहे कछु बाकी, ईश्वर संग रहे नित पाकी ।
दल-दल लोभ मोह को जानो, हे मानव इसको पहचानो ।
ईश्वर बिन औरहु कछु नाहिं, गुण विहीन होवत सो पाहीं ।
अस विचार जब दृढ़ हो जाये, निज मन में आनन्द समाये ।
मन से सबहिं कामना ममता, तज संतुष्ट आप जो रहता ।
अपने आप परिस्थिति आये, शुभ अरु अशुभ सोच नहिं भाये ।
सब प्रारब्ध योग ही जानो, राग द्वेष नहिं मन में ठानो ।
हर स्थिति में सम जो रहहीं, ईश प्रसाद मान सर धरहीं ।
वह ही परम-शान्ति को पाये, ज्ञानी, पंडित, संत कहाये ।

दोहा- मानव तन को पाइके; मुक्ति नहीं मिल पाय,
समझो वह मानव नहीं; पशु सम जीवन हाय ।। 54 ।।

जग कै प्रेम वासना होये, ईश प्रेम सत प्रेम सजोये ।
जगत प्रेम से उपजे ममता, हो आसक्ति मनुज नहिं बचता ।
जब आसक्ति जगत से होई, काम, क्रोध उपजे मन सोई ।

राग-द्वेष से पागल मनवाँ, घूमे निश-दिन पशु सम वनवाँ ।
शुभ अरु अशुभ कर्म ललचाये, सत अरु असत विवेक न भाये ।
हो विमूढ़ पागल सम भागे, पथ अरु कुपथ समझ नहिं जागे ।
बुद्धि नाश होवत ततकाला, फिरत प्रमाद, बजावहिं गाला ।
कर्मयोग कै भाव न जागत, ज्ञान भक्ति नहिं तनिक सुहावत ।
बिना योग के शान्ति न मानव, शान्ति बिना आनन्द न जानव ।

दोहा - जब तक ममता जगत से; तब तक मुक्ति न होय,
शान्ति और आनन्द मनु; मिले न कबहूँ कोय ।। 55 ।।

जग से हो चन्दर उपरामा, वरना विषय मिले हर धामा ।
इन्द्रिय, विषय भोग में भाये, अरु मन को नित ही उलझाये ।
तब मन होवत विषय गुलामा, सुख की चाह लिए मन कामा ।
चढ़त रंग जग मन पर ऐसा, तज नहिं पावे मानव कैसा ।
जैसहि देखत सुन्दर रूपा, दृष्टि लुभाय गिरत भव कूपा ।
बार-बार मन दौड़े प्यासा, देख-देख वह और पियासा ।
विषय महत्व बैठ मन जाई, फसत जाल उवरत नहिं भाई ।
तत क्षण भोग बुद्धि बढ़ जाये, मानव पतन तुरत हो जाये ।
पर इन्द्रिय जिसके बस होई, मन भरमें नहिं चाह न कोई ।
पतन न मन बुधि कै कर पावे, नित परमात्मा अन्तर भावे ।
अस मन बुद्धि प्रतिष्ठित होई, स्थित-प्रज्ञ जान सब कोई ।

दोहा - जब विषयों के फेर में; इन्द्रिय, मन फँस जाय,
जानों तब कल्याण नहिं, अधम, नर्क गति पाय ।। 56 ।।
इन्द्रिय, विषयों में नहीं, फसे न मनहिं फसाय,
तब मन बन्धन मुक्त हो, ईश परम पद पाय ।। 56 अ।।

सहज मुक्ति कै एक उपाई, तज कर्तापन मन चित लाई ।
मै भोक्ता नहिं दृढ़ कर ऐसे, मात-पिता मानत हो जैसे ।

जब तक मन में कर्महि लोभा, फल की आश रहे नित शोभा ।
तब तक व्याकुल चित्त तुम्हारा, अनगिन वृत्ति उगे कुविचारा ।
अति पीड़ा पावत जग माहीं, भोगत दुख पछताते जाहीं ।
रौ-रौ नरक मिलत कुविचारी, पुनर्जन्म फल पावहि भारी ।
नीच योनि में आवत भाई, पशु - पक्षी हो अति दुख पाई ।
मूक पेड़ या कीट पतंगा, पावहि जनम होत दुख संगा ।
पर दृढ़ होत अकर्ता मन में, अरु भोक्ता नहिं जागे तन में ।
तो चित वृत्ति सहज रुक जाये, परम शान्ति आनन्द मनाये ।
दीखे ब्रह्ममयी चहुओरा, होत नहीं तब जगत कठोरा ।
निज तन सम लागे संसारा, भेद नहीं सब होत पियारा ।

दोहा - चित्त अकर्ता भावमय, और अभोक्ताकार,
दुख-सुख कभी न होत है; मानव इस संसार ॥ 57 ॥

खोजो अपने में दिन राता, मिले वहीं वह पूर्ण विधाता ।
खुद में पूर्ण होत मानव हर, ढूँढो नहिं मंदिर मसजिद दर ।
होत न वह गिरि कानन माहीं, अरु नभ, भूतल में प्रभु नाहीं ।
बसत नित्य हिय सागर ऐसे, होत सुगन्ध फूल में जैसे ।
वही बसत हर साँस तुम्हारे, वाणी से बोलत वह प्यारे ।
पग-पग पर उसकी चेतनता, प्रेम करत नित उसकी प्रियता ।
पवन रूप में पास तुम्हारे, देखत पर कोई नहिं प्यारे ।
जलन शक्ति अगनी में जैसे, चेतन सम सोहत तन तैसे ।
ढंढो पैठ चित्त के अन्दर, वह अविनाशी है अति सुन्दर ।
पूरण ब्रह्म पूर्ण तुम होई, जगत असार सार है सोई ।

दोहा - हिय में पूरण ब्रह्म नित; 'मैं' हूँ पूर्ण अकाम,
अस विचार हो दृढ़ जहाँ; वहीं मिलें श्री राम ॥ 58 ॥

बिन गुरु मिले होत नहिं ज्ञाना, ज्ञान बिना कोई नहिं माना ।

कैसन जगत, ब्रह्म अरु जीवा, होत्त सत्य सुन्दर क्या सीवा ।
योग-योग में कैसन अन्तर, क्यों जड़ चेतन भेद निरन्तर ।
है क्या यह माया संसारा, मैं मेरा क्या जग आधारा ।
सब रहस्य खोले गुरु ऐसे, ऊषा प्रगट सूर्य से जैसे ।
गुरुवाणी विश्वास दिलाये, अरु विवेक की ज्योति जलाये ।
पर मन जब हो अतिशय प्यासा, मुक्ति प्राप्ति की हो अभिलाषा ।
तब गुरु मिलत तुरत संसारा, धन्य होत नर जीवन सारा ।
गुरु सम नहीं तीर्थ जग माहीं, तारत और तीर्थ अस नाहीं ।
गुरु सम नहीं ब्रह्म रे भाई, जानत वही जिसे मिल जाई ।
सब दुख होत निवृत तुरन्ता, परमानन्द प्राप्ति हो भंता ।

दोहा - मुक्ति ईश दर्शन नहीं, परम शान्ति का नाम,
जीव ब्रह्म की एकता, हो मन में विश्राम ॥ 59 ॥

'मैं' को बन्ध युक्त जो माने, ब्राह्मण क्षत्रिय 'मैं' को जाने ।
दोनों भ्रम कै राह हमारा, भव बंधन से नहिं हो पारा ।
मन के धर्म मुक्त अरु बंधा, दोउ सकाम बाँधे नित धंधा ।
दोनों सत्य नहीं रे भाई, आत्मा कै स्वभाव अलगाई ।
आत्मा बंध, मुक्त नहिं होवत, एक पूर्ण, नित, शान्त सुसोहत ।
आत्मा अहंकार कै साक्षी, पर नहिं कर्तापन के पाक्षी ।
आत्मा चित, अक्रीय, असंगा, भेद रहित निस्पृह नहिं अंगा ।
जाने मूर्ख बंध अरु मुक्ता, नहिं विवेक, पहचान न उक्ता ।
बन्धन मुंक्त होत साकारा, निराकार पर आत्म तुम्हारा ।
अतः मुक्ति कै सोच हि बंधन, अस विचार जानत योगी जन ।

दोहा - सोच मुक्ति का भी मनुज; बंधन एक कहाय,
बधा सगुण निगुर्ण सदा; स्वर्ग चाह असहाय ॥ 60 ॥

बन्धन युक्त शरीर तुम्हारा, फसते रोज अनित संसारा ।

कौनव कर्म न बंधन घोरा, कर्म स्वभाव मनुज नित तोरा ।
पर आसक्ति कर्म फल होवत, बन्धन कै कारण जग बोवत ।
फल अच्छा तो सुखी मनाये, होते बुरा दुखी हो जाये ।
मनुज शरीर प्रकृति कै अंशा, ता में निश-दिन होवत भ्रंशा ।
तन सँग तोर आत्मा रहहीं, ताते दुख-सुख सँग-सँग सहहीं ।
पर आत्मा दुख-सुख कै साक्षी, तन केवल माया आकांक्षी ।
ढूँढो आत्मा को तब जानो, 'मैं' क्या होवत तुम पहचानो ।
पहचाने जग में जो कोई, ताकर जन्म धन्य मनु होई ।
वह ज्ञानी-योगी कहलाये, मुक्ति यहीं जग में मिल जाये ।

दोहा - अविनाशी आत्मा रहे; नाशी तोर शरीर,
जो जाने वह धन्य है, लागे सागर तीर ।। 61 ।।

जो समक्ष बोले मृदु वानी, पर पीछे निन्दा कर हानी ।
जा के हिय दुर्भाव समाये, जन्म-मरण बंधन वह पाये ।
मुक्ति हेतु हिय में सद्भावा, पर हित भाव रहे मन छावा ।
द्वेष नहीं जिसके मन होई, शुद्ध चित्त जाने सब कोई ।
जन्म होत अतिशय दुख पावा, वृद्ध होत दुख रूप दिखावा ।
जीवन भर नित पीड़ा सहहीं, मरत न दुख सीमा कुछ रहही ।
यह संसार कष्ट कै मूला, हर साधन जीवन कै सूला ।
मन में रहे कामना जैसी, दुख भोगत मानव नित तैसी ।
दुख निवृत्ति कै एक उपाई, देश काल अनुकूल सुहाई ।
शुद्ध विचार शुद्ध चित होवत, सम्यक वाणी कार्य सुसोहत ।
सम्यक लक्ष्य, प्रयत्न तुम्हारा, सम्यक जीवन हो सुविचारा ।
अरु एकाग्र जहाँ मन आवत, जीवन धन्य परम सुख पावत ।
जग में नश्वरता कै राजा, सब अनित्य नश्वर सब काजा ।
जो दीखे सब होत दुखालय, यह संसार जात नित कालय ।
- जब सब चीज नष्ट हो जाये, फिर क्यों मानव नेह लगाये ।

अस विचार आवे जब मन में, तब निर्वेद जगे जीवन में ।
तब छूटे मन माया ममता, भाये जीवन में तब समता ।
समता आवत जग कल्याना, अस विचार नित उठत महाना ।
परम शान्ति से चित भर जाये, होवत मुक्ति परम पद पाये ।

दोहा - सम्यक जीवन हो तभी; जागत शुद्ध विचार,
शुद्ध चित्त के बिना मनु; हो अधर्म व्यवहार ।। 62 ।।

परम धर्म हे मनुज अहिंसा, होवत मूल पाप कै हिंसा ।
सुख अरु शान्ति अहिंसा जानो, अरु उद्धार राह यहि मानो ।
होत अहिंसा मनुज स्वभावा, अरु हिंसा दानव को भावा ।
निर्बलता को दूर भगाये, कायरता आने नहिं पाये ।
जीव प्रगति कै एकहिं साधन, होये नित्य अहिंसक जीवन ।
दया, प्रेम अरु त्याग अहिंसा, जाने जो वह संत महीसा ।
विश्व शान्ति इसके बिन नाहीं, और जुगति जस हो परछाहीं ।
जब तक अवलम्बन हो समता, तब तक जीवित हो मानवता ।
बिना अहिंसा नहिं कल्याना, संसृति कै यह एक विधाना ।
उपजे मनहिं अहिंसा जबही, हर प्राणी प्रति प्रेम उपजहीं ।
प्रेम होत ईश्वर कै पूजा, इससे बड़ा राह नहिं दूजा ।

दोहा - जगे अहिंसा हृदय में; जानो विश्व समाय,
पर दुख लागे निज दुख; सुख देखत सुख पाय ।। 63 ।।

बंध-मुक्त दोउ झूठ कहाये, सब अज्ञानहि रूप दिखाये ।
ज्ञान बिना न स्वरूप हि जाना, छूटे नहिं शरीर अभिमाना ।
लोक और परलोकहु बंधन, पढ़-पढ़ शास्त्र बँधत पंडित जन ।
सब बंधन मन कै अनुमाना, पर आत्मा तो मुक्त सुजाना ।
आत्म स्वभाव मुक्त हे चन्दर, वह जाने जो झाँके अन्दर ।
माने से बन्धन जग लगहीं, चाहत मुक्ति जगत मनु तबहीं ।

पर आत्मा निस्पृह, असंगा, शान्त, पूर्ण अरु एक अभंगा ।
आत्मा बन्धनमय यदि होवत, तो कदापि नहिं निवृत्ति सजोवत ।
सब जग साधन व्यर्थ कहाये, और जीव नहिं मोक्ष हि पाये ।
पर वह साक्षी और अकर्ता, सब का अधिष्ठान अरु भरता ।
भेद रहित चैतन्य स्वरूपा, देह रहित अरु होत अरूपा ।
अतिव्यापक, अक्रीय, असंगा, प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों से भंगा ।

दोहा- भ्रम के कारण आत्मा; जगवाला कहलाय,
पर असंग होवत वही; जन्म मृत्यु नहिं पाय ॥ 64 ॥

निशि दिन रहत आप संग ईश्वर, होत जुदा कबहूँ नहिं क्षण भर ।
ज्यों पागल भूले घर-द्वारा, त्यों हम भूले ईश पियारा ।
ज्यों ही होश हमें हो जाये, त्यों निर्द्वन्द आप मिल पाये ।
पर मन से हम ढूँढें उसको, मन माया सँग जोड़त हमको ।
मन संबन्ध रहे संसारा, जो मानव का अति प्रिय कारा ।
पंच तत्व से रिस्ता तन का, तैसहि ईश आप जीवन का ।
मन के मौत बिना नहिं पावे, लाख उपाय एक नहिं भावे ।
मन से होत न ईश्वर ध्याना, मन में आवत अखिल जहाँना ।
कैसा यह परिहास हमारा, ढूँढ रहा 'मैं' स्वयं पुकारा ।
ढूँढों हिय में वह मिल जाये, प्रेम रूप वह नित्य समाये ।

दोहा- मैं ही मैं को ढूँढता; कैसा है परिहास,
माया परदा जब हटे; मिले धरें हम आश ॥ 65 ॥

शरणागत प्रभु कै जो होई, ता पर ईश स्वयं को खोई ।
गुण अनन्त लीला अरु माना, महिमा तत्व रहस्य सुजाना ।
अति ऐश्वर्य और सौन्दर्या, धाम महान और माधुर्या ।
है विभूति कै अतुलित खाना, अस विचार जब मनहिं सुहाना ।
भाव एक मैं हूँ भगवाना, अरु मेरे केवल भगवाना ।

गुण प्रभावगत दोष न भावत, केवल नजर ईश इक आवत ।
गुण-प्रभाव देखे जो जानो, मन में कहीं कामना मानो ।
जब तक रहे कामना भीतर, तब तक रहे ईश नित ईतर ।
पर शरणागत हो जब कोई, तब अधीन खुद ईश्वर होई ।
भय, शंका, दुख शोक व चिन्ता, जीव चित्त से भगे तुरंता ।
छूटे जग, तन का सब आश्रय, और कामना, ममता, मद, भय ।

दोहा - ज्यों शिशु माँ के अंक में; आवत निर्भय होय,
त्यों शरणागत होत ही; जीव सकल भय खोय ।। 66 ।।

चिन्ता रहे नहीं निर्वाहा, गति मति प्रति नहिं होत दुराहा ।
हर पल आतमीयता बरसे, माँ सम ईश्वर ममता सरसे ।
कृपा, प्रीयता, सुहृय, हितैषी , जग में मिले नहीं माँ जैसी ।
पर माँ शिशु में तन कै भेदा, ईश जीव में नहिं कछु छेदा ।
शरणागत जब मानव होये, योग क्षेम सब ईश्वर ढोये ।
ज्यों धीवर पग मीन विचरहीं, फसे न कबहुं जाल में तरहीं ।
ज्यों चक्की के बीच अधारा, रहे अन्न साबूत व प्यारा ।
त्यों शरणागत पिसै न कबहूँ, सादर भक्ति योग में रहहूँ ।
लागे जग - बन्धन सब फीका, एक ईश कंण-कण में दीखा ।
ईश्वर कै लक्षण तन आये, अस व्यक्तित्व भगत के भाये ।
तन मन इन्द्रिय बुद्धि हेराई, लीन ईश में सब हो जाई ।
रह न जाय कुल, जाति व रूपा, रहत न एक भेद कै कूपा ।

दोहा - शरणागत चन्दर हुआ, खोया अपना आप,
जो खोया उसका मिटा, सकल जगत संताप ।। 67 ।।

मूल मंत्र अब कहहु विचारी, बिन गुरु शरण न मुक्ति तुम्हारी ।
ईश कृपा बिन सदगुरु नाहीं, मिले कबहुँ इस संसृति माही ।
चारों वेद, पुराण शास्त्र सब, हो कंठस्त काव्य गद्य रस, ।

पर गुरु बिना रहत नित शंका, अहंकार कै बाजे डंका ।
पथ दर्शक जब तक नहिं होई, अपन स्वभाव न जाने कोई ।
मन संलग्न नहीं गुरु चरणा, जान सके भव-सिंधु न तरना ।
कर पुकार जो बारम्बारा, खोल रखे हिय कै सब द्वारा ।
मन में प्रबल लालसा जबही, सतगुरु मिले मनुज भव तबहीं ।
बिन गुरु ज्ञान न होत सुजाना, पंडित अरु मुल्ला अस जाना ।

दोहा - **मन में उत्कट लालसा; अरु हिय में अति प्यार,**
हो ईश्वर की कृपा जब; मिले गुरू संसार ।। 68 ।।

होवत गुरु कै दोउ प्रकारा, सदगुरु एक, ढोंग भंडारा ।
ढोंगी गुरु को करूँ प्रणामा, जा मन बसत घोर हंगामा ।
मन में काम क्रोध अस लोभा, चाह रहत नित अनगिन भोगा ।
ज्ञान, ध्यान नहिं प्रभु प्रति प्रेमा, जप, तप योग करे नहिं नेमा ।
लुपुड़-चुपुड़ वाणी नित बोले, जग प्रति कभी हृदय नहिं खोले ।
धोखा देत जगत को ऐसे, आपन मन अपने को जैसे ।
होत विरक्त भेष अरु भूसा, चमक दिखावत ज्यों हो मूसा ।
अति दम्भी पर सौम्य स्वरूपा, निश-दिन छले साधु कै रूपा ।
अहंकार तिनके मन माहीं, ऊँचा सदा दिखावन चाहीं ।
कामिति कंचन कै नित प्यासा, धन-दौलत कै निश-दिन आशा ।
सीधी राह बतावे सबको, पर खुद चले उलट हर मत को ।
खोजे शान्ति जगत में भाई, खुद अशान्ति कै खान, दुहाई ।
किन-किन गुण कै करूँ बखाना, सब अवगुण कै होत खजाना ।

दोहा - **ढोंगी गुरु हे ! प्रार्थना; रखो सभी गुण पास,**
कृपा करो संसार पर; हाथ जोड़ कर खास ।। 69 ।।

सदगुरु चरण धूल सिर नावत, होत पवित्र मुक्ति जग पावत ।
बार-बार वंदन मैं करहूँ, चरण कमल नित हिय में धरहूँ ।

सदगुरु सम नहिं वेद-पुराना, होत न मात-पिता, भगवाना ।
श्रद्धा प्रबल हृदय में जिनके, उपजत गुरु प्रति प्रेमहि उनके ।
जिनके वचन विकार नसावन, लागे ततक्षण सदगुण आवन ।
क्षमा, दया अरु प्रेम पियाला, भर-भर देत ज्ञान गुण हाला ।
बाहर से कछु दीखे नाहीं, बरसत प्रेम नूर हिय माही ।
मिलतहि अंत होत, अविवेका, अरु विवेक जागत मन एका ।
सदगुरु कै लक्षण अस होई, चंदन सम जाने सब कोई ।
ऐसे सदगुरु धन्य कहावें, आत्मानन्द संग जग धावें ।
करत मुक्त जड़-चेतन सबहीं, हर हालत में सम नित रहहीं ।

दोहा - मिले जगत में सदगुरू; चन्दर हो उद्धार,
जिनकी करुणा कृपा से; मनु उतरत भव पार ।। 70 ।।

सदगुरु कृपा रोज बरसाये, पर श्रद्धा बिन शिष्य न पाये ।
संयम, सदाचार, तत्परता, सद्गुरु बिन नहिं प्रेम उमड़ता ।
जग को सत्य मान जो बैठा, कर अभिमान देह पर ऐठा ।
माने नहिं ईश्वर मन माहीं, बसत कहीं ऊपर जहँ छाहीं ।
अहंकार जिनके मन भाये, लोभ मोह भय रोज सताये ।
राग-द्वेष को ही पहचाने, काम क्रोध को जीवन माने ।
ऐसन अधम शिष्य भी आये, गुर चरणों में शीश झुकाये ।
तो सदगुरु निज अमृतवाणी, बरसाये ईश्वरमय जानी ।
चाहे श्रद्धावान पियारा, हो चाहे रागी संसासा ।
भेद तनिक मन में नहिं आये, आपन सरवस नित्य लुटाये ।

दोहा - सरवस देता सदगुरु; हरता केवल मान,
एक लालसा हिय तले; हो सबका कल्याण ।। 71 ।।

सदगुरु होत ज्ञान भंडारा, नित्य दिखावत जगत किनारा ।
जो आज्ञा माने गुरु वचना, वह ईश्वर कै अनुपम रचना ।

गुरु आज्ञा ही धरम कहावे, वेद पुराण संत अस गावे ।
मिलत ब्रह्मलोक जग माहीं, सेवा जो सद्गुरु कै पाही ।
जो शुभ कार्य होय संसारा, सब अर्पित कर सद्गुरु द्वारा ।
अनगिन गुना बढ़े फल तोरा, मिले कीर्ति यश चहुँदिश भोरा ।
ज्ञान-कवच तुमको वह देता, अरु सब अशुभ कर्म हर लेता ।
सेवा कर, मन, वच अरु करमा, करुण, दया जागे मन धरमा ।
अविचल भक्ति रहे गुरु चरना, लीन रहे नित सेवा करमा ।
तो पुरुषार्थ चार मिल जाये, मानव मुक्त परमपद पाये ।

दोहा- निगुरा कबहूँ होत नहिं; भव सागर से पार,
सगुरा बंधन में कभी; पड़े नहीं संसार ॥ 72 ॥

समय नहीं जिसने पहचाना, जीवन व्यर्थ उसी कै जाना ।
जो आलस में समय गवाया, अन्तर शक्ति नहीं वह पाया ।
समय गये केवल पछताना, हाथ लगे दुख, भय, घबराना ।
काम पूर्ति में समय गवाये, भोग विलास मनहिं मन भाये ।
मिथ्या वचन मित्र सँग करहीं, अरु शराब पी उदर जो भरहीं ।
नित अस्लील पाठ जो पढ़ते, अरु चलचित्र देख नित मरते ।
ऐसन मनु कै घोर अभागा, अन्दर नहीं आत्मबल जागा ।
बिन जागे सब ओर अंधेरा, सर्वनाश ताकर अस घेरा ।
निद्रा आलस दोष न जाने, अरु प्रलाप को नहिं पहचाने ।

दोहा- शुत्रु तीन है समय के; निद्रा, आलस, मान,
अरु प्रलाप में फसत जो; चन्दर नाश जहान ॥ 73 ॥

बिन गुरु वचन न जागे ज्ञाना, ज्ञान बिना नहिं समय सुहाना ।
गुरु कै होत कृपा जब ऊपर, समय मूल्य तब जानत सुन्दर ।
हर इक क्षण कै कीमत होई, कर उपयोग सम्भाल सुजोई ।
आतम ज्ञान में जब लग पाये, जीवन तोर धन्य हो जाये ।

जाओ तुरत गुरु कै शरना, जानों समय मूल्य तुम वरना ।
जीवन व्यर्थ तोर होइ जाई, मनुज देह फिर कब मिल पाई ।
बीते पर अब मत पछताओ, आगे की सुधि करत सजाओ ।
जो स्वरूप में समय बितायें, वही सत्य राह मनु पाये ।
होत सत्य कै जबही ज्ञाना, प्रगट होत अन्तर भगवाना ।

दोहा - वही संत जिसको परख; हर क्षण का हो जाय,
करे नित्य उपयोग जो; आत्मरूप को पाय ।। 74 ।।

गुरुवाणी बरसे चहुँओरा, ज्यों सुगंध फैले रसबोरा ।
संत स्वभाव होत जग माहीं, ज्ञानामृत बरसावत जाहीं ।
शीतलता ज्यों नदी स्वभावा, त्यों संतन हिय प्रेम सुहावा ।
पर जिसका मन प्यासा होये, अरु हिय में अति तड़प सजोये ।
गुरु दर्शन उसको ही होवत, जग कर्षण से मुक्त सुसोहत ।
संत संग मन निर्मल होये, अरु वाणी कटुता क्षण खोये ।
कर्म अकर्म होत ततूकाला, लागे जग निज गृह सम शाला ।
ऊँच-नीच कै भेद न भाये, अपन-गैर कोउ रह नहिं जाये ।
उपजत काम नहीं हिय माहीं, राग-द्वेष जागत मन नाहीं ।
ततक्षण क्रोध शान्त हो जाये, अरु निर्मोह हृदय में भाये ।
ममता निर्मल रूप सुहाये, समता भाव हृदय में छाये ।
अशुभ सभी शुभ हो क्षण माहीं, सब अवगुण ततकाल मिटाहीं ।
सरबस कर्म योग हो जाये, सेवा भक्ति योग कहलाये ।
पर सेवा में निशदिन रहही, और मृत्यु से तनिक न डरही ।
जो कछु कहे सुने सब ज्ञाना, एक ईश को ही पहचाना ।

दोहा - गुरू कृपा निर्भय करे; हरे राग अरु द्वेष,
काम, क्रोध से मुक्ति दे; रहे द्वन्द नहिं शेष ।। 75 ।।

बिन सदगुरू कै जगत न भाये, जग बंधन हो जान न पाये ।
गुरु वाणी अज्ञान मिटाये, आत्मा ईश्वर एक बताये ।

ब्रह्म ज्ञान बिन मोक्ष न पावत, बिन गुरु ब्रह्म ज्ञान नहिं आवत ।
ज्यों अंधा बिन आँख न पाये, चहुदिश भटकत लक्ष्य पराये ।
त्यों न मुक्ति मानव जग पावत, गुरु बिन भटक-भटक रहि जावत ।
गुरु बिन जन्म निरर्थक होई, पुनि-पुनि जन्म लेत हर कोई ।
भव-बन्धन काटे नहिं कटहीं, जब तक ब्रह्म ज्ञान नहिं धरहीं ।
बन्धन कटत अविद्या नाशा, परमानन्द हृदय में वासा ।
मानव अपने को पहचानो, निज स्वरूप को ईश्वर मानो ।
सच्चा ज्ञान होत संसारा, लागे एक जालमय कारा ।

दोहा- सत्य ज्ञान गुरु से मिले; मूढ़ मिले संसार,
एक सार की खोज है, खोजत एक असार ॥ 76 ॥

ममता रहित शिष्य निर्माना, मत्सर रहित सप्रीति खजाना ।
कार्यकुशल निश्छल हिय होवत, ईर्ष्या रहित ईश मन सोहत ।
सतवादी, सतकर्म विचारा, परमार्थी हो नित व्यवहारा ।
मन में हो आनन्द विरागा, दृढ़ ज्ञानी प्रिय ईश्वर लागा ।
तन, मन, वाणी, संयम होये, श्रद्धा-भाव अनन्य सजोये ।
सद विद्या, सदगुण, सुविचारा, प्रज्ञावान, विवेकी धारा ।
सदगुरु चरण प्रीति अस होये, जल बिन मीन प्राण जस खोये ।
दृढ निश्चय, जप-तप, अनुरागा, तीनहु गुण से होय विरागा ।
हो विश्वास ईश हिय माही, क्षण भर दूर होत मन नाहीं ।
लागे संसृति तुच्छ समाना, निज स्वरूप कै ज्ञान महाना ।
रहत अमानी, मान लुटाये, अरु शरीर नहिं उसको भाये ।
सब प्रति आदर कै व्यवहारा, राग-द्वेष लागे मन खारा ।
ईष्या अहंकार मन नाहीं, काम व क्रोध भसम हो जाहीं ।
विषय भोग त्यागत मन ऐसे, त्याग देत विष मानव जैसे ।
ममता रहित शिष्य अस होये, सदगुरु के वह चरण सुसोहे ।

दोहा- सदशिष्यों को ही मिले; सदगुरु इस संसार,
मिलते ही क्षण में करे; भव-बन्धन से पार ॥ 77 ॥

ज्यों-ज्यों प्रीति बढ़े गुरु चरना, त्यों-त्यों मन हो निर्मल झरना ।
गुरु उपदेश असर तब करहीं, जब मन मैल तनिक नहिं रहहीं ।
तन प्रति अहंकार नहिं मोहा, अन्तःकरण शुद्ध - अति सोहा ।
परमारथ कै हो जिज्ञासा, सात्विक गुण कै मन अभिलाषा ।
कबहु न संत दूर संसारा, सदा रहत मानव सँग न्यारा ।
छलछलात निश-दिन अनुरागा, बरसत अमृत वचन सुहागा ।
सुनत बचन वह शिष्य महाना, ब्रह्म ज्ञान कै होत विधाना ।
वन्दन करत प्रात उठ जोई, फूलत-फलत जगत में सोई ।
चिदानन्द आनन्द स्वरूपा, हरत शोक दुख अरु भव कूपा ।
ज्ञान स्वरूप होत निज भावा, सत स्वरूप कण-कण में छावा ।
अधंकार को दूर भगाये, अरु प्रकाश चहुदिश फैलाये ।

दोहा- गुरु की महिमा क्या कहूँ; ईश कहत थक जाय,
वेद पुराण थके सभी; सदगुरु कै गुण गाय ॥ 78 ॥

शरणागत की दशा निराली, वेपरवाह रहे आभारी ।
दर्शन दे ना दे प्रभु ईच्छा, प्रेम करे अस नहीं अभीक्षा ।
सब ईश्वर की मरजी जाने, ज्यों बिलार बच्चा नित माने ।
केवल वह ईश्वर को जाने, जग देखे पर नहिं पहचाने ।
परम प्रसन्न ईश में रहहीं, मन की बात एक नहिं चलहीं ।
ईश विभूति ओर नहिं जाये, केवल ईश-ईश ही भाये ।
ईश बिना रह जाय न ऐसे, स्वास बिना जीवन नहिं जैसे ।
मैं ईश्वर का ईश्वर मेरा, एक भाव अन्तर में डेरा ।
कण-कण ईश कृपा नित देखे, सुख-दुख सब सम उसके लेखे ।
क्या अंपना क्या रहे पराया, सारा जग ईश्वर मय भाया ।
ऊँच-नीच दीखे नहिं कोई, ईश्वर एक दिखे हरि होई ।

दोहा - शरणागत के मन तले; नहीं रहे कछु भेद,
द्वन्द रहित, समता हृदय; मन में तनिक न खेद ।। 79 ।।

वस्तु व्यक्ति प्रति मोह न होये, मन में नहीं कामना सोहे ।
नहिं आसक्ति पुत्र संसारा, घर परिवार न होय पियारा ।
मन की अस गति होवे भाई, घर में रहे मुक्ति हो जाई ।
बन्धन बाधि तजे गृह जोई, वन में जाय नहीं कुछ होई ।
माया से तोड़े जो नाता, घर में रहत ईश नित भाता ।
मोह न अपनेपन से होये, जानो मानवता मन सोये ।
पगलाया मानव अपने में, ममता छोड़े नहिं सपने में ।
अपनेपन का भाव तुम्हारा, कबहुँ उतारे नहिं उस पारा ।
मानव निज स्वरूप को जानो, अरु मन माया को पहचानो ।
मन से मुक्त होत जब माया, तब जानो ईश्वर मन भाया ।

दोहा - वस्तु व्यक्ति प्रति मोह ही; जग माया कहलाय,
मन में ममता ना रहे; स्वर्ग घरहि बन जाय ।। 80 ।।

जान लेत जो निज प्रभुताई, अंधकार तुरतै मिट जाई ।
कौन मुक्त को मुक्त करावे, सीमा कौन अकाश बतावे ।
अहं और मम किसको बाँधे, अरु असाध को कौन सुसाधे ।
निर्गुण रूप आत्म निर्द्वन्दा, कौन फसाये संसृति फंदा ।
आत्मा एक ब्रह्म कै रूपा, जीव-जीव में रहे अरूपा ।
भेद नहीं इसमें कछु होई, देख झाँक अन्तर मन कोई ।
सब में चिदानन्द भगवाना, हर जग प्राणी ब्रह्म समाना ।
मुक्त आत्म तुम हो नित भाई, पर देहादिक खोल चढ़ाई ।
ज्यों प्रभात में कोहरा छाये, छटत प्रकाश प्रगट हो जाये ।
त्यों माया को छाटो भाई, आत्मा मुक्त प्रगट हो जाई ।

दोहा - कौन मुक्त को कर सके; जग में मुक्त सुजान,
साधे कौन असाध को; निर्गुण को गुणवान ।। 81 ।।

॥ कवि परिचय ॥
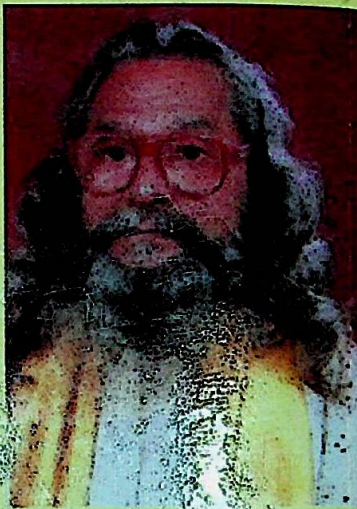
कवि श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय शास्त्री का जन्म ग्राम - अजाँव. जिला - वाराणसी, उ[illegible] में दिनांक 25 जुलाई 1948 को एक मध्य[illegible] परिवार में हुआ है । आपके पिताश्री [illegible] स्वर्गीय श्री उमाशंकर उपाध्याय एवं माताश्री [illegible]जमती देवी है । आपने का[illegible]द्यापीठ से 'शास्त्री' की उपाधि प्राप्त कर वहीं से सन् 1971 [illegible] (हिन्दी) की उपाधि प्रा[illegible] की । आपने सन् 1977 में 'कल और आज' उपन्यास की एव[illegible] 'प्रियदर्शिनी' इन्दिरा गा[illegible]' काव्य की रचना कर उन्हीं वर्षों में उसका प्रकाशन भी कि[illegible] अतिरिक्त बहन (नाटक), चुटकी भर सिन्दूर (उपन्यास), नदी तट पर वट वृक्ष (कविता), जागो (कविता), पदावली (भक्तिपद), दोहावली (दोहा संग्रह) भी प्रकाशन में है । वसुधैव कुटुम्बकम् (महाकाव्य) जो आप के हाथ में है, उसमें कवि के हृदय में उठी हुई मानवीय उद्गार का चित्रण है जिसे वह सारे विश्व में देखना चाहता है

वर्तमान में श्री शास्त्री जी मध्यप्रदेश के खण्डवा जिले में स्थाई रूप से निवास कर रहे हैं। आप मध्यप्रदेश राज्य सहकारी विपणन संघ मर्या. खण्डवा में सहायक प्रबंधक के पद पर कार्य करते हुए 'ज्ञानदीप विद्यापीठ' शिक्षण संस्था का संचालन भी कर रहे हैं ।

पत्र व्यवहार का पता :-

म.नं. 647, ज्ञानदीप विद्यापीठ, विद्यानगर, लाल चौकी, खण्डवा मध्यप्रदेश

☎ : 48795

मुद्रक : जिला सहकारी संघ मुद्रणालय, खण्डवा फोन : 23374